CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

7226

गुप्तकाल में -
नारी की स्थिति का अध्ययन

श्रीमति ज्योति सराफ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

State Museum Library Lucknow 7226

राज्य संग्रहालय पुस्तकालय 7226 लखनऊ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

II

गुप्तकाल में नारी की स्थिति का अध्ययन

State Museum Library Lucknow 7226

डॉ॰ हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर की

पी-एच॰ डी॰ की उपाधि हेतु

पी-एच॰ डी॰

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग

के अन्तर्गत प्रस्तुत शोध - प्रबन्ध

Forwarded
8.4.1987
SAGAR (M.P.)

निर्देशक
प्रो॰ सुधाकर पाण्डेय

प्रस्तुतकर्त्री
श्रीमति ज्योति सराफ

1987

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

II

गुप्तकाल में नारी की स्थिति का अध्ययन

State Museum Library Lucknow
7226

डॉ० हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर की

पी-एच. डी. की उपाधि हेतु

राज्य संग्रहालय पुस्तकालय
लखनऊ

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग

के अन्तर्गत प्रस्तुत शोध – प्रबन्ध

Forwarded
Sudhakar Pandey
8.4.1987

Tagore Professor & Head of the Department,
Ancient Indian History, Culture & Archaeology,
Dr. Harisingh Gour Vishwavidyalaya,
SAGAR (M. P.)

निर्देशक

प्रो० सुधाकर पाण्डेय

प्रस्तुतकर्त्री

श्रीमति ज्योति सराफ

1987

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्रीमति ज्योति सराफ ने नियमानुसार चौबीस माह रह कर मेरे निर्देशन में अपना शोध कार्य पूरा किया है. यह शोध प्रबंध इनका मौलिक कार्य है तथा सागर विश्वविद्यालय के पी-एच. डी. अध्यादेश से संबंधित सभी आवश्यकताओं को पूर्ण करता है.

दिनांक ८.५.१९८७ सुधाकर पाण्डेय

{प्रो. सुधाकर पाण्डेय}
अध्यक्ष
प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग,
डॉ. हरी सिंह गौर विश्वविद्यालय,
सागर, {म. प्र.}

Tagore Prof[illegible] Department,
Ancient Indian History, Culture & Archaeology.
Dr. Harisingh Gour Vishwavidyalaya,
SAGAR (M. P.)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

घोषणा-पत्र

मैं, श्रीमति ज्योति सराफ, घोषणा करती हूँ कि "गुप्तकाल में नारी की स्थिति का अध्ययन" विषय पर प्रो. सुधाकर पाण्डेय के निर्देशन में किया गया यह शोध-प्रबंध मेरा स्वयँ का किया हुआ मौलिक कार्य है.

दिनाँक- 8.4.87

ज्योति सराफ
(श्रीमति ज्योति सराफ)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुक्रमणिका

		पृष्ठ
	• आभार	
अध्याय : 1 :	भारतीय सामाजिक परंपरा में नारी का स्थान.	1- 30
अध्याय : 2 :	गुप्तकाल में पुत्री, पत्नी, माता तथा अन्य स्त्रियों की स्थितियाँ एवँ भूमिकाएँ.	31- 89
अध्याय : 3 :	गुप्तकाल में कर्मकाण्डीय संस्कारों का स्वरूप.	90-128
अध्याय : 4 :	गुप्तकालीन पारिवारिक तथा सामाजिक संरचना.	129-169
अध्याय : 5 :	गुप्तकाल में प्रचलित विवाहों के विविध प्रकार.	170-212
अध्याय : 6 :	गुप्तकाल में स्त्रियों के विधिक स्वत्व.	213-234
अध्याय : 7 :	गुप्तकालीन नारी एवँ तत्कालीन धर्म.	235-250
अध्याय : 8 :	गुप्तकालीन नारियाँ तथा प्रशासनिक योगदान.	251-261
अध्याय : 9 :	गुप्तकालीन नारी शिक्षा का स्वरूप...	262-268
अध्याय :10 :	गुप्तकालीन समाज में आमोद प्रमोद एवँ सौंदर्य प्रसाधन.	269-321
अध्याय :11 :	सामाजिक सांस्कृतिक उन्नयन में नारी का योगदान.	322-323
अध्याय :12 :	उपसंहार.	324-343
	• ग्रंथावली.	344-355

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आ भा र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शोध-प्रबन्ध की परिसमाप्ति पर अनायास ही पराम्बा के प्रति मुझे अपने देवऋण का बोध हुआ तथा हृदय आपूरित हो उठा उस चिद्रूपिणी-आधाशक्ति के प्रति जिसकी असीम, अहैतुकी अनुकम्पा से ही न केवल नानाविध व्यवधानों से जूझने का मुझे सामर्थ्य मिला वरन् भारतीय इतिवृत्त के गौरवशाली कालखण्ड अर्थात् गुप्तकाल में नारी की स्थिति के अध्ययन की दिशा में मैं प्रवृत्त भी हुई. मेरी शोध-यात्रा का यह कालक्षेप उन अनगिन मधुर स्मृतियों को भी संजोए हुए है, जो निरन्तर मेरी प्रेरणा की अक्षय-अजस्त्र स्त्रोत रहीं.

इस श्रृँखला में सर्वप्रथम अपने पितामह श्रद्धेय स्व. श्री भैयालाल जी सराफ, एडव्होकेट का पुण्य स्मरण करना चाहूँगी, जिन्होंने न केवल मुझे अध्ययन एवं शोध की दिशा में प्रवृत्त किया वरन् जिनके व्यक्तित्व का ओज तथा कृतित्व की आभा मुझे निरन्तर अपना कर्तव्य बोध कराती रही, मेरी क्लान्त-श्रान्त गति को एक नवचैतन्य से स्फूर्त करती रही. अपनी बाल्यावस्था में ही मुझे वैदिक नारियों के गौरवपूर्ण आख्यान अपने पूज्य पितामह के मुँह से सुनने का हम सभी भाई-बहिनों को सुयोग मिला. अवचेतन मन में इन वैदिक नारी पात्रों ने अपना आदर्श-बिम्ब निर्मित किया : नारी के विभिन्न रूपों तथा स्थितियों को जानने की उत्कट अभिलाषा जागृत की. संस्कृत साहित्य एवं इतिहास जैसे विषयों के प्रति मेरी अभिरूचि उद्दीप्त करने एवं मेरी शिक्षा दीक्षा की आधारभूमि निर्मित करने का प्रारंभिक श्रेय मेरे ब्रम्हलीन पितामह को ही है. अत: अपने इस शोध प्रबन्ध को उन्हीं के श्रीचरणों में निवेदित करते हुए अपने इस प्रथम ब्रम्हयज्ञानुष्ठान की सफल परिसमाप्ति की अंतिम आहुति छोड़ते हुए इतना ही कहूँगी-----"त्वदीयं वस्तु-----तुभ्यमेव इदं न मम".

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मैं अपने गुरू एवँ निर्देशक प्रोफेसर सुधाकर पाण्डेय, अध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवँ पुरातत्व विभाग के प्रति अपना आभार अभिव्यक्त करके कर्मकाण्डीय औपचारिकता का निर्वाह नहीं करना चाहूँगी. कारण, उनका मुझे पितृवत् औदार्य तथा आचार्यवत् शुभाशीष के साथ ही प्रस्तुत शोध कार्य के पंजीयन से लेकर शोध प्रबंध के सफल समापन तक प्रत्येक चरण में, मनोयोग-पूर्ण मार्गदर्शन तथा अपार स्नेह प्राप्त हुआ. मेरे प्रति उनका पुत्रीवत् व्यवहार मेरी एक अविस्मरणीय उपलब्धि मानती हूँ. मेरे स्मृति पटल पर अँकित इस गुरू-ऋषि-पितृ ऋण त्रय की यह स्वर्णरेख कभी धूमिल नहीं होगी. पूज्यनीया माताजी से मुझे वधूरूप में मिला अशेष शुभाशीष तथा स्नेह भी मेरी अमूल्य निधि ही तो है. ननद-द्वय कुमारी ज्योत्स्ना पाण्डेय एवँ कुमारी स्मिता पाण्डेय का स्नेहपूर्ण सौमनस्य मुझे जिस पारिवारिक परिवेश की अनुभूति करातारहा, उसकी स्मृति मात्र भी उतनी ही सुखद तथा अविस्मरणीय है.

कृतज्ञता ज्ञापन की इस शृंखला में अपने माता-पिता----- श्रीमती शान्तिदेवी सराफ एवँ डॉ. समरेन्द्र सराफ-----का नामोल्लेख करना जहाँ एक ओर औपचारिकता का निर्वाह जैसा प्रतीत होता है, वहाँ दूसरी ओर इस नामोल्लेख को न करना भी तो कृतघ्नता का पर्याय ही होगा. उन्होंने न केवल मुझे जन्म दिया वरन् मेरे व्यक्तित्व के निर्माण तथा बौद्धिक विकास में जिस भूमिका का निर्वाह किया, उसके विषय में मुखर स्वीकृति की अपेक्षा, उसकी सुखद अनुभूति ही मेरी सतत् प्रेरणा की अक्षय स्त्रोत है.

मेरी पूज्यनीया सास श्रीमती शान्ति सराफ के अपार स्नेह ने मुझे अपने शोधकार्य के समापन की दिशा में न केवल प्रेरित ही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किया वरन् गार्हस्थ जीवन के मेरे दायित्वों को उन्होंने अपने ऊपर ओढ़ते हुए मुझे अपने आशीष से अभिसिंचित किया. यह उनके हार्दिक शुभाशीष का ही सुफल है कि मैं अपने शोधकार्य को, विभिन्न व्यवधानों के बीच, समेटने में सफल हुई.

हृदय से मैं अपने पति डॉ. दिनेश सराफ की चिर ऋणी हूँ जिनके हृदय की उदारता को शब्दों की सीमा में बाँधना असंभव है. ईश्वर प्रदत्त दुःखद क्षणों तथा मानसिक क्लेश के सत्रों में उन्होंने मुझे टूटने से बचाया तथा मेरी अस्वस्थता की स्थिति में, इस शोध प्रबंध को पूर्ण करने के लिए पितृगृह जाने की आज्ञा दी, साथ ही निरन्तर मेरा उत्साहवर्धन किया.

अपनी छोटी बहिन कुमारी शशि सराफ, भाई सत्येन्द्र सराफ, शैलेन्द्र सराफ तथा सुरेन्द्र सराफ का मुक्त सहयोग भी महत्वपूर्ण रहा है. प्रिय शैलेन्द्र का इस कार्य के पूर्ण होने में विशेष योगदान रहा है. उसने अपनी एम. फार्म. की पढ़ाई की व्यस्तता के बीच भी मुझे तत्परता पूर्वक सहयोग दिया. प्रस्तुत शोध प्रबंध के सुरुचिपूर्ण एवँ त्रुटिहीन टँकण में भाई प्रदीप सराफ की जो विशिष्ट भूमिका रही, उसका उल्लेख करना भी मैं अपना नैतिक दायित्व ही मानती हूँ.

अपने निरन्तर उत्साहवर्धन के लिए मैं स्व. दिनेश दीक्षित की आभारी हूँ. पितातुल्य श्री नारायण शंकर धगट से मुझे सभी प्रकार का सहयोग प्राप्त हुआ. मेरी कठिनाइयों को दूर करने में श्री धगट जी का जो अकथनीय सहयोग प्राप्त हुआ है, उसके प्रति मैं श्रद्धा से अवनत हूँ. श्रीमति मीनाक्षी जैन तथा श्री मनोहर जैन एवँ महमूद अली से प्राप्त सहयोग के लिए मैं आभारी हूँ.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली द्वारा 4 वर्षों के लिए प्रदत्त "जूनियर रिसर्च फैलोशिप" के रूप में दी गई आर्थिक सहायता के लिए मैं अपनी कृतज्ञता की मुखर स्वीकृति करना अपना नैतिक दायित्व मानती हूँ. आयोग से प्राप्त इस आर्थिक सहायता/सहयोग ने मेरे शोध कार्य को सुगम बनाया है.

जवाहर लाल नेहरू पुस्तकालयाध्यक्ष डॉ. हरीसिंह सेंगर, पुस्तकालय में कार्यरत् श्री आर. एन. सैनी, श्री हंसराज नामदेव एवं श्री राजेन्द्र श्रीवास्तव तथा अन्य कर्मचारियों द्वारा दिए गए सहयोग के लिए मैं अपना आभार व्यक्त करती हूँ. मुख्य कार्यालय में कार्यरत् श्री वाय. एन. श्रीवास्तव, श्री नन्दन शुक्ला तथा श्री कुँदन लाल गौतम की भी मैं हृदय से आभारी हूँ.

शोध प्रबंध के मुख पृष्ठ की कलात्मक सज्जा का श्रेय चाचाजी श्री अनिल शर्मा एवं चाची जी श्रीमति शकुन्तला शर्मा को है, जिन्होंने अपनी दैनन्दिन व्यस्तताओं के बीच भी इस दायित्व का निर्वाह कर मुझे अपने स्नेह से आपूरित किया.

अंत में उन सभी ज्ञात-अज्ञात, प्राचीन अर्वाचीन विद्वानों के प्रति आभार प्रकट करती हूँ, जिनकी कृतियों से मैंने साहित्य एकत्रित किया. इसके अतिरिक्त उन सभी व्यक्तियों को मैं धन्यवाद देती हूँ, जिनका किसी भी प्रकार का प्रत्यक्ष/अप्रत्यक्ष सहयोग मुझे प्राप्त हुआ.

इस शोध प्रबंध की आधार सामग्री गुप्तकालीन अभिलेख, मुद्रायें, मुहरें एवं तत्कालीन साहित्य है. गुप्तकालीन अभिलेखों में जानफेथफुल फ्लीट द्वारा संपादित पुस्तक "<u>कार्पस इन्सक्रिप्शनम्</u>

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इण्डिकेरम् (भाग 3) के हिंदी रूपान्तर "भारतीय अभिलेख संग्रह (भाग 3), प्रारंभिक गुप्त शासकों के अभिलेख, अनुवादक : गिरिजा शंकर प्रसाद मिश्र को ही आधार माना है.

गुप्तकालीन संस्कृत साहित्य में कवि एवं नाटककार कालिदास, शूद्रक एवं विशाखदत्त प्रमुख हैं. कुछ इतिहासकार महाकवि कालिदास को गुप्तकालीन नहीं मानते, किंतु मैंने महाकवि कालिदास को गुप्तकाल का ही मानते हुए उनकी कृतियों से सामग्री एकत्रित की है.

शोध-प्रबंध में दी गई रेखानुकृतियाँ अहिच्छत्रा : संपादक कृष्णदत्त वाजपेयी एवं भारतीय प्राचीन वेशभूषा : डॉ. मोतीचंद्र से ली गई हैं.

कृपया शोध प्रबंध के टंकण में हुई त्रुटि " " को " " पढ़ा जावे.

8.4.87

ज्योति सराफ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय : 1

भारतीय सामाजिक परंपरा में
नारी का स्थान.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतीय संस्कृति के उन्मेषकाल में नारी की प्रतिष्ठा को पुरुष के समानान्तर ही स्वीकारा गया था. वैदिक काल की सामाजिक धार्मिक व्यवस्था में ऐसे संकेत प्राप्त होते हैं कि इस कालखंड में महिलाओं की प्रतिष्ठित सामाजिक स्थिति थी. बौद्धिक एवं आध्यात्मिक जीवन में उन्हें पुरुषों के समान ही स्थान प्राप्त था. दर्शन, काव्य तथा कर्मकाण्ड---- तीनों ही क्षेत्रों में उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व की स्पृहणीय भूमिका रही. ऋचाओं के दर्शन करने वाले द्रष्टाओं, आध्यात्मिक चिंतन करने वाले दार्शनिकों तथा कर्मकाण्ड के ज्ञाता ऋत्विजों जैसे प्रतिष्ठित पद भी महिलाओं ने प्राप्त किए थे. वे धार्मिक कृत्यों/अनुष्ठानों में पुरुषों के साथ सक्रिय सहभागी हुआ करती थीं.

ऋग्वेद में विभिन्न व्यापारों की कल्पना दैवीय सत्ताओं के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रूप में करते हुए तथा उनमें विशिष्ट भूमिकाओं को आरोपित करते हुए उनका मानवीकरण किया गया : "इन्द्र", "अग्नि", "द्यावा", "पृथ्वी", "अदिति", "उषा", "श्रद्धा", "वाक्", "वरुण" इत्यादि देवताओं को विशिष्ट नैसर्गिक व्यापारों का अधिष्ठाता स्वीकारते हुए उनकी अतिमानवीय रूप में कल्पना की गई.[1] जहाँ एक ओर पुरुष प्रधान दैवीय सत्ताओं की अवधारणा की गई, वहाँ नारी की सर्वथा उपेक्षा नहीं हुई. कारण, वैदिक साहित्य में नारी सृष्टिपरक सत्ताओं के रूप में अधिष्ठित है, जिसमें पुरुष एवँ नारी को एक दूसरे का पूरक स्वीकारा गया है. वैदिक वाङ्मय में "प्रजापति-वाक्",[2] "द्यावा-पृथिवी"[3], "अग्नि सोम" तथा "योषा-वृषा" जैसे शब्द युगल प्रमाण स्वरूप उपलब्ध हैं. प्रत्येक देवता के साथ उसकी "केन्द्रकशक्ति" ‖न्यूक्लीयर इनर्जी पॉवर‖ की कल्पना भी जुड़ी हुई है. इस "केन्द्रकशक्ति" को ही देवताओं की "दैवीय शक्ति" अथवा "शची" शब्द से अभिव्यक्त किया गया है.[4] यहाँ "शक्ति" एवँ "शची" के साथ जो विचार जुड़े हुए हैं वे सृष्टि, रक्षा, वीरता एवँ औदार्य ‖उदारता‖ से संबंधित हैं. _ऋग्वेद_ में वर्णित "ग्ना" पद "दैवीय नारी सत्ताओं/शक्तियों का समूह है".[5] "सरस्वती", "भारती", "धिषणा", "इला", "इन्द्राणी", "पुरंधि", "अग्नायी", "होत्रा", तथा "वरुणानि" इत्यादि "ग्नास्पति" के ही अन्य नाम हैं.[6] जिस प्रकार "देवी" या "शक्ति" पश्चात्कालीन साहित्य में "शिव" से ही संबंधित हैं उसी

---

1. दुर्खीम, 1964, पृष्ठ 19
2. _काठक संहिता_, 12.5
3. _ऋग्वेद_, 1.143.2, 159.1
4. _ऋग्वेद_, 10.159
   दास, 1934, पृष्ठ 11 -"It appears that the seers of the Rigveda wear more fond of the word saci than of sakti. Saci is the typical vedic word to denote the "Divine Powers" of the gods".
5. दास, 1935, पृष्ठ 10 एवँ 15
6. वही, 1934, पृष्ठ 15

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकार "इन्द्राणी", "वरूणानि", "अग्नायी" एवँ "रोदसी" क्रमशः "इन्द्र", "वरूण", "अग्नि", एवँ "मरूतों" की पत्नियों के रूप में निरूपित हैं. अनेकों ऋचाओं में इसी भाँति इनकी स्तुति की गई है.[1] ऋग्वेद में "इन्द्राणी" एवँ अन्य तीन को "देव पत्नी" एवँ "ज्ञ" कहा गया है.[2]

ऋग्वेद में वर्णित द्वैतात्मक अवधारणा में "प्रजापति–वाक्" महत्वपूर्ण हैं, जहाँ "वाक्" को "प्रजापति" की द्वितीया शक्ति के रूप में माना गया है, अथर्ववेद में इसे "वाक् देवी" (वाणी स्वरूपिणी देवी) "परमेष्ठिनी" (सर्वोत्कृष्ट परमात्मा में अवस्थित) तथा "ब्रम्हसंशिता" (वेदज्ञान से आपूर्ण) निरूपित किया गया है.[3] इस द्वैत को सृष्टिपरक सँदर्भ में काठक सँहिता इस प्रकार प्रस्तुत करती है:

> "सर्वप्रथम केवल "प्रजापति" ही था. "वाक्" उसकी द्वितीया के रूप में उसके साथ थी. दोनों का सम्मिलन हुआ, "वाक्" ने गर्भधारण किया...... उससे प्रजा प्रसूत हुई. वह पुनः "प्रजापति" में प्रविष्ट हो गई".[4]

इन्हीं "वाक्" की स्तुति ऋग्वेद में "विश्व की प्रमुख प्राकृत एवँ भौतिक शक्तियों की सँचालिका, सँरक्षिका, धनदात्री एवँ सर्वव्यापक सत्ता के रूप में की गई, जिसकी आज्ञा पर ही संपूर्ण साँसारिक कार्य निर्भर है.[5]

विभिन्न वैदिक देवियों को जिन्हें ऋग्वेद में "ज्ञ" जैसे प्रत्यय से अभिहित किया गया है, ब्राम्हण एवँ औपनिषदिक वाङ्मय में उसे "वाक्" जैसे एक शब्द से संबोधित किया गया है.[6]

---

1. ऋग्वेद, 1.22.12, 5.56.8, 6.50.5, 1.167.4, 6.66.6
2. काणे, पी.वी. धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 5 पृष्ठ 11
3. अथर्ववेद, 19.9.3
4. काठक सँहिता 12.5
5. ऋग्वेद, 10.125.1–8
6. दास, 1934, पृष्ठ 21

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वेदों में मंत्र की द्रष्टा, ऋषिकाओं के रूप में प्रसिद्ध महिमामयी एवँ विदुषी नारियाँ अपने सद्गुणों से प्रतिष्ठित हैं. "लोपामुद्रा",[1] "विश्ववारा",[2] "सिकता निवावरी",[3] "घोषा",[4] "गोधा",[5] "अपाला-आत्रेयी",[6] इत्यादि-----ये ऐसी विदुषी नारियाँ हैं जिन्होंने ऋग्वेद के विभिन्न मँडलों में विभिन्न सूत्रों एवं ऋचाओं का प्रणयन किया. इन ऋचाओं में नारी जीवन से संबंधित सभी पक्षों को ध्यान में रखकर उपदेश दिए गए हैं.

धन की देवी "लक्ष्मी", विद्या की देवी "सरस्वती" तथा शक्ति की देवी "दुर्गा" की ही भाँति "इन्द्राणी", "अदिति", "भारती" "वाक्", "रोमशा", "ऊषा", "इला", "पृश्नि", "सिनीवाली", "राका", "सरस्वती", "गंङ्गू", "कुहू देव पत्नी" इत्यादि अनेक वैदिक देवियाँ अनेक मँत्रों की अधिष्ठात्री हैं. इन्हें कहीं "देवमाता" कहीं "कन्या" तो कहीं "भौतिक शक्तियों की सँचालिका" कहा गया है.[7]

ऋग्वेद में ही नहीं, वैदिक दर्शन शास्त्र की सातों श्रेणियों (न्याय दर्शन, वैशेषिक दर्शन, योग दर्शन, साँख्य दर्शन, कर्ममीमाँसा दर्शन, दैवी मीमाँसा दर्शन तथा ब्रम्हमीमाँसा दर्शन) के सिद्धाँतों में "पुरुष और प्रकृति" संबंधी विचार का रूपान्तर से वर्णन है, किंतु प्रकृति का विस्तृत महत्व साँख्य प्रवचन दर्शनों और मीमाँसा दर्शनों में पाया जाता है.

---

1. ऋग्वेद, 1. 179
2. वही, 5. 28
3. वही, 9. 86
4. वही, 10. 39-40
5. वही, 10. 134
6. वही, 8. 91
7. ऋग्वेद, 10. 8. 185, 10. 72, 2. 27. 2, 10. 125. 4-5, 1. 126
   1. 123-24, 2. 32.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वैदिक दर्शन शास्त्रों के अनुसार सृष्टिकार्य में "प्रकृति" का बहुत कुछ प्राधान्य है. चाहे कोई दर्शनशास्त्र उसे "मूल प्रकृति" कहे, चाहे "महामाया" अथवा ब्रम्हशक्ति. लेकिन सभी दर्शन शास्त्रों ने सृष्टि क्रिया में "प्रकृति" का प्राधान्य स्वीकारा है. "स्त्रीधारा" और "पुरूषधारा" ये जीव सृष्टि की दो स्वतंत्र धारायें हैं. "मीमांसा दर्शन" के अनुसार "मूल प्रकृति" से "स्त्रीधारा" का विशेष संबंध है". इस प्रकार "स्त्रीमात्र ही प्रकृति रूपिणी है" कहना गलत न होगा : सप्तशतीचण्डी के अनुसार : "समस्त विद्या और सब स्त्रियाँ देवी की ही रूप हैं".[1] इसी प्रकार देवी भागवत् में : "सभी ग्राम्य देवियाँ और समस्त विश्वस्थिता स्त्रियाँ प्रकृति माता की ही अँश रूपिणी हैं".[2]

पुरूष के स्थान पर "प्रकृति" ही प्रमुख तथा जगत की सृष्टि, स्थिति, लय, क्रिया का कारण है. दूसरी ओर इस सँसार में स्त्री ही माया, मोह या प्रेम-रज्जू से पुरूष को बाँधकर सँसार के सब कार्यों का कारण बनती है. सृष्टि के विकास में नारी का बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है. "पुरूष-प्रकृति" जैसा शब्द युग्म ही "साँख्य दर्शन" की आधारभूमि का निर्माण करता है. "शिव-शक्ति" तथा "लिंग-योनि" जैसी द्वैतात्मक धारणायें इसी अन्योन्याश्रितता का स्मरण कराती हैं. साँख्य दर्शन के प्रभाव से ही कालान्तर में "शक्ति मत" का विकास हुआ. शाक्तों की आराध्या "जगन्माता", "महामाया" है. सभी सम्प्रदायों ने अपने-अपने आराध्यों को पुरूषाकार माना है, पर शाक्तों ने उसी तत्व को नारी स्वरूप माना है, क्योंकि उसी स्वरूप में सर्वशक्तिमत्ता सर्वतन्मयता तथा अखिल व्यापकता के गुणों का ध्यान हो सकता है. कारण ही कार्य में सदा अनुस्यूत रहता है. वह कारण "माया" है जिसे शाक्त "सती"

---

1. विद्या: समस्तास्तव देवी भेदा:
   स्त्रिय: समस्ता सकला जगत्सु .
   —<u>दुर्गासप्तशती</u>
2. या याश्च ग्राम्य देव्य: स्युस्ता: सर्वा प्रकृते: कला,
   कलांशांशसमुद्भूता प्रति विश्वेषु योषित:
   —<u>देवीभागवत</u>

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कहते हैं।[1] यहाँ "सती शक्ति" कहीं स्तब्ध रहती और कहीं प्रकाशशील. शक्ति दर्शन के अनुसार अनन्त स्तब्ध शक्ति की प्रतिमा कुमारिकाएँ हैं, क्योंकि कालान्तर में इन्हीं से सन्ततियाँ उत्पन्न होकर जगन्माता के विकास में योग देती हैं. शक्ति का महत्व अन्यतम् है. बिना शक्ति के शिव भी शव है. शक्ति कर्मण्यता का प्रतीक है. अकर्मण्य पुरूष को कर्म की प्रेरणा शक्ति से ही मिलती है. पुरूष रूप में ब्रम्ह का सर्वातीत निष्क्रिय भाव प्रकट होता है. नारी का यही शक्ति रूप "शाक्तमत" की विशेषता है.

जिस सम्प्रदाय में शक्ति की उपासना नहीं, वह नीरस सम्प्रदाय है, नारी प्राणदात्री है, वह सरसता का संचार करके सृष्टि के सृजन कार्य को सुचारू रूप से संचालित करने के लिये सुंदर से सुंदर, सर्वश्रेष्ठ साधन है. नारी "जगदम्बिका" है, "जगज्जननी" है, सृष्टि स्थिति तथा प्रलयंकारी है उसके अनेक रूप हैं:

> "जो नारी सब कार्यों में प्रयत्नशील है, जो नारी सब कार्यों में दक्ष है, जो नारी पुत्र प्रसविनि है, जो नारी पतिव्रता है, जो नारी पति को प्राण समान प्यार करने वाली है, वह नारी धर्मभागिनी है".[2]

शास्त्रों में भगवान को माता और पिता दोनों कहा गया है. उनका मातृरूप भी है और पितृरूप भी. किंतु बच्चे का जितना स्नेह माता के प्रति होता है उतना पिता के प्रति नहीं होता. संभवत: इसी कारण प्रारंभ से ही शक्ति की उपासना का आदेश है. "सावित्री" की दीक्षा दी जाती है. "गणेशाय नम:" के पूर्व "श्री" लगाना अनिवार्य

---

1. सहाय, काशीनाथ, <u>सांख्यदर्शन</u>, पृष्ठ 19
2. या नारी प्रयता दक्षा या नारी पुत्रिणी भवेत,
   पतिव्रता पतिप्राणा सा नारी धर्मभागिनी.

   --<u>विष्णुधर्मोत्तर पुराण</u>, 3. 322. 11

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है. राम, कृष्ण, शिव, विष्णु----कोई क्यों न हो, जब तक उनके पूर्व उनकी शक्ति नहीं, तब तक वे कुछ भी करने में समर्थ नहीं, सीता के बिना राम अधूरे हैं, नटेश्वर, नारी के बिना अर्द्धांग है, राधा के बिना कृष्ण अधूरे हैं. आद्यशँकराचार्य के द्वारा प्रणीत सौंदर्य लहरी[1] तथा अर्धनारी नटेश्वर[2] में इसी आध्यात्मिक एवँ द्वैतात्मक अवधारणा को नितान्त काव्यात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की गई है.

वाग् व्यवहार में भी पत्नी का नाम पहिले लिया जाता है, पीछे पुरूष का "सीता-राम", "लक्ष्मी-नारायण", "गौरी-शँकर", "वाणी-हिरण्यगर्भ", "शची-पुरन्दर" एवँ "माता-पिता" इत्यादि.

मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास तथा समाज के उत्थान के लिए प्राचीन काल में चार पुरूषार्थों की व्यवस्था की गई----धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष. अँतिम पुरूषार्थ "मोक्ष" ही परम लक्ष्य है. इन पुरूषार्थों द्वारा व्यक्ति और समाज दोनों पर नियँत्रण होता है. साथ ही, उनके पारस्परिक सँबंधों का नियमन भी इन्हीं पुरूषार्थों के द्वारा सँभव है. इनकी प्राप्ति के लिए ही "वर्णाश्रम व्यवस्था" की कल्पना की गई. चारों पुरूषार्थों में नारी का योगदान ही नहीं है वरन् नारी के बिना इनका सम्पादन ही असँभव है.

---

1. शिव शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्त:
प्रभवितुं न चे देव देवो खलु कुशल: स्पन्दि तुमपि,
अतस्त्वामाराध्यॉं हरिहर विरिंचादिभिरपि प्रणन्तु
स्तोतुं व कथम कृतपुण्य प्रभवति.
--सौंदर्य लहरी

2. प्रपंच सृष्ट्युन्मुखलास्यकार्य समस्त सँहारक ताण्डवाय
जगज्जन्नयै जगदेकपित्रे नम: शिवायै च नम: शिवाय
प्रदीप्त रत्नोज्ज्वल कुण्डलार्य स्फुरन्महापन्नग भूषणायय
शिवान्वितार्यै च शिवान्विताय नम: शिवायै च नम: शिवाय.
--अर्धनारी नटेश्वर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

<u>महाभारत</u>[1] के अनुसार "धर्म" की स्थापना सृष्टि के हित के लिए हुई है तथा कोई धार्मिक अनुष्ठान नारी के बिना सम्पादित नहीं हो सकते. व्यक्ति अर्थोपार्जन करता है किंतु गार्हस्थ्य के रक्षण तथा अन्वेषण का भार नारी के ऊपर ही है. "काम" के साम्राज्य की अधिष्ठात्री नारी ही तो है. अंतिम पुरुषार्थ "मोक्ष" की प्रयोजक भी नारी ही है. विषय सेवन में नारी की मुख्य भूमिका है. विषय सेवन से ही विषय की कटुता का ज्ञान होता है. जब विषय की कटुता का ज्ञान हो जाता है तब उससे विराग या वैराग्य संभव होता है. यह वैराग्य ही मोक्ष का कारण बनता है. अत: मनुष्य को मोक्ष की दिशा में प्रवृत्त कराने में नारी की महत्त्वपूर्ण भूमिका है.

उत्तर वैदिक युग में नारी का जीवन समुन्नत होते हुए भी पतनोन्मुख था.[2] नारी के प्रति समान रूप से आदर एवं अनादर के प्रमाण वैदिक साहित्य में प्राप्त होते हैं. प्राचीन काल में कन्या का जन्म हर्ष का विषय नहीं था. <u>अथर्ववेद</u> में पुत्री जन्म पर खिन्नता प्रकट की गई है.[3] किंतु सुसंस्कृत दम्पत्ति पुत्री प्राप्ति की भी कामना करते थे. जहाँ एक ओर <u>बृहदारण्यकोपनिषद्</u> में पंडिता कन्या प्राप्ति की कामना के मँत्र मिलते हैं[4], वहीं दूसरी ओर <u>ऐतरेय ब्राम्हण</u> तो पुत्री को "कृपण" की सँज्ञा देता है.[5] धार्मिक एवं आर्थिक दृष्टि से महत्ता एवं उपयोगिता कम होने के कारण पुत्र की अपेक्षा पुत्री की स्थिति हीन थी, फिर भी "धीमती कन्या" की प्राप्ति के साधन बताये गये हैं[6].

---

1. <u>महाभारत</u>, 109, 10, 58, 59
2. राव, 1966, पृष्ठ 153
3. <u>अथर्ववेद</u>, 6. 2. 3
4. <u>बृहदारण्यकोपनिषद्</u>, 6. 4. 17
5. <u>ऐतरेय ब्राम्हण</u>, 33. 1
6. <u>बृहदारण्यकोपनिषद्</u>, 4. 27

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राचीनकाल में कन्यायें वेदाध्ययन तथा यज्ञ करती थीं एवं अपने विवाह की समस्या को स्वयं ही सुलझाती थीं. वैधव्य का भय नहीं था, क्योंकि पुनर्विवाह का प्रचलन था, अत: कन्यायें अप्रिय अथवा दुख का कारण नहीं मानी जाती थीं, किंतु धीरे-धीरे बाल विवाह का प्रचलन हो गया और विधवा विवाह वर्जित हो गए. साथ ही, अन्तर्जातीय विवाह अस्वीकार्य हो गये. फलत:, वर खोजना एक कठिन कार्य हो गया. परिणामस्वरूप कन्या का जन्म दुख का कारण माना जाने लगा. ऐतरेय ब्राम्हण के अनुसार, जहाँ पुत्र वंश के लिए आशा है वहाँ कन्या कष्टों का उद्भव स्थान.[1] इसी प्रकार का प्रसंग महाभारत में भी है.[2] अत: पुत्री जन्म, स्त्रीत्व के प्रति हीन दृष्टि के फलस्वरूप दुख का कारण नहीं अपितु उसे सुख और सुविधामय जीवन देने की चिंता के कारण था.[3] "पृथ्वी दान" का महत्व पिता को पुत्री के विवाह से ही प्राप्त होता था. माता-पिता को विपत्तियों से बचाने वाली "कुन्ती" और "लोपामुद्रा" जैसी कन्यायें उल्लेखनीय हैं.[4]

परिवार में कन्या को पुत्रवत् ही स्नेह प्राप्त होता था. पिता द्वारा पुत्री के कल्याण के लिये मंत्रोच्चार का उल्लेख मिलता है.[5] प्राचीन काल में धारणा थी कि कन्याएँ शुभ मानी जाती थीं तथा उनमें भाग्यदेवी का निवास होता था. संभवत: इसी कारण राम के वनवास से वापिस अयोध्या लौटने पर उनका अभिषेक तथा स्वागत कुमारी कन्याओं द्वारा ही किया गया था. अभिषेक के पूर्व कुमारी कन्याओं के हाथों से ही राम ने स्नान किया था.[6]

---

1. ऐतरेय ब्राम्हण, 7. 18
2. महाभारत, 1. 173. 10
3. सिन्हा, कृष्णा, गुप्तकालीन नाटकों में नारी पात्र, 1959, पृष्ठ 2
4. महाभारत, 3. 304, 3. 59
5. आपस्तम्ब गृह्सूत्र, 15. 12. 2
6. रामायण, 6. 131, 38. 61

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विभिन्न प्रकार के धार्मिक कृत्य, संध्या प्रार्थना एवं यज्ञों में वैदिक मंत्रों के पाठ के योग्य वही होता था जिसका "उपनयन संस्कार" हुआ हो. अत: प्राचीनकाल में बालकों की भाँति बालिकाओं का उपनयन भी स्वाभाविक था. <u>अथर्ववेद</u> में सर्वप्रथम कन्याओं द्वारा ब्रम्हचर्यव्रत पालन का स्पष्ट रूप से उल्लेख है![1] ईसा पूर्व 500 तक के सूत्र भी यही प्रमाणित करते हैं. मनु ने तो कन्याओं के लिये उपनयन संस्कार अनिवार्य बताया है.[2] लगभग प्रथम शताब्दि तक पुत्रों की भाँति पुत्रियों के भी विधिवत् उपनयन संस्कार अथवा वेदाध्ययन संस्कार अथवा वेदाध्ययन के लिए दीक्षित होने की व्यवस्था थी. लेकिन परिवर्तित युग में उनकी संख्या कम होती गई और उपनयन आचार मात्र रह गया, वह विवाह के समय सम्पादित होने वाला धार्मिक विधान की पूर्ति मात्र रहा.[3] कारण, ईसा की आरम्भिक शताब्दियों से ही कन्याओं का उपनयन बंद हो गया.

"ब्रम्हवादिनी" और "सद्योवधू" ये कन्याओं के 2 वर्ग थे. "ब्रम्हवादिनी" को उपनयन संस्कार के नियमों का पालन करना अनिवार्य था. जैसे, अग्नि प्रज्वलित करना, वेदाध्ययन करना, भैक्षचर्या इत्यादि. किन्तु "सद्योवधू" के लिये उपनयन आचार मात्र था. जो विवाह मुहूर्त के निकट ही उपनयन के बाद विवाह किया जाता था.[4] उपनयन संस्कार के प्रतीक स्वरूप यज्ञोपवीत को कन्या धारण करती थी.[5] मनु, जातकर्म से उपनयन तक सभी संस्कार कन्याओं को अनिवार्य किंतु मन्त्रों के बिना ही इनका सम्पन्न होना बताते हैं.[6] केवल कन्याओं के विवाह संस्कार को

---

1. <u>अथर्ववेद</u>, 11.5.18
2. <u>मनुस्मृति</u>, 2.66
3. <u>स्मृति चन्द्रिका</u>, 1, पृष्ठ 24, एवं
   <u>गोभिल गृहसूत्र</u>, 2.1.19
4. <u>हारीत धर्म सूत्र</u>, <u>स्मृतिचन्द्रिका</u> से उद्धृत
5. <u>गोभिल गृहसूत्र</u>, 2.1.19
6. <u>मनुस्मृति</u>, 2.66

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वैदिक मंत्रों सहित किया जाना उन्होंने स्वीकारा है।[1] मनु के समय तक उपनयन संस्कार अप्रचलित हो गया था यद्यपि उसके पूर्व यह प्रचलित था.

शिक्षा की व्यवस्था में पुत्र पुत्री में कोई भेद नहीं था. शिक्षा का उद्देश्य कन्या को विदुषी बनाने के साथ ही सामाजिक जीवन के उपयुक्त बनाना था. शिक्षा, शारीरिक एवं बौद्धिक शक्तियों का विकास करती हुई समाज और धर्म के उन सभी नियमों से परिचित कराती थी जो सफल गृहस्थ जीवन के लिये अत्यावश्यक थे. ईसा पूर्व 200 तक नारियों को वेदाध्ययन और यज्ञ करने का अधिकार प्राप्त था. ऋग्वेद के अनेक मंत्रों की द्रष्टा नारियाँ हैं. "अपाला", "घोषा", "लोपामुद्रा", "सिकता", "निवावरी", "रोमशा", "विश्ववारा" एवं "उर्वशी" इत्यादि. यज्ञ में पति के साथ पत्नि की अनिवार्यता थी.[2] प्राचीनकाल में विदुषी कन्या की प्राप्ति के लिये गर्भाधान के अवसर पर विशेष उत्सव का आयोजन होता था.[3]

अग्रहायण विधि के स्त्रस्तरारोहण संस्कार में पत्नि को भी कई वैदिक मंत्रों का पाठ करना अनिवार्य था.[4] "कौशल्या"[5] और "तारा"[6] के मंत्रविद होने का उल्लेख है. इसी प्रकार "कुंती" भी अथर्ववेद की पंडिता थी.[7]

वैदिक काल में बाल विवाह की प्रथा का प्रचलन नहीं था. ईसा पूर्व तीसरी शती के लगभग विवाह की अवस्था 16 वर्ष हो गई. संभवत:

---

1. मनुस्मृति, 2.67
2. शतपथ ब्राम्हण, 5.1, 6.10
3. बृहदारण्यकोपनिषद, 6.4.17
4. पारस्कर गृहसूत्र, 3.2
5. रामायण, 2.20.15
6. रामायण, 6.4.16.12
7. महाभारत, 3.30.5.20

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

14 वर्ष की आयु तक लड़कियाँ शिक्षा ग्रहण करती थीं. ईस्वी शती के प्रारंभ तक लड़कियों को पुत्रवत् ही वेदाध्ययन का अधिकार था. उपनयन के पश्चात् वे दक्षताएँ तथा शिक्षा प्राप्त की जाती थीं जो योग्य वर प्राप्त करने के लिए अत्यावश्यक थीं.[1] अतः सभी वैदिक आर्य कन्याओं को कुछ-न-कुछ वैदिक एवँ साहित्यिक शिक्षा देना अनिवार्य था.

स्त्रियों के धार्मिक अधिकारों में ह्रास के कारण नारी शिक्षा की अवनति प्रारँभ हो गई. प्राचीनकाल में कन्या के उपनयन सँस्कार के कारण उच्च शिक्षा अवश्य मिल जाती होगी, किंतु क्रमशः उपनयन पर प्रतिबँध लगने के कारण वह केवल औपचारिक हो गया तथा ई.पू. 500 के लगभग बालिकाओं को उपनयन के बाद शिक्षा देना आवश्यक नहीं रह गया.[2] स्त्रियों के उपनयन समाप्त होने से उनके धार्मिक अधिकारों एवँ स्थिति पर बुरा प्रभाव पड़ा, उन्हें शूद्रों की कोटि में रखकर वेदाध्ययन, वेद पाठ तथा यज्ञ सम्पादन के अयोग्य घोषित किया गया.[3] वैदिक काल में विवाह की आयु 16-17 वर्ष थी किंतु लगभग 500 ईसा पूर्व में यह घटकर 13-14 वर्ष रह गई. जब अल्पायु में विवाह करना समाज का आदर्श बन गया, तब नारी शिक्षा का ह्रास प्रारँभ हो गया.

वैदिक काल में छात्राओं के 2 वर्ग थे. "सद्योवधू" एवं "ब्रम्हवादिनी". प्रार्थना एवँ यज्ञों के निमित्त "ब्रम्हवादिनी" के लिए आवश्यक तथा महत्वपूर्ण वैदिक मँत्रों की शिक्षा दी जाती थी. इसके साथ ही सँगीत तथा नृत्य कला की भी शिक्षा उन्हें दी जाती थी.[4] अध्ययन समाप्ति कर "ब्रम्हवादिनी" युवतियों का विवाह होता था किंतु कुछ ब्रम्हवादिनियों ने अविवाहित जीवन भी व्यतीत किया.[5]

---

1. अथर्ववेद, 9.5.18
2. स्मृतिचंद्रिका, पृष्ठ 62
   वीर मित्रोदय, पृष्ठ 402 पर हारीत का वचन
3. पुराण तंत्र, वीरमित्रोदय, पृष्ठ 40
4. शतपथ ब्राम्हण, 3.2.4.6
5. रामायण, 7.17

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संस्कृत साहित्य में प्राप्त "उपाध्याया" एवं "उपाध्यायानी" शब्द महिला अध्यापिकाओं की उपस्थिति इंगित करते हैं. संभवत: "उपाध्यायानी" शब्द उपाध्याय की पत्नि को आदरसूचक एवं "उपाध्याया"[1] शब्द महिला शिक्षिकाओं के लिये प्रयोग किया गया है. एक पृथक शब्द की रचना उनकी अधिकता को प्रमाणित करती है.

हिन्दू समाज में पर्दा प्रथा के अभाव के कारण महिलाओं का अध्यापन कार्य सुगम था. संभवत: "उपाध्याएँ" ही छात्राओं को पढ़ाती थीं. पाणिनी ने तो छात्री शालाओं का उल्लेख किया है. कतिपय उपाध्याएँ ही उनकी संरक्षिकाएँ होती थीं.

संगीत, नृत्य तथा चित्रकला में अर्हता प्राप्त करने की दिशा में स्त्रियों को ऋग्वैदिक काल से ही प्रोत्साहित किया जाता रहा था.[2] सामगान स्त्रियों का विशेष कार्य समझा जाता था. वे विशेष अवसरों पर गीत गाती थीं.[3] तैत्तिरीय संहिता[4] एवं मैत्रायणी संहिता[5] के संदर्भों से ऐसा प्रमाणित होता है कि स्त्रियों की अभिरूचि संगीत तथा नृत्य की ओर थी. शतपथ ब्राम्हण में तो सामगान स्त्रियों का विशेष कार्य बताया गया है.[6] अत: स्पष्ट है कि उत्तर वैदिक काल में संगीत कला में स्त्रियाँ प्रवीण होती थीं क्योंकि मंत्रों के शुद्ध पाठ एवं स्वरों के उचित

---

1. पातन्जलि योग प्रदीप, 3.822
   कात्यायन को तंत्रवार्तिक में भी स्त्री शिक्षिका के लिए "उपाध्याया" अथवा "उपाध्यायी" शब्दों का प्रयोग किया गया है.
   थापर, रोमिला, 1977, पृष्ठ 124
2. अष्टाध्यायी, 6.2.68
3. ऋग्वेद, 9.68.8
4. तैत्तिरीय संहिता, 6.16.5.6
5. मैत्रायणी संहिता, 3.7.3
6. शतपथ ब्राम्हण, 14.3.1.35

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आरोह-अवरोह की क्षमता स्त्रियों में थी. गृहसूत्र युग तक स्त्रियों को वेदाध्ययन का अधिकार था. आश्वलायन गृहसूत्र[1] में स्त्रियों के समावर्तन संस्कार का वर्णन मिलता है. आपस्तम्ब धर्म सूत्र[2] के अनुसार अनुल्लिखित कर्तव्यों का ज्ञान स्त्रियों से प्राप्त करना चाहिए क्योंकि उनका ज्ञान समस्त अध्ययन का पूरक है. महाभारत में भी ललित कलाओं में शिक्षित स्त्रियों के उल्लेख मिलते हैं.

ईसा पूर्व 320 से 200 ईस्वी तक साधारण समाज में नारी शिक्षा की अवनति हुई लेकिन धनी, सुसंस्कृत, सामन्त एवं राजघरानों में अभी भी नारी शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता था. उन्हें वैदिक शिक्षा न देकर साहित्य की पर्याप्त शिक्षा दी जाती थी. वे संस्कृत एवं प्राकृत भाषाओं का अच्छा ज्ञान रखती थीं. "साहित्य संगीत कला विहीन: साक्षात्पशु पुच्छविषाणहीन:" जैसी उक्तियाँ इसी युग के उस वैशिष्ट्य की ओर संकेत करती हैं, जिसमें एक सुसंस्कृत व्यक्ति की अर्हताओं में साहित्य, संगीत और कला के क्षेत्र में उसके परिचय को, उसकी दक्षता को ही प्राधान्य दिया गया.

वैदिक काल में ब्रम्हवादिनी विदुषियों ने प्रत्येक क्षेत्र में योग्यता प्राप्त की थी. वे मंत्रों की रचना करती और वैदिक साहित्य में पांडित्य भी प्राप्त करती थीं. विदुषी "काशकृत्स्नी" ने मीमांसा पर ग्रंथ रचना कर अपनी रूचि प्रदर्शित की इसलिए इसका अध्ययन करने वाली छात्रायें "काशकृत्स्ना" कहलाती थीं.[3]

उपनिषद् काल तो स्त्रियों के दार्शनिक चिंतन एवं अध्ययन के लिए ख्याति अर्जित कर चुका है, "याज्ञवल्क्य" की पत्नि "मैत्रेयी" अपने

---

1. आश्वलायन गृहसूत्र, 3. 8. 11
2. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 2. 2. 29. 15
3. भाष्य, 4. 1. 14. 5, 4. 1. 93. 9, 4. 3. 155. 5

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्रृंगार में रुचि न लेकर दर्शन की गँभीर समस्याओं को सुलझाने में रुचि लेती थी. "मैत्रेयी" के प्रश्नों से याज्ञवल्क्य जैसा प्रगल्भ ऋषि भी हतप्रभ रह गया था।[1] इसी प्रकार राजा जनक की सभा में दार्शनिक शास्त्रार्थ में "गार्गी वाचक्नवी" ने नितान्त मौलिक एवँ दुरूह प्रश्न पूछ कर सबको आश्चर्य चकित कर दिया था।[2] "सुलभा", "बुद्धवा", "मैत्रेयी" एवँ "गार्गी" आदि विदुषियाँ आदर्श स्वरूप थीं. ब्रम्हयज्ञ के समय इन ऋषिकाओं को तर्पण किया जाता था।[3] रामायण में "कौशल्या"[4] एवँ "तारा"[5] के मंत्रविद होने का वर्णन है. महाभारत की कुंती अथर्ववेद की पंडिता थी।[6]

ईसा पूर्व 200 के पूर्व नारियों को (बौद्ध एवँ जैन) संघ प्रवेश की अनुमति होने के कारण सामन्तों एवँ श्रेष्ठि वर्ग की नारियों को शिक्षा, दर्शन एवँ ज्ञान प्रसार में बहुत अवसर प्राप्त हुए. धर्म एवँ दर्शन में नारी की अभिरुचि देखकर ही भगवान महावीर एवँ भगवान बुद्ध ने नारियों को सँघ प्रवेश की अनुमति दी थी. वे ब्रम्हवादिनियों की भाँति धर्म एवँ दर्शन के द्वारा प्रतिपादित सत्य को जानने के लिए ब्रम्हचर्य व्रत का पालन करती थीं. बौद्ध धर्म का विदेशों में प्रचार करने हेतु कुछ भिक्षुणियाँ सिंहल प्रदेश भी गईं तथा वहाँ बौद्ध आगमों की महान शिक्षिकाओं के रूप में ख्याति अर्जित की.

थेरीगाथा की 50 निर्वाण प्राप्त कवियित्रियों ने साहित्यिक उन्नयन में योगदान दिया था, जिनमें 32 आजीवन ब्रम्हवादिनी तथा 18 विवाहिता भिक्षुणियाँ थीं. इनमें "शुभा", "अनुपमा", "सुमेधा",

---

1. बृहदारण्यकोपनिषद, 24. 4-5
2. बृहदारण्यकोपनिषद 3. 6. 1
3. आश्वलायन गृह्यसूत्र, 3. 4. 4
4. रामायण, 2. 20. 15
5. रामायण, 6. 4. 16. 12
6. महाभारत, 3. 305. 20

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इत्यादि उच्च कुलों की कन्यायें थीं।[1] भगवती सूत्र[2] के अनुसार "जयन्ती" धर्म एवँ दर्शन के ज्ञान की अपनी अतृप्त पिपासा के कारण ही अविवाहित रही और अँत में भिक्षुणी बन गई। इतनी अधिक सँख्या में महिलाओं द्वारा धर्म एवँ दर्शन का मनन एवँ ब्रम्हचर्य ब्रत का पालन इस ओर स्पष्ट इँगित करता है कि उनमें साधारण शिक्षा और योग्यता वाली महिलायें भी अधिक सँख्या में होंगी। बौद्धों ने नारियों के प्रति मानवीय रूख अपनाया और उसे केवल संतति पैदा करने वाला जीवन नहीं माना।[3]

उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों को पुरूष के समानान्तर ही स्वीकारा गया है। स्त्री पुरूष का आधा अँग मानी जाने के कारण अर्धांगिनी कहलाती थीं। "दम्पत्ति" शब्द इँगित करता है कि पति-पत्नि दोनों समान रूप से घर के स्वामी माने जाते थे।[4] अथर्ववेद तो पत्नी को आदेश देता है कि "जैसे समुद्र नदियों का राजा है, इसी प्रकार तू साम्राज्ञी होकर रह।"[5]

पितृऋण से मुक्ति के लिए विधिवत् विवाह एवँ पुत्रोत्पत्ति अनिवार्य थी।[6] अविवाहित पुरूष यज्ञाधिकार से वँचित रहता था।[7] महाभारत[8] में भी स्त्री पुरूष दोनों को विवाह एवँ पारिवारिक जीवन अनिवार्य बताया गया है। शतपथ ब्राम्हण के अनुसार :

---

1. हार्नर, अध्याय 2
2. भगवती सूत्र, जिल्द 3 पृष्ठ 257
3. हार्नर, पृष्ठ 22 एवँ आगे
4. अथर्ववेद, 14. 1. 42
5. अथर्ववेद, 14. 1. 43
6. तैत्तिरीय संहिता, 6. 3. 10. 5
7. शतपथ ब्राम्हण, 5. 1. 6. 10
8. महाभारत, 1. 13, 1. 45, 9, 52

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"पुरूष केवल आधा है, जब तक वह पत्नी से संयुक्त नहीं होता और संतान उत्पन्न नहीं करता, तब तक पूर्ण नहीं होता".[1]

पत्नि पति के लिए समस्त दुखों की औषधि थी.[2] महाभारत[3] एवं ऐतरेय ब्राम्हण[4] में पति को पत्नि से सखा सदृश्य व्यवहार करने के आदेश दिए गए हैं. बौद्ध तत्वज्ञों का भी यही विचार है.[5]

पत्नि के असहयोग से पति आनंद प्राप्ति का विचार भी नहीं कर सकता था.[6] गृहिणी के बिना गृह, गृह नहीं रह सकता, वन हो जाता है. गृहिणी ही गृह है.[7] पत्नि के बिना पति स्वर्ग नहीं जा सकता.[8] शतपथ ब्राम्हण में दाम्पत्य प्रेम का सुंदर उदाहरण मिलता है:

"सच्चाई पति है और विश्वास पत्नि. मन पति है और वाणी पत्नि. जहाँ पति है वहाँ पत्नि है".[9]

पत्नी का भरण पोषण करना पति का सबसे पवित्र कर्तव्य था, जो उसे प्रत्येक अवस्था में पालन करना चाहिए अन्यथा उसे पति कहलाने का कोई अधिकार नहीं रहता.[10] परिवार की उन्नति के लिए स्त्रियों को सुखी रहने के आदेश गृहपति को दिए गए हैं. जिस कुल में स्त्रियाँ दुखी हों, वह कुल अवश्य दुख को प्राप्त होगा.[11] पत्नि का परित्याग

---

1. शतपथ ब्राम्हण, 5. 1. 6-10
2. महाभारत, 3. 58. 29
3. महाभारत, 1. 374. 73
4. ऐतरेय ब्राम्हण, 7. 3. 13
5. संयुक्त निकाय, 1. 6. 4
6. गौतम धर्मसूत्र, 1. 8. 29
7. महाभारत, 12. 144
8. शतपथ ब्राम्हण, 5. 2. 1. 10
9. शतपथ ब्राम्हण, 12. 8. 2. 6
10. महाभारत, 12. 273, 37
11. महाभारत, 13. 81

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करने वाला पति ऐसा पाप करता है, जिसका कोई प्रायश्चित नहीं होता।[1] आपस्तम्ब ऐसे पति को कठोर दण्ड का भागी मानते हैं।[2]

वैदिक काल में समाज में पत्नी का पद समुचित आदर एवं सम्मान का था. फिर भी वह दूसरों की संपत्ति समझी जाती थी.

प्राचीन काल से ही मातृत्व प्रत्येक हिंदू स्त्री का आदर्श है. पितृतर्पण के लिए पुत्रोत्पत्ति आवश्यक है, अतः विवाह संस्कार के समय दम्पत्ति को पुत्र-पौत्र प्राप्ति हो ऐसी प्रार्थना की जाती थी।[3] समाज में माता का पद देव पद माना जाता था. सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र में बहिष्कृत माता को पुत्र भी नहीं त्याग सकता था।[4] माता का स्थान पिता एवं गुरू से भी ऊँचा था।[5] महाभारत में तो माता को सर्वश्रेष्ठ गुरू माना गया है।[6] आचार्य द्वारा माता पिता की देववत् पूजा का उपदेश दिया गया है।[7] पिता की भाँति पुत्र माता का भी सम्मान करता था. अथर्ववेद में तो माता के अनुकूल मन वाला होने का उपदेश दिया गया है।[8]

मौर्य काल में समाज में माता के रूप में नारी को सम्मानित स्थान प्राप्त था. अशोक ने अपने धर्म में माता पिता की सेवा को स्थान दिया, वह धर्म का श्रीगणेश घर से ही करना चाहता था.

---

1. महाभारत, 13.58.13
2. आपस्तम्ब, 1.9.18
3. ऋग्वेद, 10.85,42
5. मध्यम व्यायोग, 1.36,37,4.31,32
5. मनुस्मृति, 2.145-6
6. महाभारत, 1.196.16
7. तैत्तिरीयउपनिषद्, 1.11.2
8. अथर्ववेद, 3.30.2

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ईसा पूर्व 320 से 3 तीसरी ईस्वी तक माता के रूप में स्त्री का उच्च स्थान था. जननी के प्रति सदैव आज्ञाकारिता के कारण ही गौतमी बल श्री के पुत्र की प्रशँसा की गई है. अभिलेखों में भी रानियों के प्रति आदर एवँ सम्मान के भाव प्रदर्शित किए गए हैं. मातृपरक उपाधियों से मातृसत्तात्मक परिवार होने का सँकेत मिलता है. गौतमी पुत्र, वशिष्ठी पुत्र, माठरी पुत्र इत्यादि उपाधियाँ [illegible] प्रमाणित करती हैं कि समाज में स्त्रियों को सम्मानजनक पद प्राप्त था तथा उनके नाम के साथ ही पुत्र का नाम होता था.

प्राचीन काल में समाज में स्त्रियों के 2 वर्ग थे. साधारण स्त्री वर्ग एवँ कुलस्त्री वर्ग. कुटुम्ब में स्त्री की कन्या, पत्नी, माता, भगिनी एवँ पुत्रवधु इत्यादि अनेक भूमिकायें थीं. इन सँबंधों से ही स्त्री "साधारण स्त्री" अथवा "प्राकृतिक स्त्री" कहलाती थी. समाज ऐसी स्त्रियों को हेय दृष्टि से देखता था.

साधारण स्त्रियाँ वैदिक काल से ही निदंनीय रही हैं. स्त्रियों की चँचलता को <u>ऋग्वेद</u>[1] में स्वीकारा गया है. कौटिल्य[2] इन स्त्रियों को व्यसन मानता है. पौराणिक युग तो इन स्त्रियों के विशिष्ट रूप से दोष दर्शन का युग था.[3] बौद्ध सँस्कृति भी इसका प्रमाण है.[4] भगवान गौतम बुद्ध के अनुसार, "नारियों के सँघ प्रवेश होने से यह धर्म 500 वर्ष तक ही रहेगा, अन्यथा इस धर्म की अवधि 1000 वर्ष होती".[5] स्त्रियों की निर्दयता की व्याख्या जैन सँस्कृति में भी है.[6] साधारण स्त्री वर्ग में गणिकाओं का प्रमुख स्थान था. गणिकाएँ ही तो सर्व-साधारण के

1. <u>ऋग्वेद</u>, 10.95.15
2. <u>अर्थशास्त्र</u>, 3.8
3. <u>भागवत पुराण</u>, 6, 18, 41, 42
4. <u>धम्मपद, मग्गवग्ग</u>, 12
5. <u>चुल्लवग्ग</u>, 10.16
6. <u>महापुराण</u>, 43.101.112

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मनोरंजन का कार्य करती थीं. इसके अतिरिक्त परिचारिकाओं एवं विष-कन्याओं के भी उल्लेख मिलते हैं.

वैदिक साहित्य के अनुसार स्त्रियों के प्रति समाज का व्यवहार शिष्टाचार पूर्ण था तथा स्त्री अवध्य मानी जाती थी.[1] स्त्री वध का अपराधी प्राणदण्ड का भागी माना जाता था.[2] ऐसा माना जाता था कि स्त्रियों की रक्षा करते हुए मरने से स्वर्ग की प्राप्ति होती थी.[3] समान अपराध करने पर न्यायालय पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियों को कम दण्ड देते थे.[4]

स्त्रियाँ ही इस विश्व का आधार हैं.[5] पृथ्वी के समस्त तीर्थ एक स्त्री के चरणों में हैं.[6] ऐसी धारणा थी कि जिस कुल में स्त्रियाँ दुखी होंगीं वह कुल अवश्य दुख को प्राप्त होगा.[7] वैदिक काल में ऐसी पथभ्रष्ट स्त्रियों को धार्मिक कार्य करने की अनुमति थी जो अपना अपराध स्वीकार कर लें.[8] वैदिक काल में स्त्रियाँ अचल सम्पत्ति मानी जाती थीं, जो उपहार स्वरूप भेंट दी जाती थीं. <u>महाभारत</u> में धृतराष्ट्र ने सौ दास कन्याओं को सम्मान के प्रतीक स्वरूप कृष्ण को उपहार देने का प्रस्ताव किया था.[9]

प्राचीन काल में धार्मिक अधिकार सर्वोपरि थे, क्योंकि धार्मिक अधिकार ही स्त्रियों की सामाजिक स्थिति के निर्धारक होते थे. वैदिक

---

1. <u>शतपथ ब्राम्हण</u>, 11.4.3.2
2. <u>मनुस्मृति</u>, 9.232
3. <u>पंचतंत्र</u>, <u>मित्रभेद</u>,
4. <u>अर्थशास्त्र</u>, 4.12
5. <u>महाभारत</u>, 13.78.23
6. <u>ब्रम्हवैवर्त पुराण</u>, 83.119
7. <u>महाभारत</u>, 13.81.15
8. <u>शतपथ ब्राम्हण</u>, 2.5.2.20
9. <u>वशिष्ट धर्मसूत्र</u>, 28.2.3
   <u>महाभारत</u>, 2.89.19

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काल में स्त्रियाँ सभी धार्मिक अधिकार एवं विशेषाधिकारों की अधिकारिणी थीं. वे वैदिक शिक्षा प्राप्त कर सकती थीं. ऋग्वेद में कई मंत्रदृष्टा नारियाँ हुई हैं. अतः निश्चित है कि वे वैदिक मंत्रों का उच्चारण करती थीं. अथर्ववेद[1] में स्त्री स्पष्ट रूप से यज्ञ की अधिकारिणी कही गई है. शतपथ ब्राम्हण[2] एवं ऐतरेय ब्राम्हण[3] अपत्नीक व्यक्ति को यज्ञ के लिए अनुपयुक्त मानता है : कारण, यह एक प्रचलित धारणा थी कि अविवाहिता द्वारा दी गई आहुति देवता स्वीकार नहीं करते.[4] साधारणतः, धार्मिक कृत्य एवं यज्ञ पति पत्नि एक साथ ही करते थे क्योंकि फल के भोग में पत्नि, पति के समान ही अधिकारिणी थी, पुरूष अकेले स्वर्ग भोगकी आकांक्षा नहीं कर सकता था :

> "वाजपेय यज्ञ में यज्ञीय यूप के सहारे सीढ़ी पर चढ़ता हुआ पति, पत्नी से कहता था : आओ हम दोनों साथ-साथ स्वर्गारोहण करें".[5]

वेदी निर्माण के अतिरिक्त अन्य याज्ञिक क्रियाओं में भी वह पति को सहयोग देती थी.[6] किंतु कभी-कभी पत्नियाँ स्वतंत्र रूप से "शस्य वृद्धि" हेतु सीता यज्ञ कर सकती थीं.[7] विशेषतः, अविवाहिता स्त्रियों द्वारा अकेले ही यज्ञ किए जाने के उल्लेख हैं.[8]

उपरोक्त वर्णन वैदिक नारी की उच्च स्थिति का बोध कराता है, जो चिर स्थायी न थी. उत्तर वैदिक काल से ही स्त्रियों के पतन के बीज अँकुरित होने लगे थे. स्त्री के विषय में विभिन्न हीन दृष्टिकोण

---

1. अथर्ववेद, 11. 1. 14, 11. 1. 15
2. शतपथ ब्राम्हण, 5. 1. 6. 10
3. ऐतरेय ब्राम्हण, 1. 2. 5
4. शतपथ ब्राम्हण, 5. 1. 6. 10
5. शतपथ ब्राम्हण, 5. 2. 1. 10
6. शतपथ ब्राम्हण, 10. 1. 3. 1, 10. 2. 33. 3. 8. 2. 1-6
7. पारस्कर गृह्सूत्र, 2. 17
   रामायण, 2. 20. 15
8. ऋग्वेद, 5. 28. 1

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एवँ प्रतिस्थापनाओं का प्रचार प्रारंभ हो चुका था. नारी आलोचना का केंद्र बन गई थी. पत्नी के लिए अब अधिकांशत: "भार्या" और "जाया" शब्दों का प्रयोग होने लगा. "पोष्या" और "भार्या" स्त्री की अधीनता के द्योतक थे. परवर्ती सँहिता एवँ ब्राम्हण ग्रन्थों में स्त्रियों के महत्व के साथ ही उनकी आलोचना भी की गई है. मैत्रायणी सँहिता "स्त्री को झूठ बोलने वाली और मृत्यु के देवता से सँबंधित बताती है." शतपथ ब्राम्हण[2] के अनुसार स्त्री "अनृत" है, तो काठक सँहिता[3] उसे भावुक और निर्वीर्य बताता है. मैत्रायणी सँहिता[4] में "पति द्वारा धन से खरीदी जाने वाली स्त्री भी अन्य पुरुषों के साथ विचरण करती है" कहकर उस पर चरित्रहीनता का आरोप लगाया है. जैमिनीयब्राम्हण[5] स्त्रियों को दुख का साधन मानता है. शतपथ ब्राम्हण तो स्त्री की स्थिति को ही नकारता हुआ पुरुष के समक्ष नारी की हीनता को प्रतिपादित करता है:

> "अनेक स्त्रियों के बीच एक छोटा बालक हो तो उनमें वही श्रेष्ठ समझा जावेगा".[6]

शतपथ ब्राम्हण[7] ने उसे "शूद्र" की कोटि में रखकर उसकी अपवित्रता की घोषणा की. नारी को याज्ञिक अधिकारों से वँचित करने का प्रयास भी इसी समय हुआ. धर्म पत्नी के रूप में नारी को बहिष्कृत नहीं किया जा सका, तो भी उसके धार्मिक अधिकारों को सीमित और सँकुचित कर दिया गया. इस प्रकार वैदिक युगीन नारी

---

1. मैत्रायणी सँहिता, 3.6.3
2. शतपथ ब्राम्हण, 14.1.1.31
3. काठक सँहिता, 28.8.44
4. मैत्रायणी सँहिता, 1.10.11
5. जैमिनीय ब्राम्हण, 1.98
6. शतपथ ब्राम्हण, 1.3.1.9
7. शतपथ ब्राम्हण, 14.1.1.13

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धार्मिक जीवन से पूर्णरूपेण बहिष्कृत तो न थी किंतु भारतीय नारी की ह्रासोन्मुख प्रस्थिति के बीच इसी उत्तर वैदिक युग की सामाजिक व्यवस्था में ही निहित थे.

मौर्य काल के अंत तक गृहिणी को पति के बिना सहयोग से सायँकाल तथा कभी-कभी प्रातः काल भी गृहाग्नि में आहुति डालना होती थी. "पत्नी" शब्द पति पत्नि के यज्ञपरक विशिष्ट संबंध को प्रकाशित करता है. "पत्युर्नो यज्ञसंयोगे"[1] में यज्ञों में पत्नी की भूमिका वास्तविक थी, नाममात्र की नहीं. ईस्वी पूर्व 5 वीं शताब्दी तक कुछ यज्ञ केवल स्त्रियों द्वारा ही करणीय थे.[2] धार्मिक क्षेत्र में बौद्ध भिक्षुणियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है. भारतीय संस्कृति एवं बौद्ध धर्म का प्रचार करने कई भिक्षुणियाँ विदेश गईं. राज परिवार की रानियों द्वारा दान एवं लोकहित के कार्य किए गए हैं.[3] बौद्ध धर्म के प्रसार हेतु संघमित्रा श्रीलंका गई थी. इसी प्रकार जैन भिक्षुणियाँ-----"गत्ता", "अनोपमा", "सुमेधा", इत्यादि थीं.

ई.पू. 324 से 320 ईस्वी तक स्त्रियों को उपनयन संस्कार का निषेध हो जाने से इनकी धार्मिक स्थिति प्रभावित हुई. मनु ने घोषित किया : "एक पवित्र ब्राम्हण को उस यज्ञ में भाग नहीं लेना चाहिए जिसमें स्त्रियाँ भाग लेती हों". इसी शती के प्रारंभ से ही स्त्रियों द्वारा अकेले यज्ञ करना बंद हो गया. फिर भी नयनिका द्वारा अपने पति के साथ अश्वमेध यज्ञ करने का उल्लेख मिलता है.[4]

प्राचीन काल में स्त्रियों द्वारा शासन करने के संबंध में विभिन्न विचार थे. उनके द्वारा सिंहासन प्राप्त करना दोषपूर्ण नहीं माना जाता

---

1. पाणिनी, 4.1.33
2. सिन्हा, कृष्ण, 1959, पृष्ठ 31
3. अशोक का चौथा शिलालेख
4. नयनिका का नानाघाट अभिलेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था. राम के वन जाते समय सीता को सिंहासन देने का प्रस्ताव किया गया था.[1] इसी प्रकार युद्ध में हताहत हुए पुत्रहीन राजाओं की पुत्रियों को अभिषेक की सम्मति देने का भी उल्लेख मिलता है.[2] बौद्ध साहित्य में वाराणसी के एक राजा द्वारा संसार से विरक्त हो सन्यास लेने पर उसकी रानी ने प्रजा के अनुरोध पर शासन सूत्र संभाला था. चंद्रगुप्त प्रथम ने अपनी लिच्छवी रानी कुमार देवी के साथ राज्य किया था. सामान्यत:, पति के जीवनकाल में रानियाँ शासन सूत्र का संचालन नहीं करती थीं. किन्तु पति की मृत्यु के पश्चात् तथा पुत्र के अल्पवयस्क होने पर अथवा बंदी बना लिए जाने पर वे राज प्रतिनिधि के रूप में शासन का अधिकार ग्रहण करती थीं.[3] ईसा पूर्व द्वितीय शती में दक्षिण की रानी नयनिका, सातवाहन साम्राज्य की शासिका थी. पति के जीवनकाल में रानियों का राज्य संचालन पर पर्याप्त प्रभाव रहता था. माता "गांधारी" एवं "द्रौपदी" के कार्य एवं उपदेश उल्लेखनीय हैं.

साधारण स्त्रियों का भी राजनीति में योगदान एवं प्रवेश था. वैदिक काल में स्त्रियाँ या वधू सार्वजनिक सभाओं में जा सकती थीं.[4] परंतु वैदिक काल के पश्चात् परिस्थितियाँ बदलीं और उनके सार्वजनिक सभाओं में भाग लेना निषिद्ध हो गया.[5] शिक्षा का कम प्रसार एवं बाल विवाह से प्रभावित होकर स्त्रियों का प्रशासनिक योगदान क्रमश: कम होता गया.

वैदिक काल में स्त्रियाँ कृषि कार्य, धनुष बाण तथा अन्य युद्धोपयोगी सामग्री बनाती थीं. पति के साथ युद्ध क्षेत्र में भी जाती थीं.[6]

---

1. <u>रामायण</u>, 2. 37, 38
2. <u>महाभारत</u>, 12. 32-33
3. <u>प्रतिज्ञा यौगन्धरायण, प्रथम अंक</u>
4. <u>ऋग्वेद</u>, 10. 85. 26
5. <u>मैत्रायणी संहिता</u>, 4. 7. 4
6. <u>ऋग्वेद</u>, 1. 116. 15, 1. 112. 10, 10. 102. 2

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संहिताओं में स्त्रियों द्वारा कपड़ा रंगने, कसीदा निकालने तथा टोकरी इत्यादि बनाने का वर्णन है. स्त्रियों द्वारा आर्थिक योगदान महत्वपूर्ण है.

वैदिक काल के पश्चात् उच्च वर्ग की स्त्रियाँ कुछ विशेष धंधे या कार्य ही करती थीं. इनमें शिक्षा देने का कार्य अधिक प्रचलित था. महिला शिक्षकों को "उपाध्याया"[1] शब्द प्रयोग होता था. स्त्रियाँ बौद्ध अथवा जैन धर्म स्वीकार कर भिक्षुणी के रूप में सफल धर्मोपदेशक बन सकती थीं. किसी भी उच्च कुल की स्त्री का संगीत शिक्षिका के रूप में उल्लेख नहीं मिलता.

निम्न वर्ग की स्त्रियाँ गणिका के रूप में जीविकोपार्जन करती थीं. राजपरिवार में गणिकाओं, चमरवाहिनी, ताम्बलिका इत्यादि अधिक मात्रा में नियुक्त होती थीं. कुछ स्त्रियाँ छत्रधारिणी, प्रतिहारी, रक्षिका एवं केश प्रसाधिका के रूप में भी नियुक्त होती थीं. ये अपना कार्य करने के अतिरिक्त गुप्तचारी का भी कार्य करती थीं.

मौर्य युग में राजा के मृगया के समय शस्त्रयुक्त नारियाँ उसके साथ होती थीं.[2] प्रात: काल शय्या से उठते समय धनुर्धारिणी नारियों द्वारा उसका स्वागत होता था. संभवत: राजा के गुप्तशत्रुओं से सुरक्षा के लिए धनुर्धारिणी नारियों[3] अथवा महिला अंग रक्षकों की नियुक्ति अधिक लाभप्रद हो सकती थी.[4] मेगस्थनीज. के अनुसार तो राजा की रक्षा के लिए विदेशी यवनियों की नियुक्ति होती थी. प्राय: राजमहल में नियुक्त महिलायें अन्त:पुर में भी काम करती थीं.[5] नारी कल्याण के लिए

---

1. पातंजलि, योगप्रदीप, 3.822
2. अर्थशास्त्र, 11.27
3. अर्थशास्त्र, 1.21
4. स्त्राबो, 15.1, 53.56
5. अर्थशास्त्र, 1.20

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अशोक ने विशेष "महामत्तों" की नियुक्ति की थी, जो "इथिमुख महामत्ते" कहलाते थे. इनका शाब्दिक अर्थ "स्त्री अधीक्षक" होता था।[1] इन अधिकारियों व गणिकाध्यक्षों में संबंध जोड़ा गया है।[2]

शुंग एवं कण्व काल में भी स्त्रियों की सुरक्षा के लिए गणिकाध्यक्षों एवं स्त्री-अध्यक्ष महामात्रों की नियुक्ति होती थी।[3]

प्राचीन काल से ही स्त्रियों के मनोरंजन के साधनों का उल्लेख मिलता है. जिनमें संगीत, नृत्य, गीत, वाद्य एवं अभिनय का समावेश होता था. इन आयोजनों में स्त्रियाँ स्वतंत्रतापूर्वक भाग लेती थीं. इनमें कन्याओं की कन्दुक-क्रीड़ा का विशेष रूप से उल्लेख है.

भारतीय नारी सदैव से ही आभूषण प्रिय रही है. उनकी आभूषणों के प्रति इस आसक्ति के मूल में संभवत: भारतवर्ष की तत्कालीन समृद्धि ही प्रमुख कारण थी. वैदिक काल से लेकर 320 ईस्वी काल तक हमें स्त्रियों द्वारा स्वर्ण, रजत, बहुमूल्य रत्न-उपरत्न एवं मोतियों के आभूषण पहनने के उल्लेख मिलते हैं.

वैदिक काल से ही स्त्रियों को केश-प्रसाधन में विशेष योग्यता प्राप्त होती थी. वे विशेष एवं विभिन्न प्रकार की वेणियाँ गूँथने में चतुर थीं. इनका केश प्रसाधन लालित्यपूर्ण होता था.

नारियों द्वारा प्रयुक्त श्रृंगार सामग्री में सुगन्धित द्रव्य (लेप) अंजन, ओठों-दाँतों को रंगने का अंजन, चंदन का लेप, हाथ पैरों के अलंकरण के लिए विभिन्न प्रकार के रंग तथा अनुलेपों का प्रयोग होता था. सौंदर्य वृद्धि के लिए कपोलों पर भी विभूषक रेखाकृतियाँ बनाई जाती थीं. कुमारियाँ एवं सधवा स्त्रियाँ सिर पर सिन्दूर की रेखा एवं मस्तक पर कुंकुम की गोल बिंदु लगाती थीं, जो सौभाग्यसूचक माना जाता था.

---

1. ब्लाख, <u>ल इंस्क्रिप्तियों द अशोक</u>, 1950, पृष्ठ 122,
2. हूल्श, <u>कारपस इंस्क्रिप्शनम इण्डिकेरम</u>, भाग 1, पृष्ठ 20
3. मजुमदार, रायचौधरी एवं दत्त, <u>प्राचीन भारत</u>, पृष्ठ 112

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वैदिक काल में अवगुण्ठन बिल्कुल नहीं था. स्त्रियाँ सभाओं में स्वतंत्रतापूर्वक भाग लेती थीं. कुछ दर्शिका के रूप में एवं कुछ समन में भाग लेने के लिए उपस्थित होती थीं. सभा,[1] विदथ[2] एवं समन[3] में अधिकांश स्त्रियाँ जाती थीं एवं वहाँ भाषण भी देती थीं. जनक की सभा में गार्गी एवं याज्ञवल्क्य का संवाद इसका प्रमाण है.

यज्ञ-कार्य हेतु सोम पौधा लाना तो कन्याओं का विशेष कर्तव्य था. वैदिक काल में स्त्रियों को पूर्ण स्वतंत्रता थी. अवगुण्ठन का उल्लेख सर्वप्रथम महाकाव्यों (ई. पू. 1000) में मिलता है. तत्कालीन राज परिवारों में एक प्रकार का अवगुण्ठन प्रचलित था. संभवत: यह अवगुण्ठन प्रतिष्ठा के लिए था. जिससे राजपरिवारों की स्त्रियाँ साधारण जनता के सामने न आवें.[4] विवाह, स्वयंवर, यज्ञ तथा सर्वसाधारण की विपत्ति के समय स्त्री का बाहर आना दोषपूर्ण नहीं था.[5] इससे प्रकट है साधारण अवस्था में अवगुण्ठन का प्रचलन था. किंतु इन तीन स्थलों को छोड़कर महाकाव्यों में कहीं भी अवगुण्ठन का उल्लेख नहीं है.

अर्थशास्त्र में स्त्रियों को "न निकलने वाली" कहा गया है. जो समाज में अत्यधिक पर्दाप्रथा के प्रचलन का संकेत है. किसी न किसी जातक में रानियों के आवृत्तयान में ही बाहर जाने का उल्लेख है.

ईस्वी शती के प्रारंभ से ही समाज का एक भाग स्त्रियों के एकान्तवास का समर्थन करने लगा, जो विशेषकर राजपरिवारों में प्रचलित हुआ. भास के नाटकों में अवगुण्ठन का उल्लेख है. वन जाते समय राम,

1. <u>ऋग्वेद</u>, 1. 167. 3
2. <u>ऋग्वेद</u>, 10. 85. 26. 27
3. <u>ऋग्वेद</u>, 1. 124. 8, 4. 58. 8, 6. 75. 4, 7. 2. 5
4. <u>रामायण</u>, 2. 33. 8
5. <u>रामायण</u>, 6. 116. 28

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सीता से अवगुण्ठन दूर करने को कहते हैं.[1] दशरथ की रानियाँ भी प्रतिमागृह जाते समय अवगुण्ठन लेकर जाती हैं.[2] स्वप्नवासवदत्ता नाटक में कुमारी पद्मावती कुमार्यावस्था में अवगुण्ठन धारित नहीं करती.[3] किंतु विवाह के पश्चात् उसके द्वारा अवगुण्ठन का अनुसरण किया जाता है.[4] माघ के अनुसार, स्त्रियों के मुख का सौंदर्य क्षण भर के लिए ही देखा जा सकता है.[5]

सामान्यतः अवगुण्ठन चिरकाल तक नारियों में लोकप्रिय न रह सका. यह न्यूनाधिक अंशों में राजपरिवारों तक ही सीमित रहा. साँची की प्रतिमाओं (2 शती) में स्त्रियाँ अपने घर की छतों से बिना अवगुण्ठन के ही मार्ग से गुजरते जुलूस देख सकती थीं. पुरुष एवं स्त्री साथ-साथ सड़क पर चलते दिखाई देते हैं तथा स्त्रियाँ सार्वजनिक मंदिरों में सबके साथ पूजा करती दिखाई देती हैं. अवगुण्ठन का उपयोग हमें कहीं भी नहीं दिखाई देता. स्त्रियों से संबंधित मनु द्वारा अनुशंसित नियमों में कहीं भी अवगुण्ठन की अनिवार्यता पर बल नहीं दिया गया है.

तत्कालीन सामाजिक अवस्था में अवगुण्ठन अनिवार्य न होते हुए भी स्त्रियों की गतिविधियों पर नियंत्रण था. उन्हें अपने संबंधी एवं सखी जनों के घर जाने की अनुमति थी किंतु कार्य समाप्ति पर घर आना अनिवार्य था. रात्रि में दूसरे के घर रुकना निषेध था.

<u>रामायण</u> के अनुसार जब समाज में शांति और सुरक्षा रहती थी, तब कुमारी कन्यायें संध्याकाल में खेलने तथा मनोरंजन के लिए उद्यानों में

1. प्रतिमा नाटक, 1.29
2. प्रतिमा नाटक, अंक 3
3. स्वप्नवासवदत्तम्, अंक 1
4. स्वप्नवासवदत्तम्, अंक 6
5. शिशुपाल वध, 5.17

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जा सकती थीं।[1] नगरों में क्रीड़ा एवं मनोरंजन के लिए सार्वजनिक उद्यानों में स्त्रियों का प्रवेश निषेध नहीं था. इससे प्रकट है कि प्राचीन काल में नारियों को पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त थी।[2]

ऋग्वैदिक काल में वंशानुक्रम पितृसत्तात्मक होते हुए भी मातृ-सत्तात्मक परिवारों के प्रचलन का संकेत मिलता है. "मामतेय"[3], "ऐल"[4], "सारमेय"[5] इत्यादि मातृप्रधान परिवारों में पुत्रों का नामकरण भी माता के नाम से हुआ. सुमित्रा, सौमित्र, कुन्ती, कौन्तेय, प्रभृत्ति. नाम इनकी मातृवंशात्मक परंपरा के प्रतीक माने जा सकते हैं. किंतु महाभारत में मातृवंशीय मातृसत्तात्मक व्यवस्था का प्रभाव न्यून है, इसके साथ ही समाज में माता को प्राप्त स्थान पिता के प्रभुत्व में आ गया. अतः स्पष्ट है कि "प्राचीन भारतीय जीवन में मातृवंशात्मक सत्ता का प्रभाव बहुत दिनों तक रहा तथा द्रौपदी और पाण्डवों के विवाह का रूप अब भी भारत में प्रचलित है.

उत्तर वैदिक काल में बहुपत्नीत्व प्रथा का प्रचलन था. द्रौपदी, रूक्मणि, सुभद्रा, चित्रांगदा, हिडिम्बा, ऊषा, प्रभावती तथा भानुमति के बलपूर्वक अपहरण इसके उदाहरण हैं. उक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि बहुपत्नी विवाह सैद्धान्तिक रूप से मान्य था तथा उसे प्रायः एक

---

1. रामायण, 2.67.17
2. सिन्हा, कृष्णा, "गुप्तकालीन नाटकों में नारी पात्र" 1959, पृष्ठ 53.
3. ऋक संहिता, 1.158.6
4. ऋक संहिता, 10.95.18
5. ऋक संहिता, 7.55.2

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपवाद के रूप में देखा जाता था. अल्तेकर के अनुसार भी, "व्यावहारिक रूप से बहु-विवाह समाज के धनी एवं शासक वर्ग में प्रचलित था."[1] दफ्तरी का भी यही मत है.[2]

1. अल्तेकर, ए. एस., "पोजीशन ऑफ वीमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन", 1983, पृष्ठ 104.
2. दफ्तरी, पृष्ठ 158.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय : 2

गुप्तकाल में पुत्री, पत्नी, माता तथा अन्य स्त्रियों की स्थितियाँ एवं भूमिकाएँ.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्मृतिकार मनु के पहले के विचारक पुत्र की अपेक्षा पुत्री को हीन मानते थे. मनु ने इस संकीर्ण भावधारा का विरोध कर कहा कि पुत्री पुत्र के बराबर है.[1] वास्तव में मनु ही पहले स्मृतिकार हैं जिनके हृदय में कन्या के प्रति अत्याधिक स्नेह था. उनके अनुसार कन्या को वस्त्रादि से अलंकृत करने से मनुष्य का कल्याण होता है तथा कन्या के प्रसन्न रहने पर उसके कुल देवता प्रसन्न होते हैं. जिस कुल में कन्या उदास रहती है वह कुल नष्ट हो जाता है.[2] इसलिए मनु आदेश देते हैं कि पुत्री से विवाद न किया जाए क्योंकि पुत्री अत्यन्त कृपापात्र है.[3]

---

1. दास, आर. एम., वीमेन इन मनु, 1962, पृष्ठ 49
2. मनुस्मृति, 3.55-58
3. मनुस्मृति, 4.180, 185

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतीय संस्कृति में वैदिक काल से ही पुत्र जन्म की कामना की जाती रही है. इसके तीन प्रमुख कारण थे. पहला, पितरों को पिण्ड दान के लिए पुत्र की आवश्यकता, दूसरा, वंश वृद्धि में योगदान एवं, तीसरा, युद्ध के लिए पुत्रों की अत्याधिक उपयोगिता. अत: पुत्र जन्म की कामना के साथ ही पुत्रवती होने के आर्शीवाद भी दिए जाते थे. पुत्र प्राप्ति की आध्यात्मिक एवं सामरिक अवधारणा गुप्त काल में भी प्रचलित थी.[1] लोग पुत्र प्राप्ति की कामना करते थे.[2] अत: पुत्र प्राप्ति के लिए ऋषिमुनियों द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ[3] एवं व्रत[4] किये जाते थे तथा गर्भवती स्त्रियों को "पुत्रवती भव" का आशीर्वाद दिया जाता था.[5] साथ ही पुत्र जन्म पर उत्सव मनाया जाता था, जिसमें अप्सराओं द्वारा नृत्य का आयोजन होता था और दान दक्षिणा दी जाती थी. इस प्रकार का विवरण कालिदास के काव्यों में मिलता है. विष्णु स्मृति में पितृऋण से मुक्ति के लिए पुत्र की आवश्यकता बताते हुए कहा गया है:

> "पुत्र, पिता को "पुं" नामक नरक से बचाता है इसलिए पुत्र कहलाता है, इसलिए स्वयं स्वयंभू द्वारा पुत्र कहा गया है. पुत्र के द्वारा संसार को जीतता है और पुत्र के पुत्र से सूर्य लोक को प्राप्त करता है."[6]

ज्येष्ठ पुत्र की उत्पत्ति मात्र से मनुष्य पुत्रवान होकर पितृऋण से

---

1. रघुवंशम्, 1. 17
2. रघुवंशम्, 1. 33, 3. 12
3. कुमारसंभवम्, 6. 28
   रघुवंशम्, 10. 4
4. रघुवंशम्, 19. 52
5. रघुवंशम्, 14. 71, 14. 39
6. विष्णु स्मृति, 15. 44-45

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

छुटकारा पा लेता है, ये विचार स्मृतिकार मनु[1] तथा विष्णुधर्मसूत्र[2] के भी हैं.

अतः पुत्र के महत्व को देखते हुए सिर्फ कन्याओं को ही जन्म देने वाली माताओं को त्यागने का आदेश {विधान} मनु[3] एवं नारद[4] ने दिया है. किंतु पुत्री प्राप्ति की कामना, किसी प्रकार के यज्ञ, व्रत अथवा पुत्रीवती होने का आशीर्वाद देने का कहीं वर्णन नहीं मिलता. मात्र एक प्रमाण कालिदास ने कुमारसंभवम् में दिया है जब कि पुत्री के जन्म से चर अचर सभी प्राणी प्रसन्न हो उठे:[5]

> "जैसे अत्यन्त प्रकाशमान लौ को पाकर दीपक, मंदाकिनी को पाकर स्वर्ग का मार्ग और व्याकरण से शुद्ध वाणी पाकर विद्वान लोग पवित्र और सुंदर लगने लगते हैं, वैसे ही पार्वती जी को पाकर हिमवान भी पवित्र और सुंदर हो गए".[6]

पुत्री "पार्वती" अनेक संतानों में से हिमवान की प्रिय पुत्री थी, और पुत्र के समान ही पुत्री भी माँ-बाप का स्नेह पाती थी.[7] पार्वती केवल माँ, बाप कह ही नहीं अपितु कुटुम्बियों की भी दुलारी थी.[8] तथा कन्या ही परिवार का जीवन और आनंद थी.[9] इसी कारण कन्या के खोटे {बुरे} ग्रहों की शांति के प्रयास सोमतीर्थ में किए जाते थे.[10]

---

1. मनुस्मृति, 9.106, 9.138
2. विष्णुधर्मसूत्र, जीवानन्द 1, पृष्ठ 94
3. "स्त्री प्रजां द्वादशे त्यजेत" मनुस्मृति, 9.81
4. एकादशे स्त्री जननी, नारद स्मृति, 12.64
5. कुमार संभवम्, 1.23
6. कुमारसंभवम्, 1.28
7. कुमारसंभवम्, 1.27
8. वही, 1.26
9. वही, 6.63
10. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अंक 1, पृष्ठ 9

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुप्तकालीन अभिलेख "पुत्री" के महत्व को स्वीकारते हुए उनका उल्लेख करते हैं. गुप्तकालीन नरेश समुद्रगुप्त[1] के अभिलेखों में उन्हें "लिच्छवि दौहित्र" कहा गया है. समुद्रगुप्त की माता कुमारदेवी लिच्छवियों की पुत्री थी. लिच्छवि पुत्री कुमारदेवी और चन्द्रगुप्त प्रथम का विवाह संबंध चन्द्रगुप्त के शासनकाल की महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना थी, जिसके फलस्वरूप लिच्छवि राज्य गुप्तराज्य में मिला लिया गया तथा जिसने उसकी मुद्रानीति को प्रभावित किया था. उसने केवल एक प्रकारकी मुद्रा तैयार कराई, जिसके पुरोभाग पर राजा तथा महिषी कुमारदेवी की आकृतियाँ बनाई गईं और पृष्ठभाग लिच्छवी वँश का नाम उत्कीर्ण किया गया था.[2] "लिच्छवि दौहित्र" का अंकन गर्वस्वरूप प्राचीन वँश परँपरा के कारण किया गया. यह विचार जान एलन[3] का है. अन्य गुप्तकालीन राजाओं चन्द्रगुप्त द्वितीय, कुमार गुप्त प्रथम तथा स्कन्दगुप्त के अभिलेखों में वर्णित वँशावली में भी समुद्रगुप्त को "लिच्छवि दौहित्र" कहा गया है.[4]

---

1. फ्लीट, जानफेथफुल, "भारतीय अभिलेख सँग्रह", भाग 3, समुद्रगुप्त का इलाहाबाद मरणोपरांत लिखित प्रस्तर स्तँभ लेख, पृष्ठ 19, संख्या 1.1
   इसके अतिरिक्त चन्द्रगुप्त द्वितीय, स्कंदगुप्त, कुमारगुप्त प्रथम, इत्यादि के अभिलेखों में भी समुद्रगुप्त का परिचय लिच्छवि दौहित्र कह कर दिया है.
2. अल्तेकर, अनन्तसदाशिव, गुप्तकालीन मुद्रायें, 1972, पृष्ठ 1-2.
3. ब्रिटिश म्युजियम मुद्रा सूची, गुप्त वँश, भूमिका, पृष्ठ 10.
4. फ्लीट, जानफेथफुल, भारतीय अभिलेख सँग्रह, भाग 3
   चन्द्रगुप्त द्वितीय का मथुरा प्रस्तर अभिलेख, पृष्ठ 35, संख्या 4.3 क
   कुमारगुप्त का बिल्सड़ प्रस्तर स्तँभ लेख, पृष्ठ 57, संख्या 10.5 ख
   समुद्रगुप्त का बिहार प्रस्तर अभिलेख, पृष्ठ 65, संख्या 12.6 ख
   समुद्रगुप्त का भितरी प्रस्तर स्तँभ लेख, पृष्ठ 69, संख्या 13.7

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नानाकुल का उल्लेख (दौहित्र) दौहित्र कुल की वँशावली में दिए जाने के अनेक प्रमाण हमें प्राचीन भारतीय राजवँशावलियों में मिलते हैं. यह भी प्रमाणित है कि (जामाता) दामाद को अपने श्वसुर कुल से समुचित सहायता, जिसकी उसे आवश्यकता है, उपलब्ध होती रही है. वाकाटक नरेश रूद्रसेन प्रथम एवँ रूद्रसेन द्वितीय के श्वसुरों का उल्लेख वाकाटक वँश परँपरा में केवल इस कारण हुआ है कि उनके साथ किया गया विवाह सँबंध वाकाटक वँश के लिए पर्याप्त हितकर हुआ. विष्णुकुण्डिन नरेश माधववर्मन् अपने को वाकाटक कुमारी की सँतान होने से गौरवान्वित महसूस करते हैं कि वाकाटक परिवार के साथ विवाह सँबंध उसके वँश के उत्थान में अत्याधिक सहायक हुआ.[1]

प्रवरसेन द्वितीय के अभिलेखों में प्रभावती गुप्त को महाराजाधिराज श्री देवगुप्त की पुत्री कह कर वँशावली में महत्वपूर्ण स्थान है.[2]

अल्तेकर[3] की मान्यता है कि कुमारदेवी स्वाधिकार से रानी थी, अर्थात् चन्द्रगुप्त प्रथम का प्रवेश लिच्छवि परिवार में रानी पति (प्रिंस कन्सर्ट) के रूप में हुआ, पति-पत्नि के इस संयुक्त राज्य की सँभावना उनके सिक्कों से प्रकट होती है. सँभवत: वे सिक्के चन्द्रगुप्त के "महाराजाधिराज" की सम्राटीय उपाधि धारण करने के अवसर पर जारी किये गये होंगे, और इस नये सिक्के पर लिच्छवियों के आग्रह पर ही उनकी राजकुमारी (पुत्री) का नाम अँकित किया गया होगा.

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि गुप्त काल में पुत्री का महत्वपूर्ण स्थान था तथा वे अभिलेखों तथा मुद्राओं में महत्वपूर्ण स्थान लेती थीं. इस

---

1. गुप्त, परमेश्वरी लाल, गुप्त साम्राज्य, 1970, पृष्ठ 238
2. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3, महाराज प्रवरसेन द्वितीय का चम्मक ताम्रपत्र लेख, पृष्ठ 301. महाराज प्रवरसेन द्वितीय का सिवनी ताम्रपत्र लेख, पृष्ठ 309. संख्या क्रमशः 55.34 ; 56.35
3. न्यूमिसमेटिक सप्लीमेंट, कलकत्ता 47, पृष्ठ 107
   अल्तेकर, कैटलाग क्वायन्स ऑफ बयाना होर्ड, भूमिका पृष्ठ 69
   गुप्त, परमेश्वरी लाल, गुप्त साम्राज्य, 1970, पृष्ठ 237

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस प्रकार के प्रमाण हमें राजकीय परिवार की वंशावलियों तथा धार्मिक स्मृति साहित्य में मिलते हैं.

परिवार के प्रत्येक सदस्य के पद के अनुसार अपने अपने अलग अलग कर्तव्य होते थे. कन्या परिवार का जीवन और आनँद होने से उसके कुछ कर्तव्य होते थे, जिनका उसे निर्वाह करना अनिवार्य था. कन्याओं का सबसे बड़ा कर्तव्य अतिथि सत्कार था. कण्व ऋषि ने "शकुन्तला" पर अतिथि सत्कार का काम सौंपा था.[1] यह कार्य ऋषि की उपस्थिति एवँ अनुपस्थिति में एक साथा. ब्रम्हचारी वेश में आये शिव का पार्वती द्वारा सत्कार, अतिथि सेवा का सुँदर उदाहरण है.[2] जो अतिथि सेवा के कर्तव्य को व्यक्त करता है. "शकुन्तला" की सखियों द्वारा दुष्यँत का अतिथि सत्कार एवँ शिष्ट भाषण उनकी उच्च शिक्षा एवँ साँस्कृतिक अभिव्यक्ति का धोतक है. अथि सत्कार की सामग्री फल, फूल, अर्ध्य एवँ जल (पैर धोने के लिए) से कन्यायें अतिथि सत्कार करती थीं.[3] साथ ही अतिथि की भावनाओं का भी ध्यान रखती थीं.[4] पँच महायज्ञों में से एक अतिथि यज्ञ को पूरा करने के लिए राजा "हिमालय" ने

---

1. इदानीमेव दुहितेरें शकुन्तलामतिथिसत्काराय नियुज्य दैवमस्या: प्रतिकूल शमयितुं सोमतीर्थं गत:
   —<u>अभिज्ञानशाकुन्तलम्</u>, अँक 1, पृष्ठ 9
2. तमातिथेयी बहुमानपूर्दया सपर्ययाप्रत्युदियाय पार्वती.
   —<u>कुमारसंभवम्</u>, 5. 31
3. इदानीमतिथि विशेषलाभेन हला शकुन्तले गच्छोप्जम् फलमिश्रर्धमुपहर इदँ पोदोदकं भविष्यति.
   —<u>अभिज्ञानशाकुन्तलम्</u>, अँक 1, पृष्ठ 17
4. हला शकुन्तले उचितं न: पर्यपासनमतिथीनाम् तदेहि अत्रोपावशाम:
   —<u>अभिज्ञानशाकुन्तलम्</u>, अँक 1, पृष्ठ 17

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपनी पत्नी और पुत्री को सप्तर्षियों के अतिथि सत्कार हेतु अर्पित किया था.[1]

अतिथि सत्कार के साथ ही उन्हें हर प्रकार का काम सिखाया जाता था. "शकुन्तला" प्रतिदिन वृक्ष सींचती थी.[2] "पार्वती" पूजन के लिए नियम से प्रतिदिन फूल चुनकर लाती थी. वेदी को भली प्रकार धोकर, पोंछती थी एवँ नित्यकर्म के लिए जल एवँ कुशा बिना थके हुए लाकर रखतीं थीं.

विभिन्न प्रकार की कालिदास की रचनाओं में कन्याओं की क्रीड़ाओं से सँबंधित प्रमाण प्राप्त होते हैं. कन्यायें बाल्यावस्था में विभिन्न प्रकार के खेल खेलती थीं, जिनमें उनकी सखियाँ भी सम्मिलित होती थीं. "कुमुद्वती"[3] "पार्वती"[4] एवँ "कुमारी वसुलक्ष्मी"[5] सभी मनोरँजन का साधन गेंद खेलना ही था. कन्दुक क्रीड़ा दो प्रकार की होती थी. कभी कन्दुक को हाथ की थपकी से ऊपर उछाला जाता था.[6] कभी

---

1. एते वयममी दारा: कन्येयँ कुलजीवितम्,
   ब्रूतयेनात्र व: कार्यमनास्था बाह्य वस्तुषु.
   —कुमारसँभवम्, 6.63
2. हलाशकुन्तले । त्वत्तोअपि तातकण्वस्याश्रमवृक्षका: प्रियतरा इति तर्कयामि येन नवमालिका कुसुमपेलवा त्वमप्येतेषांमालवालपूरणे नियुक्ता.
   —अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अंक 1, पृष्ठ 12
3. कराभिघातोत्थित कन्दुकेयमालोक्य बालातिकुतूहलेन.
   —रघुवंशम्, 16.83
4. मंदाकिनीसैकतवेदिकाभि: सा कन्दुकै: कृतिमपुत्रकैश्च
   रेमे मुहुर्मध्यगता सखीनां क्रीडारसं निर्विशतीव बाल्ये.
   —कुमारसँभवम्, 1.29
   "विसृष्टरागादधरान्निवर्तितस्तनाङरागारूणिताच्चकन्दुकात्"
   —कुमारसँभवम्, 5.11
   "क्लमं ययौ कन्दुकलीलयापि या तया मुनीनां चरितं व्यगाह्यते"
   —कुमारसँभवम्, 5.19
5. कुमारी वसुलक्ष्मी: कन्दुकमनुधावन्ती पिंगलवानरेण बलवता सिताऽनिषण्णा देव्या: पार्श्वात किसलयमिव वेपमाना न किंचित्प्रकृति प्रतिपद्यते.
   —मालविकाग्निमित्रम्, अँक 4, पृष्ठ 335
6. "कराभिघातोत्थितकन्दुकेयमालोक्य बालातिकुतूहलेन"
   —रघुवंशम्, 16.83

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कभी गेंद के पीछे पीछे दौड़कर खेला जाता था।[1] "वात्स्यायन" ने कन्दुक के कई प्रकारों का {रँगबिरँगी} वर्णन किया है जिन पर अनेक प्रकार की चित्रकारी रहती है.[2] अँगराग से रँगी हुई लाल रँग की गेंद का वर्णन मिलता है.[3]

पुत्तलिका अर्थात् कृत्रिम गुड़िया बनाना. प्राचीनकाल में कन्यायें बनाकर उनसे खेला करती थीं. पार्वती का कृत्रिम गुड़िया बनाकर सजाने का उल्लेख मिलता है.[4] ये गुड़िया कपड़े, लकड़ी, सींग, हाथीदाँत, मोम {सिक्थ} एवं मिट्टी इत्यादि की बनती थीं.[5]

कन्यायें बालू से विभिन्न {बालू तट पर} प्रकार से खेलती थीं.[6] जैसे बालूतट पर वेदी बनाना[7] {टीले} बालू का घर बनाना,[8] मुट्ठियों में मणि लेकर सुनहरे बालू में डालकर छिपाना और ढूँढने का खेल. मणि छुपाने और ढूँढने का खेल सँभवतः युवा कन्यायें भी खेलती थीं.[9]

---

1. कुमारी वसुलक्ष्मी : कन्दुक मनु धावन्ती
   --मालविकाग्निमित्रम्, अंक 4, पृष्ठ 335
2. कन्दुकमनेकभक्तिचित्रमल्पकालान्तरितम्, कामसूत्र, 3.3.13, गैरोला, वाचस्पति,
   --वात्स्यायन कामसूत्र परिशलन, पृष्ठ 188
3. कुमारसँभवम्, 5.11
4. मंदाकिनीसैकतवेदिकाभि: सा कन्दुकै: कृत्रिमपुत्रकैश्च रेमे
   मुहुर्मध्यगता सखीनाँ क्रीडारसं निर्विशतीव बाल्ये
   --कुमारसँभवम्, 1.29
   गैरोला वाचस्पति, कामसूत्र परिशीलन, पृष्ठ 188
5. "सूत्रदारुगवलगजदंतमयी दुहितृकाश्च पिष्टमृण्मयीश्च"
   --कामसूत्र, 3.3.13
   गैरोला वाचस्पति, कामसूत्र परिशीलन, पृष्ठ 188
6. रघुवंशम्, 13.62
7. मंदाकिनी सैकतवेदिकाभि: सा कन्दुकै: कृत्रिम पुत्रकैश्च रेमे
   मुहुर्मध्यगता सखीनाँ क्रीडा रस निर्विशतीव बाल्ये.
   --कुमारसँभवम्, 1.29
8. तत्र खलु मन्दाकिन्या: पुलिनेषु गता सिकतापर्वतकेलीभि: क्रीडन्ति विद्याधरदारिकादयवती नामतेन राजर्षिणा निध्यातेति कुपिता उर्वशी
   --विक्रमोर्वशीयम्, अंक 4, पृष्ठ 213
9. मंदाकिन्या: सलिलशिशिर: सेव्यमाना मरुद्भिर्मन्दाराणामनुतटरुहां छाययावारितोष्णा:/अन्वेष्टव्यै: कनक सिकतामुष्टिनिक्षेपगूढै: संक्रीडन्ते मणिभिरमर प्रार्थिता यत्र कन्या:.
   --मेघदूतम्, उत्तरमेघ, 6

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिकता पर्वत केलि (बालू के टीले बनाने) का खेल भी युवती कन्यायें खेलती थीं।[1]

कन्या एक ऐसी धरोहर थी, जिसे उचित पात्र को देना ही माता पिता का कर्तव्य था। इसके लिए वे दृढ़ सँकल्प होते थे। कन्या को अनुरूप वर को देना चाहिए यही उनका प्रथम सँकल्प और कर्तव्य होता था।[2] पुत्री के प्रति पिता के कर्तव्य का महर्षि कण्व के मुख से स्पष्ट होता है।[3]

समय पर कन्या दान करना माता पिता का धर्म माना जाता था। इस धर्म का पालन न करना उनके लिए लज्जा की की बात होती थी। कन्या के पिता ही योग्य वर ढूँढ कर कन्या का विवाह निश्चित करते थे। माता से भी परामर्श लिया जाता था। कन्या को योग्य वर देने के लिए माता पिता प्रयत्नशील रहते थे फिर यदि कन्या स्वयँ ही अनुरूप वर चुनकर उचित ढँग से विवाह कर लेती है तो वे निश्चिन्त हो जाते थे और उसका अनुमोदन करते थे।[4] कण्व शकुन्तला से कहते हैं "तुम जो अपने गुणों से योग्य वर को प्राप्त कर चुकी हो तो अब मैं निश्चिंत हो गया हूँ"।[5] इससे प्रकट है कि सत्पात्र मिलने पर ही माता पिता की कन्या सँबंधी चिंता दूर होती थी।[6]

---

1. विक्रमोर्वशीयम्, अँक 4, पृष्ठ 213
2. "गुरूणो उण में अनुरूअवरधदाणे संकप्पो"
   --अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अँक 1, पृष्ठ 65
3. "संकल्पितं प्रथममेव मया त्वदर्थं"
   --अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 4.15
4. वही, अँक 4, पृष्ठ 256.
5. वही, 4.15 पृष्ठ 285
6. वही, 4.24, पृष्ठ 308

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कन्या को भी पुत्र की तरह शिक्षा का प्रबंध था. शिक्षा में ललित कलाओं की शिक्षा दी जाती थी. शकुन्तला का कविता करना इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है.[1] अनसूया और प्रियंवदा दोनों प्रसाधनकला में निष्णात थीं.[2] इंदुमती, मालविका, उर्वसी इत्यादि कालिदास की सभी नायिकायें उच्च शिक्षिता थीं. शकुन्तला और उर्वशी के काव्यबद्ध प्रणय-निवेदन से स्पष्ट है कि वे काव्य रचना में पारंगत थीं. स्त्रियाँ ललित कलाओं अर्थात् नृत्य, गायन, चित्र रचना, काम शास्त्र इत्यादि में निष्णात थीं. अत: निश्चित ही कन्याओं की शिक्षा उचित प्रबंध गुप्त काल में होगा.

कन्या की पवित्रता एवं उसकी रक्षा के विषय में धर्मशास्त्रों में उल्लेख मिलता है. किसी मानवीय वर के साथ विवाह होने के पूर्व कन्या देवताओं की रक्षा में थी, इस प्रकार का उद्धरण ऋग्वेद[3] के विवाह सूत्र में है. याज्ञवल्क्य के अनुसार:

> "सोम देवता ने (नारी को) पवित्रता दी, गन्धर्व ने मधुर वाणी दी, अग्नि ने सब प्रकार से पवित्र होने की शक्ति दी, अतएव स्त्रियाँ (सर्वत्र) पवित्र होती हैं."[4]

कन्याओं की पवित्रता पर बल देते हुए मनु[5] ने विवाह संबंधी मंत्र सिर्फ (अक्षत योनि) कन्याओं के लिए ही बताए हैं.

अत: द्वेष से प्रेरित कोई व्यक्ति कन्या को अकन्या कहकर दोष

---

1. तव न जाने हृदयं मम पुन: कामो दिवा पि रात्रिमपि
   निर्घृण तपति बलीयस्त्वयि वृत मनोरथान्यङ्गानि.
   —*अभिज्ञानशाकुन्तलम्*, 3.14
2. अये अनुपयुक्तभूषणो यं जन: चित्रकर्मपरिचयेनाङ्गेषु ते आभरणविनियोगं कुर्व:
   —*अभिज्ञानशाकुन्तलम्*, अंक 4, पृष्ठ 67
3. *ऋग्वेद*, 10.85
4. *याज्ञवल्क्यस्मृति*, 1.71
5. *मनुस्मृति*, 8.226

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रमाणि न करे तो वह राजा द्वारा दण्डनीय होता है. ऐसे व्यक्ति को मनु[1] 100 पण, कौटिल्य[2] 200 पण तथा याज्ञवल्क्य[3] 100 पण का दँड देने का आदेश देते हैं. निर्दोष कन्या को दोषी बताने वाले को दण्ड देने का विधान नारद[4] एवँ विष्णु[5] ने दिया है. याज्ञवल्क्य[6] का विचार था कि कन्या का वास्तविक दोष भी प्रकट नहीं किया जाना चाहिए.

कुमारी कन्या से व्यभिचार करने वाले पुरूष को स्मृतियों में कड़े दण्ड की व्यवस्था है. मनु[7] के अनुसार कन्या की इच्छा के विपरीत उससे व्यभिचार करने वाले पुरूष का वध होना चाहिए, इसके विपरीत कन्या की स्वीकृति होने पर पुरूष दोषी नहीं होता. यदि व्यभिचार का दोषी पुरूष, कन्या से उच्च जाति का है तो वह दण्ड का भागी नहीं होता किंतु यदि अपने से उच्च जाति की कन्या से व्यभिचार करने पर वह वध के योग्य है.[8] याज्ञवल्क्य[9] के अनुसार सानुरागा हीन वर्णा कन्या के साथ व्यभिचार करने से दोष नहीं होता और दण्ड भी नहीं

---

1. मनुस्मृति, 8.225
2. कौटिल्य, 4.12.22
3. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.66
4. नारद स्मृति, 12.31.34
5. विष्णु स्मृति, 5.45-46
6. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2.286
7. मनुस्मृति, 8.364
8. मनुस्मृति, 8.365, 66
9. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2.228

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिया जाना चाहिए. नारद[1] के अनुसार न चाहती हुई कन्या से व्यभिचार करने पर उसकी दो अँगुलियाँ काट दी जायें. यदि कन्या उच्च वर्ण की हो तो उसकी (पुरूष की) सारी सम्पत्ति छीनकर उसका वध किया जावे.[2] किंतु कन्या की स्वीकृति से उससे संबंध रखने वाला पुरूष दोष नहीं होता किंतु पुरूष उसे गहने दे. दूसरे अलँकारों द्वारा उसका आदर करे और विधिपूर्वक उससे विवाह करे.[3]

धर्मसूत्रों एवँ स्मृतियों में कुमारी पुत्र को "कानीन" कहा गया है. मनु[4] ने कुमारी से उत्पन्न पुत्र "कानीन" एवँ "सहोढ पुत्र" की चर्चा की है. याज्ञवल्क्य[5] ने वह पुत्र मातामह का माना है. नारद के अनुसार कुमारी पुत्र और गर्भवती वधू का पुत्र माता के पिता का माना जाता है और सम्पत्ति का अधिकारी है.[6] किंतु अविवाहित कुमारी का पुत्र (जिसका पिता अज्ञात है अथवा जिसकी माता बाद में विधिवत् विवाह नहीं करती) अपने नाना के लिए पिण्डदान दे सकता है और उसकी सम्पत्ति का अधिकारी होता है.[7]

1.
2. नारद स्मृति, 12.71
3. नारद स्मृति, 12.72
4. मनुस्मृति, 9.172-73
5. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2.129
6. नारद स्मृति, 13.17
7. नारद स्मृति, 13.18

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वैदिक युग में "पत्नी" सम्मानित पद पर प्रतिष्ठापित थी. वह पति की "अर्द्धांगिनी" एवं सास, ससुर, ननद एवं देवर पर साम्राज्य करने वाली "साम्राज्ञी" स्वीकारी गई है.[1] मनु के अनुसार "अकेला पुरूष अपूर्ण होता है किंतु स्त्री उससे मिलकर उसे परिपूर्ण बना देती है."[2] वे "श्री" एवं "स्त्री" में कोई भेद नहीं मानते तथा संतान, धर्मकृत्य, लोक व्यवहार, सेवा सुश्रुषा, श्रेष्ठ रति, पितरों का तथा अपना स्वर्ग-----ये सभी स्त्री के अधीन मानते हैं.[3]

गुप्तकाल में पत्नी को पति का प्रेम प्राप्त था तथा वह पूर्णरूपेण सम्मान की पात्र थी. कालिदास ने अपने काव्यों में उसे पति के साथ "धर्मानुचरण" करने के कारण ही "सहधर्मचारिणी" कहा है.[4] चूँकि विवाह का मूल उद्देश्य ही सहधर्माचरण था अतः पत्नी "धर्मपत्नी" कहलाती थी.[5] धार्मिक प्रवृत्ति के पतियों का मूल आधार पत्नी ही थी. बिना पतिव्रता पत्नी से विवाह किये पति की धार्मिक क्रियायें

---

1. ऋग्वेद, 10.85.46
2. "एतावानेव पुरूषो यज्जायात्मा प्रजेतिह"
   --मनुस्मृति, 9.45
3. प्रजानार्थं महाभागा पूजा हो गृहदीप्तय:
   स्त्रिय: श्रियश्च गेहेषु न विशेषो स्ति कश्चन.
   उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम्
   प्रत्यहं लोकयात्राया: प्रत्यक्षं स्त्री निबन्धनम्
   अपत्यं धर्मकार्याणि सुश्रुषा रतिरूत्तमा
   दाराधीनस्तथा स्वर्ग: पितृणामात्मनश्चहि.
   --मनुस्मृति, 9.26-28
4. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अंक 5
   कुमारसम्भवम्, 8.51
   वही, 8.29
5. संरोपिते प्यात्मनि धर्मपत्नी त्यक्ता मया नाम कुल प्रतिष्ठा
   कल्पिष्यमाणा महते फलाय वसुन्धरा काल इवोप्त बीजा.
   --अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 6.24

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्पादित नहीं हो सकती थीं।[1]

प्राचीन भारत में प्रचलित आदर्श स्त्री रूप में थे। सरस्वती विद्या का आदर्श थी तो लक्ष्मी धन का. सौंदर्य का आदर्श रति थी तो गंगा पवित्रता का. महामाया दुर्गा में पराक्रम का आदर्श निरूपित था. इसी प्रकार गुप्तकालीन अभिलेखों में रानियों {स्त्रियों} का आदर्श "देवी" एवं "महादेवी" था. उन्हें {रानियों को} "देवी", "महादेवी", "राज्ञी" "भट्टिनी", "भट्टारिका", "परमभट्टारिका", "श्रीसम्पन्ना" "श्रीमति" इत्यादि उपाधियों का प्रयोग किया जाता था.[2] कालीदास[3] ने अपने काव्यों में इन उपाधियों का प्रयोग किया है जो स्त्रियों की उच्च सामाजिक स्थिति के द्योतक हैं.

कवि कालिदास ने नारी का आदर्श "पत्नीत्व" एवं "मातृत्व" ही स्वीकारा है. अतः स्पष्ट है कि पतिव्रता एवं पुत्रवती स्त्रियाँ समाज में अत्यधिक सम्मान पाती थीं. पत्नी मात्र "धर्मपत्नी" ही नहीं वरन्

---

1. "क्रियाणां खलु धर्म्याणां सपत्न्यो मूल कारणम्",

—कुमारसंभवम्, 6. 13

2. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3, 1974, संख्या 1.1
समुद्रगुप्त का इलाहाबाद मरणोपरांत लिखित प्रस्तर स्तंभ लेख, पृष्ठ 19
चन्द्रगुप्त का द्वितीय मथुरा प्रस्तर अभिलेख, पृष्ठ 35, सं. 4.3 क
कुमारगुप्त का बिल्सड़ प्रस्तर स्तंभ लेख, पृष्ठ 57, सं. 10.5
समुद्रगुप्त का बिहार प्रस्तर स्तंभ अभिलेख, पृष्ठ 65, सं. 12.6 ख
स्कंदगुप्त का भितरी प्रस्तर स्तंभ लेख, पृष्ठ 68-69, सं. 7.7
आदित्यसेन का मंदार पहाड़ी से प्राप्त शिलालेख, पृष्ठ 262, सं. 44-45
जीवितगुप्त द्वितीय का देववर्णाक अभिलेख, पृष्ठ 269, सं. 46.29 ख
इत्यादि अनेक गुप्तकालीन अभिलेखों में इन उपाधियों का वर्णन मिलता है.

3. "देवी भगवती यथा अये देवी स्वागतं देव्यै".

—विक्रमोर्वशीयम्, अंक 2, पृष्ठ 168, 188

भट्टिनी, मालविकाग्निमित्रम्, अंक 4 पृष्ठ 332.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वह गृहणी, सचिव, एकान्त की मित्र, समस्त कलाओं में निष्णात प्रिय शिष्या भी होती थी.[1] दूसरा विवाह करने के पूर्व पहली पत्नी (ज्येष्ठा) से मँत्रणा करना एवँ उसकी स्वीकृति मिलने पर ही दूसरा विवाह करना पत्नी के प्रति सम्मान को प्रदर्शित करता है.[2] किंतु पत्नियाँ पूर्णरूपेण पति की सम्पत्ति समझी जाती थीं एवँ पति का उस पर पूरा अधिकार था.[3]

गुप्तकालीन स्मृतिकार याज्ञवल्क्य स्त्रियों की सच्चरित्रता के संबंध में कहते हैं कि "पति के अनुकूल एवँ श्रेयस्कर कार्य में तत्पर, सुन्दर आचरण वाली, आत्मसँयमी स्त्री इस सँसार में कीर्ति पाती है और परलोक में उत्तम गति.[4] ऐसी पत्नी का उज्जवल प्रमाण हमें समुद्रगुप्त के एरण प्रस्तर अभिलेख[5] में मिलता है. उनकी पत्नी दत्तदेवी गुणशीला एवँ पति परायणा पत्नी विपुल अश्वगज एवँ धनधान्य की स्वामिनी थी, तथा जो बहुतेरे पुत्रों और पौत्रों से युक्त हो घर में प्रसन्नता पूर्वक रहती थी. इसी प्रकार कुमार गुप्त तथा बन्धुवर्मन के मँदसौर प्रस्तर अभिलेख[6] में बुद्धिमान और सुँदर स्त्रियों वाले यशस्वी एवँ पराक्रमी राजाओं का वर्णन है. अभिलेखों में एक ओर सती पत्नी का उल्लेख मिलता है. गोपराज के मरणोपराँत लिखित एरण प्रस्तर स्तम्भ लेख[7] में गोप राज की पत्नी जो भक्तिभावयुक्ता, अनुरक्ता, प्रिया तथा

---

1. शिवेन भर्त्रा सह धर्मचर्याकार्यत्त्वया मुक्त विचारयेनि
—कुमारसंभवम्, 7.83

२, गृहणी सचिव: सखी मिथ: प्रिय शिष्या ललिते कलाविधौ
—रघुवंशम्, 8.67

3. मालविकाग्निमित्रम्, अंक 5, पृष्ठ 355-6

4 ~~3~~. मृच्छकटिकम्, 2.8
उपपन्ना हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी,
—अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 5.26

5 ~~4~~. पतिप्रिय हिते युक्ता स्वाचारा विजितेन्द्रिया
सेह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमाँ गतिम्.
—याज्ञवल्क्यस्मृति, 1.87

6 ~~5~~. फ्लीट, भारतीय अभिलेख सँग्रह, भाग 3, संख्या 2.2 क
समुद्रगुप्त का एरण प्रस्तर अभिलेख, पृष्ठ 25

7 ~~6~~. फ्लीट, भारतीय अभिलेख सँग्रह, भाग 3, सं. 18.11
कुमारगुप्त तथा बन्धुवर्मन प्रस्तर अभिलेख, पृष्ठ 105

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुंदरी पत्नी पूर्ण घनिष्ठतापूर्वक चिंता पर उसकी अनुगामिनी बनीं. अच्छे कुल में उत्पन्न एवँ पवित्र पत्नी द्वारा सन्तानोत्पत्ति भी उतना ही सम्माननीय एवँ गर्व करने योग्य था.[1] स्वामी के प्रति सत्यरूपेण पतिव्रता, उत्कृष्ट गुणों से तपस्या करने वाली, राजा की प्रिय पत्नी रानी कोणदेवी द्वारा उत्कृष्ट तपस्या के सम्पादन के लिए सरोवर के निर्माण का उल्लेख आदित्यसेन[2] के अपसढ़ प्रस्तर लेख में मिलता है.

आदित्य सेन ने अपनी प्रिय पत्नी श्री कोण देवी के साथ महामणियों की तीन अयुत, टंकक, नामक तीन लाख सुवर्ण मुद्राओं के साथ इस सम्पूर्ण प्रसिद्ध निर्माण कार्य को सम्पन्न कराया तथा विभिन्न अनुष्ठों को विधि पूर्वक सम्पादित कर तीनों लोकों के कल्याण हेतु तथा माता पिता की स्वर्ग प्राप्ति के हेतु भगवान नृहरि की स्थापना की.[3]

मगध के गुप्तों की वँशावली में वर्णित राजा आदित्य सेन एवँ जीवित गुप्त द्वितीय के अभिलेखों में, राजा, भट्टारक एवँ परमभट्टारक के स्त्रीलिंग उपाधियों राज्ञी, भट्टारिका एवँ परमभट्टारिका प्रयुक्त की गई हैं.[4] उनकी रानियों के लिए प्रयुक्त हैं तथा जो शब्दशः जो

---

1. फ्लीट, भारतीय अभिलेख सँग्रह, भाग 3 , संख्या 35. 22
   यशोवर्मन तथा विष्णुवर्धन का मँदसौर स्तँभ लेख, पृष्ठ 190
2. फ्लीट, भारतीय अभिलेख सँग्रह, भाग 3 , संख्या 42. 28
   आदित्यसेन का अफसढ़ प्रस्तर लेख, पृष्ठ 255-6
   आदित्यसेन का मंदार पहाड़ी से प्राप्त शिलालेख, पृष्ठ 262, सं. 44-45
3. फ्लीट, भारतीय अभिलेख सँग्रह, भाग 3, सं. 44 - 45
   आदित्यसेन का मंदार पहाड़ी से प्राप्त शिलालेख, पृष्ठ 262 एवँ वाद टिप्पणी 5, पृष्ठ 262.
4. फ्लीट, भारतीय अभिलेख सँग्रह, भाग 3
   आदित्यसेन का अफसढ़ प्रस्तर लेख, पृष्ठ 255-6 , संख्या 42. 28
   आदित्यसेन का मंदार पहाड़ी से प्राप्त शिलालेख, पृष्ठ 262 तक पाद टिप्पणी नंबर 4 एवँ 5
   जीवित गुप्त द्वितीय का देववरणार्क अभिलेख, पृष्ठ 268-9, सं. 46. 29 स
   शर्ववर्मन् का असीरगढ़ ताम्र मुहर लेख, पृष्ठ 273-4, सं. 47. 30 क

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

{परमभट्टारिका} वह जो सम्मान तथा पूजा की सर्वोच्च अधिकारिणी है, परमभट्टारक की स्त्रीलिंग में प्रयुक्त उपाधि है तथा सार्वभौम शासकों के लिए प्रयुक्त पत्नियों के पारिभाषिक उपाधियों में एक थी।[1]

चन्द्रगुप्त प्रथम द्वारा प्रचलित "राजा रानी" प्रकार के सिक्कों से स्पष्ट है कि जिस प्रकार गृहस्थ जीवन में पत्नी का महत्व था राजकीय स्थिति में भी पत्नी का उतना ही महत्व था. चन्द्रगुप्त प्रथम द्वारा प्रचलित मुद्राओं के पुरोभाग में चन्द्रगुप्त एवँ कुमारदेवी का खड़ी मुद्रा में चित्र अँकित है, जिसमें राजा, रानी को कुछ भेंट दे रहा है तथा "श्री कुमार देवी" अँकित है. निश्चित ही "चन्द्रगुप्त-कुमार देवी" मुद्रायें राजनैतिक परिस्थिति का परिणाम था{लिच्छवय:}[2]. समुद्रगुप्त के अश्वमेध प्रकार की मुद्राओं में भी उसकी राजमहिषी दत्तदेवी दिखलाई गई हैं. अश्वमेध यज्ञ में पत्नी की अनिवार्यता को प्रकट करती ये मुद्रायें महत्वपूर्ण हैं.[3] समुद्रगुप्त के सिक्कों पर रानी दत्त देवी कमल सदृश्य, मणि लगी चटाई पर खड़ी बताई गई है. चन्द्रगुप्त द्वितीय की स्वर्ण मुद्राओं राजा रानी प्रकार सिक्कों पर राजा रानी पर्यंक पर बैठे, आमने सामने देख रहे हैं. राजा रानी को कोई गोल वस्तु संभवत: कोई आभूषण दे रहा है.[4] {रानी राजा के बाईं ओर बैठी है}.

कवि कालिदास ने दाम्पत्य जीवन का सुख पति पत्नि के प्रेम पर आश्रित माना है. "चकवा-चकवी" दाम्पत्य प्रेम का आदर्श था.

---

1. फ्लीट, <u>भारतीय अभिलेख संग्रह</u>, भाग 3
   पाद टिप्पणी 4,5, पृष्ठ 262, पाद टिप्पणी 2, पृष्ठ 21.
2. अल्तेकर, अनन्त सदाशिव, <u>गुप्तकालीन मुद्रायें</u>, 1972, पृष्ठ 24,25
   फलक 1.8, 1.9, 1.0, 1.11, 1.12, 1.13
3. अल्तेकर, <u>वही</u>, पृष्ठ 43
4. अल्तेकर, <u>गुप्तकालीन मुद्रायें</u>, 1972, पृष्ठ 98
   <u>प्रोसीडिंग्स ऑफ एशियाटिक सोसायटी, बँगाल</u> 1988, {फलक 6}

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कवि ने अपने हृदय के उद्गार "रक्षागंनाम्नोरिव भाव बंधनं" कहकर व्यक्त किए हैं. संतान प्राप्ति से यह प्रेम कम न होकर बढ़ता ही जाता है।[1] पति और पत्नी का संबंध "मणिकांचन" संयोग था।[2] साथ ही दो मनों का जन्म जन्मांतर चलने वाला संयोग था।[3] इसी संबंध को दार्शनिक स्वरूप प्रदान कर प्रकृति प्रत्यय संयोग के रूप में भी स्वीकारा गया है।[4]

पति पत्नी का आपस में अत्यधिक घुलमिल जाना, एक दूसरे की बढ़ाई करते भी न थकना, क्षण मात्र के लिए भी एक दूसरे से अलग होने पर एक दूसरे के लिए तड़पना, विरह न सह पाना ही गूढ़ प्रेम का रहस्य था।[5] पत्नी का सबसे बड़ा सौभाग्य एवं आर्शीवाद पति ही होता था।[6] सुरक्षा की दृष्टि से पत्नी के लिए पति की सुरक्षा ही सर्वश्रेष्ठ थी।[7] मनु[8] वशिष्ठ[9] एवं याज्ञवल्क्य[10] के अनुसार सच्चरित्र स्त्रियों की रक्षा विभिन्न अभिभावकों द्वारा जीवन के हर क्षेत्र मे की जावे, यथा बचपन

---

1. रघुवंशम्, 3. 24
2. त्वमात्मनस्तुल्यमनं वृणीष्व रत्नं समागच्छतु कांचनेन
   --रघुवंशम्, 6. 79
   मालविकाग्निमित्रम्, 5. 18
3. मनो हि जन्मान्तर संगतिज्ञम्, --रघुवंशम्, 5. 15
4. प्रत्यय प्रकृति योगसन्निभः --रघुवंशम्, 11. 56
5. भावसूचितम दृष्टिविप्रियं दार्दयभाक्षयण वियोगकातरम्
   कश्चिदेव दिवसैस्तथा तयोः प्रेमगूढ मितरेतराश्रयम्,
   --कुमारसंभवम्, 8. 15
6. विक्रमोर्वशीयम्, अंक 5, पृष्ठ 256
7. मृच्छकटिकम्, अंक 3, पृष्ठ 100
8. मनुस्मृति, 9. 3
9. वशिष्ठ, 5. 3
10. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1. 85

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में पिता द्वारा, युवावस्था में पति द्वारा तथा वृद्धावस्था में पुत्रों द्वारा की जावे अर्थात् उन्हें अपने आप (स्वतंत्र) नहीं छोड़ा जाय. गुप्तकालीन राजाओं के अभिलेखों में कहा गया है कि वह धरती की रक्षा ठीक उसी प्रकार करे जैसे कि वह उसकी प्रथम एवँ विधिवत् विवाहिता पत्नी हो.

प्रायः अपने कुल के सदृश्य उच्च कुल वाली स्त्री के साथ विवाह करना उचित माना जाता था. पतिव्रता, गुणशील, कुलीन, सुशील, बुद्धिमान एवँ सुँदर, अच्छे कुल में उत्पन्न कन्याएँ ही विवाह योग्य होती थीं. ऐसी आत्मसंयमी स्त्रियाँ ही इस सँसार में कीर्ति पाती हुई परलोक में उत्तम गति पाती हैं।[1] दत्तदेवी ऐसी ही पत्नी थी।[2] पति हमेशा पवित्र एवँ पतिव्रता एवँ सहिष्णु पत्नी की इच्छा करता था, क्योंकि पतिव्रता स्त्रियाँ पति के लिए सर्वस्व त्याग कर देती थीं. अच्छे कुल में उत्पन्न पत्नी द्वारा पवित्र पुत्र को जन्म देना सम्माननीय एवँ अतिरिक्त आवश्यक बातें मानी जाती थीं।[3]

इसी प्रकार पत्नि को वीर पति का पत्नीत्व एवँ वीर पुत्र का मातृत्व प्रशंसनीय था।[4] तभी तो "जाते भर्तुरभिमता भव" का आशीर्वाद

---

1. फ्लीट, <u>भारतीय अभिलेख सँग्रह</u>, भाग 3, 1974
   समुद्रगुप्त का एरण प्रस्तर अभिलेख, पृष्ठ 25 , संख्या 2. 25
   आदित्यसेन का अफसढ़ प्रस्तर लेख, पृष्ठ 255 , संख्या 42. 28
   आदित्यसेन का मंदार पहाड़ी से प्राप्त शिलालेख, पृष्ठ 262, सं. 44-45
   कुमारगुप्त तथा बंधवर्मन का मँदसौर प्रस्तर अभिलेख, पृष्ठ 105, सं. 18.11
   गोपालराज का मरणोपरांत लिखत एरण प्रस्तर स्तँभ लेख, पृष्ठ 114, 20.12
   यशोवर्मन तथा विष्णुवर्धन का मँदसौर स्तँभ लेख, पृष्ठ 190 , सं. 35.22
   <u>विक्रमोर्वशीयम्</u>, अँक 3, पृष्ठ 205-6
2. फ्लीट, <u>भारतीय अभिलेख सँग्रह</u>, भाग 3 , संख्या 2. 25
   समुद्रगुप्त का एरण प्रस्तर अभिलेख, पृष्ठ 25-6
3. <u>अभिज्ञानशाकुन्तलम्</u>, 4. 19
   फ्लीट, <u>भारतीय अभिलेख सँग्रह</u>, भाग 3 , संख्या 35. 22
   यशोवर्मन तथा विष्णुवर्धन का मँदसौर स्तँभ लेख, पृष्ठ 190
   आदित्यसेन का अफसढ़ प्रस्तर लेख, पृष्ठ 255 , संख्या 42. 28
4. <u>मालविकाग्निमित्रम्</u>, 5. 16, पृष्ठ 353

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिया जाता था.[1] निश्चित ही पति का आदर पाना गौरव की बात थी.

"पत्नी" शब्द की व्युत्पत्ति के आधार पर पाणिनि ने उसी को "पत्नी" कहा है जो यज्ञ तथा यज्ञ करने के फल की भागी होती है.[2] अत: स्पष्ट है पत्नियों को पतियों के साथ यज्ञ में भाग लेना अनिवार्य था. साथ में [यज्ञ में] भाग नहीं लेने वाली "जाया" या "भार्या" कहलाती थीं. कर्तव्यों का प्रतिफल भी पति पत्नी साथ ही भोगते थे. धार्मिक कृत्यों में पत्नी की अनिवार्यता इसी से स्पष्ट है कि सीता की अनुपस्थिति में राम सीता की स्वर्णिम मूर्ति को बायें रखकर ही यज्ञ कर सके थे.[3] समुद्रगुप्त के अश्वमेध प्रकार सिक्के[4] कुमार गुप्त के अश्वमेध प्रकार सिक्के[5] प्रमाणित करते हैं कि यज्ञ में पत्नी की महत्वपूर्ण भूमिका एवँ अनिवार्यता थी.

स्मृतिकार मनु[6] ने पति पत्नी के धर्मों की चर्चा करते हुए कहा है:

> "इन्हें [धर्म, अर्थ एवँ काम के विषय में] एक दूसरे के प्रति सत्य रहना चाहिए और सदा प्रयत्न करना चाहिए कि वे कभी भी अलग न हो सकें".

---

1. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अंक 7, पृष्ठ 145
2. पाणिनि, 4. 1. 33
3. रघुवंशम्, 14. 87
4. ब्रिटिश म्यूजियम कैटलाग, फलक 5, पृष्ठ 9-10
   जर्नल ऑव एशियाटिक सोसायटी ऑफ बँगाल, कलकत्ता, 1984 फलक 2. 9
   जर्नल ऑफ रायल एशियाटिक सोसायटी, लँदन, फलक 1, 4, ए. अं. फलक 18. 2
   जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसायटी ऑफ बँगाल, 1915, पृष्ठ 478
   अल्तेकर, अनन्त सदाशिव, गुप्तकालीन मुद्रायें, 1972, पृष्ठ 46
5. अल्तेकर, अनन्त सदाशिव, गुप्तकालीन मुद्रायें, 1972, पृष्ठ 140-2
6. मनुस्मृति, 9. 101-102

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मनु ने नारी के महत्त्व पर बल देते हुए कहा है कि ब्रम्हा ने अपने शरीर को दो भागों में विभाजित कर आधे भाग से स्त्री को उत्पन्न किया।[1] अतः अपना अधिक कल्याण चाहने वाले पति, पिता, भाई एवँ देवर को चाहिए कि वह सदा कन्या का पूजा एवँ वस्त्राभूषणों से उसका अलँकरण करें. जिस कुल में स्त्रियों की पूजा (वस्त्र, आभूषण तथा मधुर वचनादि आदर सत्कार द्वारा) होती है उस कुल पर देवता प्रसन्न होते हैं और जिस कुल में इन स्त्रियों की पूजा नहीं होती उस कुल में सब कर्म निष्फल होते हैं.[2]

मनु से ही मिलते जुलते विचार याज्ञवल्क्य[3] के भी हैं. पतिव्रता पत्नी के सँबंध में बृहस्पति के विचार हैं:

> "वही पतिव्रता स्त्री है जो पति के आर्त होने पर आर्त होती है और प्रसन्न होने पर प्रसन्न होती है, पति के विदेश गमन पर मलिन वेश धारण करती और दुर्बल हो जाती है एवँ पति के मरने पर मर जाती."[4]

पति की इच्छानुसार आचरण करना पत्नी का सबसे बड़ा धर्म था तथा स्वेच्छाचारिता का व्यवहार उचित नहीं माना जाता था.[5] पति ही उनका सर्वस्व था. पत्नी पूर्णरूपेण पति की सम्पत्ति मानी जाती थी.[6] वे पति को देवता मानने वाली सती साध्वी एवँ

---

1. <u>मनुस्मृति</u>, 1.32
2. <u>मनुस्मृति</u>, 3.55-60
3. <u>याज्ञवल्क्य स्मृति</u>, 1.75.87
4. बृहस्पति स्मृति
5. <u>अभिज्ञानशाकुन्तलम्</u>, अँक 5, पृष्ठ 94
6. उपन्ना हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी

—<u>अभिज्ञानशाकुन्तलम्</u>, 5.26

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एवँ सच्चरित्रता होती थी।[1] इसीलिए पति के प्रेम को पाने के लिए अपना सब कुछ त्यागने को ही तैयार नहीं रहती वरन् सपत्नी लाने को भी उद्यत रहती थी।[2] यह व्यवहार सैद्धाँतिक रूप में नहीं वरन् व्यावहारिक रूप में कालिदास के नाटकों में देखने को मिलता है।[3]

पतिव्रता पत्नी का प्रमुख कार्यक्षेत्र गृह ही था। अतः उनका प्रमुख कर्तव्य गुरूओं की सेवा करना, गृहस्थी के कामों में सँलग्न एवँ सँतानोत्पत्ति करना था।[4] मनु[5] के अनुसार पत्नी सदा हँसमुँख, जागरूक, दक्ष, कुशल गृहिणी, वर्तनों, पात्रों आदि को स्वच्छ रखने वाली एवँ मितव्ययी होना चाहिए। उसे घर सँजोना, व्यय करना, वस्तुओं को स्वच्छ एवँ तरतीब से रखना, धार्मिक कृत्य करना, भोजन पकाना, तथा सभी प्रकार के गृह सँबंधी कार्य करना चाहिए। स्मृतिकार याज्ञवल्क्य[6] के भी यही विचार हैं : घर के वर्तन, कुर्सी आदि को उचित स्थान पर रखना, दक्ष होना, हँसमुँख रहना, मितव्ययी होना, पति के मन के योग्य कार्य करना, सास-श्वसुर के पैर दबाना, सुँदर ढँग से चलना फिरना एवँ अपनी इन्द्रियों को वश में रखना विष्णु धर्मसूत्र में भी इन्हीं बातों की आवश्यकता स्वीकार की गई है।[7]

---

1. रघुवँशम्, 9.17
2. मालविकाग्निमित्रम्, 5.19
3. कुमारसँभवम्, 5.1
4. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 4.18
5. मनुस्मृति, 5.150, 9.11
6. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.83, 1.87
7. विष्णुधर्म सूत्र, 25.1-17
   मृच्छकटिकम्, 1.9, पृष्ठ 4-5

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पत्नी का प्रमुख कार्य क्षेत्र गृह होते हुए भी वह घर से बाहर पति की सहयोगी होती थी. आमोद-प्रमोद, उद्यान क्रीड़ा, वन बिहार, जल-बिहार, एवं उत्सवादि में वह पति की सहयोगिनी एंव आनंद प्राप्त करती एवं कराती थी.[1] साधारण घरों की स्त्रियाँ अथवा किसानों की स्त्रियाँ धान के खेती की रखवाली भी करती थीं.[2] खेतों की रखवाली करने के अतिरिक्त वे उद्यानों में काम करती थीं जिन्हें "पुष्पलावी"[3] या "उद्यानपालिका"[4] कहते थे. स्त्री परिचारिकायें तथा युवनियाँ इत्यादि राजा के अन्त:पुर में होती थीं. कभी कभी स्त्रियाँ बँदीगृह की अध्यक्षा भी होती थीं जैसे, बँदी मालविका, माधविका के कड़े पहरे में कैद थी.[5]

वात्स्यायन ने पत्नी के कर्तव्यों का आकर्षक ढँग से वर्णन करते हुए कहा है:

> "पति की रूचि और उसके पथ्यापथ्य का ध्यान रखते हुए भोजन का निर्माण करे. बाहर से घर के भीतर आते हुए पति की आवाज सुनते ही "क्या काम है" यह कहती हुई कार्य सम्पादन के लिए आँगन में आकर खड़ी हो जाय, नौकरानी को हटाकर स्वयँ पति के पैरों को धोये. एकान्त में पति के समक्ष अलँकारविहीन न आवे. पति के अधिक अथवा नाजायज खर्च करने पर उसे एकान्त में

---

1. रघुवँशम्, 16.68-70
   मालविकाग्निमित्रम्, अँक 3, पृष्ठ 293
   वही, अँक 5, पृष्ठ 342
2. रघुवँशम्, 4.20
   पूर्वमेघ, 16
3. पूर्वमेघ, 28
4. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अँक 6, पृष्ठ 102
   मालविकाग्निमित्रम्, अँक 3, पृष्ठ 290
5. मालविकाग्निमित्रम्, अँक 4, पृष्ठ 316

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समझाये. {विवाह होने वाले} वर अथवा कन्या के घर सखियों के साथ गोष्ठी या देवदर्शन के लिए जाना हो तो पति से पूछ कर जाये. पति के इच्छानुसार ही खेलों में भाग ले. पति के सो जाने पर सोए एवँ उसके उठने के पहले जाग जाए तथा उसे वर्ष भर के आय व्यय की जानकारी रखना चाहिए.[1]

पत्नी के कर्तव्यों को लेकर सम्पूर्ण साहित्य में विस्तृत विवेचन किया गया है. स्मृतियों, पुराणों एवँ साहित्य में इसकी अधिकतम चर्चा की गई है किंतु एक कर्तव्य के बारे में सभी धर्मशास्त्रकार एकमत हैं कि:

"पत्नी का सर्वप्रमुख कर्तव्य है कि पति की आज्ञा मानना एवँ उसे देवता की भाँति सम्मान देना."[2]

क्यों कि पति ही उसका देवता एवँ अधिष्ठाता ही नहीं वरन् सर्वस्व भी था जिसके लिए वह अपना सर्वस्व त्याग सकती थी.[3] मनु ने पतिभक्ति के नियमों के बारे में कहा है:

"जो पत्नी विचार, शब्द एवँ कार्य के प्रति सत्य रहती है वह पति के साथ स्वर्गिक लोकों को प्राप्त करती है और साध्वी {पतिव्रता} कही जाती है. जो पति के प्रति असत्य रहती है, वह निंदा की पात्र होती है, आगे के जन्म में सियारिन के रूप में जन्म लेकर भयँकर रोगों से पीड़ित रहती है".[4]

---

1. कामसूत्र, 4.1.10.-17, 6.1.32
2. काणे, पाण्डुरँग वामन, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 318
   मनुस्मृति, 5.144, याज्ञवल्क्यस्मृति, 1.77
   मत्स्य पुराण, 210.18, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अँक 5
3. विक्रमोर्वशीयम्, अँक 3, पृष्ठ 206
4. मनुस्मृति, 9.29-30
   वही, 5.164-65

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"पत्नी" पति की सम्पत्ति होने के कारण उसे (पति को) अपनी स्त्रियों पर पूरा अधिकार होता था।[1] पत्नी पति के लिए मात्र गृहणी ही नहीं थी अपितु उसकी सचिव, एकान्त की सखी एवं गान विद्या इत्यादि ललित कलाओं की शिष्या भी थी।[2] पत्नी सही अर्थ में "सहधर्मचारिणी" थी क्योंकि बिना पतिव्रता पत्नी के कोई भी धार्मिक क्रिया सम्पन्न नहीं हो सकती थी।[3] गृहस्थी के कार्यों में भी पत्नी की सलाह आवश्यक थी. कन्या के सँबंध को निश्चित करते समय पत्नी की सम्मति का विशेष महत्व था।[4] पति अपनी पत्नी का अत्यधिक सम्मान करता था, भले ही वह बहुपत्नीक ही क्यों न हो।[5] दूसरा विवाह करने के पूर्व पति ज्येष्ठा पत्नी से मंत्रणा कर उसकी अनुमति पर ही विवाह करता था।[6]

मेघदूत में "यक्ष विलाप" पत्नी प्रेम का प्रमाण है।[7] परित्यक्ता सीता का समाचार सुन राम की आँखों से अश्रुधारा निकल पड़ी।[8] राम द्वारा यज्ञ में सोने की मूर्ति रखना पत्नि के प्रति आदर और स्नेह की पराकाष्ठा है।[9] पति द्वारा पत्नी के दोहद की पूर्ति प्राणपण से करना उसके प्रति यथेष्ठ सम्मान का द्योतक है।[10]

---

1. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 5. 26
2. रघुवंशम्, 8. 87
3. कुमारसंभवम्, 6. 13
4. कुमार संभवम्, 6. 85
5. रघुवंशम्, 10. 55
6. मालविकाग्निमित्रम्, अंक 5, पृष्ठ 355-56
7. मेघदूतम्, सम्पूर्ण
8. रघुवंशम्, 14. 84
9. रघुवंशम्, 14. 87
10. रघुवंशम्, 3. 5, 3. 6, 14. 27

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पतिव्रता स्त्रियाँ अपने पति के कल्याणार्थ विभिन्न प्रकार के व्रत करती थीं. जैसे "प्रियानुप्रसादनव्रत", "चन्द्ररोहिणी संयोग-दर्शनाविधि" एवँ "अभिरूपपतिव्रत" इत्यादि.[1] इन व्रतों का विस्तृत वर्णन हम धार्मिक योगदान अध्याय में करेंगे.

पुराणों में पतिव्रता स्त्रियों में देवताओं, मुनियों तथा तीर्थ स्थानों की पवित्रता को स्वीकारा गया है. उनकी उपस्थिति मात्र से सँसार पवित्र होता है. ऐसा कोई भी पाप नहीं जो पतिव्रता स्त्रियों की उपस्थिति से दूर न होता हो.[2] गुप्तकालीन अभिलेखों में भीपतिव्रता स्त्रियों के उल्लेख मिलते हैं जो भाग्य से गुप्त राजाओं की रानियाँ अथवा राजपरिवार से ही सँबंधित स्त्रियाँ हैं. वे सती साध्वी एवँ सच्चरित्रा होती थीं. गुप्तकालीन समाज का ऐसा विश्वास था कि पतिव्रता स्त्रियों के पातिव्रत्य में पति को मृत्यु से बचाने की भी शक्ति होती है.[3] पतिव्रता स्त्रियों में इतना तेज होता था कि कोई उनके स्पर्श करने का साहस तक नहीं कर पाता था.[4] कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् में पतिव्रता स्त्री को श्रद्धा की प्रतिमूर्ति माना है.[5] आदित्यसेन के अफसढ़ प्रस्तर लेख में स्वामी के प्रति सत्यरूपेण पतिव्रता तथा उत्कृष्ट गुणों से तपस्या करने वाली पत्नी का उल्लेख है.[6]

पतिव्रता, कुलीना एवँ साध्वी पत्नियाँ अपनी प्रतिपक्षिणी सपत्नी को भी बहिन सदृश मानती थीं. पति की इच्छा को सर्वोपरि

---

1. विक्रमोर्वशीयम्, अँक 3, पृष्ठ 204, 206
   मृच्छकटिकम्, 1, पृष्ठ 8
2. ब्रम्हवैवर्तपुराण, 35, 119, 127
3. मृच्छकटिकम्, 10 पृष्ठ 335
4. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अँक 6, पृष्ठ 429
5. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 7. 29, पृष्ठ 145
6. फ्लीट, भारतीय अभिलेख सँग्रह, भाग 3, संख्या 42. 28
   आदित्यसेन का अफसढ़ प्रस्तर लेख, पृष्ठ 255

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मान पति की प्रिय को भी अपना प्रिय मानती थीं. सपत्नी के प्रति लेशमात्र भी ईर्ष्या भाव न रख कर बहिन कहकर संबोधित करती थीं.[1] चूँकि गुप्तकाल में बहुपत्नी प्रथा का प्रचलन था, अतः स्त्रियों से सपत्नी के प्रति सखी सदृश व्यवहार उपेक्षित था. सपत्नी की राजकीय स्थिति भी अच्छी थी. अपनी पत्नी होते हुए भी चन्द्रगुप्त ने ध्रुवदेवी से विवाह किया और ध्रुवदेवी की सँतान को सिंहासन भी प्राप्त हुआ.[2]

बड़े भाई की पत्नी मातृतुल्य थी. भाभी का भी अपने देवर पर पुत्रवत स्नेह रहता था. देवर अपनी भाभी को आदरपूर्वक "सती" कह कर सँबोधित करता एवँ चरणों में सिर रखकर प्रणाम करता था.[3] भाभी के प्रति आदर एवँ सम्मान के कारण ही चन्द्रगुप्त ने अपनी भाभी ध्रुवदेवी की शत्रु शकों से रक्षा की एवँ उसको सम्मान की रक्षा की.

पत्नी के पुत्रवधू के रूप में बहुत सारे कर्तव्य होते थे जो उसे विदाई के अवसर पर बताये जाते थे. उन कर्तव्यों का पालन करती हुई पत्नी पुत्रवधू के रूप में सच्ची गृहणी कहलाती थी.[4]

ऋग्वैदिक काल से ही "मातृत्व" प्रत्येक हिन्दू स्त्री का आदर्श रहा है. जाया {पत्नी} जननी के रूप में श्रेष्ठतम पद प्राप्त करती है. मातृत्व में ही स्त्री के जीवन का चरम विकास था.[5] तथा

---

1. मृच्छकटिकम्, अँक 10, पृष्ठ 336
2. ध्रुव स्वामिनी की बसाढ़ से प्राप्त मिट्टी की मुहर
3. रघुवँशम्, 14.58, 13.77
4. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 4.18
5. उपाध्याय, भगवतशरण, वीमेन इन ऋग्वेद, पृष्ठ 144

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

माता के रूप में नारी, गौरव की पराकाष्ठा पाती थी. "पृथ्वी," "अदिति", "सोम", इत्यादि ने स्नेह के कारण ही माता की उपमा पाई.[1] गुप्तकाल में भी माता को यही उच्च गौरव का स्थान प्राप्त था. मनु[2] ने माता का स्थान पिता एवं गुरू से भी ऊँचा माना है. उनके अनुसार कुटुम्ब की पूजनीय स्त्रियों में माता ही सर्वाधिक पूजनीय थी. माता को पृथ्वी की मूर्ति[3] मानते हुए वे कहते हैं:-

> "वे ही तीनों लोक हैं, वे ही तीनों आश्रम (ब्रम्हचर्य, गृहस्थ एवं वानप्रस्थाश्रम), वे ही तीनों वेद (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद) और वे ही तीनों अग्नि (गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, आवहनीयाग्नि) हैं."[4]

मनुस्मृति के समान ही विष्णुधर्मसूत्र[5] में मातृशक्ति के फल को बताते हुए, मनुष्य के तीन अति गुरूओं में से माता को एक बताया गया है.

नारी अपने मातृत्व के ही कारण श्रद्धा एवं आदर की पात्र थी. इसके प्रमाण हमें कालिदास के काव्यों में मिलते हैं. उनके काव्यों में नारी का आदर्शतम रूप उसके मातृत्व में निखरता है. अत: अपनी कृतियों में उन्होंने नारी को मातृत्व के गौरव से गौरवान्वित किया है. उनकी सभी नायिकायें गौरवमयी मातायें भी हैं. पार्वती, मेना, उर्वशी, शकुन्तला, धारिणी इत्यादि. कालिदास ने तो स्वच्छन्द विहारिणी, वारविलासिनी अप्सरा "उर्वसी" को भी मानवी प्रेयसी

---

1. उपाध्याय, भगवतशरण, वीमेन इन ऋग्वेद, पृष्ठ 144-45
   ऋग्वेद, 10. 18. 11
2. मनुस्मृति, 2. 145, 2. 133
3. मनुस्मृति, 2. 226
4. मनुस्मृति, 2. 230, 239
5. विष्णुधर्मसूत्र, 10. 31. 1-10

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बनाने के साथ ही उसे मातृत्व के उत्तरदायित्व से संयुक्त किया है. मर्यादा तो दुष्ट संतान की ही थी, फिर भी उसने "आयुष" को जन्म दिया और चुपचाप उसकी शिक्षा का प्रबंध किया. पति एवं पुत्र में से उसने मातृत्व ही सहर्ष स्वीकार किया.

स्मृति प्रदत्त नारी का देवत्व उससे यह आशा करता है कि वह कौमार्यावस्था की परिसमाप्ति पर अपने को मार्यात्व अथवा पत्नीत्व में परिणित कर दे, पत्नीत्व अथवा भार्यात्व की प्राप्ति वह जायत्व के लिये करती है, जायत्व में ही उसका मातृत्व निहित है. गुप्तकाल में स्त्रियाँ वीरपुत्र की माता बनने में अपने मातृत्व की पूर्णता समझती थीं.[1] पुत्रवती स्त्री का "स्वागतं पुत्रवत्यै" कहकर स्वागत किया जाता था तथा पुत्रवती होने का आशीर्वाद दिया जाता था.[2]

ऋग्वैदिक काल से गुप्तकाल तक माता पिता के समास में माता को ही प्रथम स्थान मिला है.[3] गुप्तकालीन अभिलेखों में तो इसके सबसे अधिक उदाहरण हैं.[4] वाक्व्यवहार में भी माता का ही नाम पहले आता था. माता का स्थान पिता से उच्च था. पुत्र पिता की अपेक्षाकृत माता के अधिक निकट था. ऐसे अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं जहाँ माता के गोत्र अथवा नाम से ही पुत्र संबोधित होता था.

---

1. मालविकाग्निमित्रम्, अंक 5, पृष्ठ 353, 5.16
2. रघुवंशम्, 14.71
   कुमारसंभवम्, 7.87
   अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अंक 5, पृष्ठ 65
3. ऋग्वेद, 4.6.7
4. फ्लीट, भाग 3, संख्या 19, पृष्ठ 110
   फ्लीट, भाग 3, 36.23 क, पृष्ठ 195
   फ्लीट, भाग 3, 37.23 ख, पृष्ठ 199
   फ्लीट, भाग 3, 40.26, पृष्ठ 238
   फ्लीट, भाग 3, 53,54, पृष्ठ 294
   फ्लीट, भाग 3, 60.37, पृष्ठ 322

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उर्वशी का पुत्र आयुष "और्वशेय" कह कर अपना परिचय देता है।[1] पाराशर स्मृति में महर्षि वेदव्यास के लिए "सत्यवती सुत" कहकर संबोधित किया गया है।[2] गुप्तकालीन अभिलेखों में वर्णित वंशावली में राजाओं की माताओं का ससम्मान वर्णन है. इतना ही नहीं माता के कुल का भी वर्णन है।[3] ऐसे एक नहीं अनेक उदाहरण हैं. गुप्तकालीन अभिलेखों में वर्णित वंशावली में गुप्त नरेशों की माताओं का नाम अवश्य दिया गया है. न केवल माता अपितु पितामही (पिता की माता) प्रपितामही (दादा की दादी) एवं एक और पीढ़ी की प्रपितामही का उल्लेख है अर्थात् माता को आदर देने के साथ ही पिता की माता एवं पितामह की माता को भी सम्मानपूर्ण स्थान था. यह उच्च स्थान किसी एक राजा के शासन काल में नहीं बल्कि पूरे गुप्तशासन काल अथवा अभिलेखों में मिलता है. इस प्रकार हम कह सकते हैं कि माता-पुत्र संबंध मधुर एवं सम्माननीय थे. माताओं के नाम के साथ ही "महादेवी" उपाधि का, जो कि एक सम्मानसूचक उपाधि मानी जाती थी, का प्रयोग किया गया है।[4] इसलिए माता के सामाजिक या

---

1. विक्रमोर्वशीयम्, अंक 5, पृष्ठ 253
2. पाराशर स्मृति, 1.2
3. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3, 1974
   गुप्तकालीन अधिकांश अभिलेखों में वर्णित वंशावली में माता, पितामही, प्रपितामही एवं एक और पीढ़ी की प्रपितामही का उल्लेख है.
4. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3, संख्या 1.1
   समुद्रगुप्त का इलाहाबाद मरणोपरांत लिखित प्रस्तर स्तंभ लेख, पृष्ठ 19
   चन्द्रगुप्त द्वितीय का मथुरा प्रस्तर अभिलेख, पृष्ठ 33, 35, संख्या 4.3
   कुमारगुप्त का बिलसड़ प्रस्तर स्तंभ लेख, पृष्ठ 57, संख्या 10.5
   समुद्रगुप्त का बिहार प्रस्तर स्तंभ अभिलेख, पृष्ठ 65, संख्या 12.6
   समुद्रगुप्त का भितरी प्रस्तर स्तंभ लेख, पृष्ठ 69, संख्या 13.7
   इत्यादि अनेक गुप्तकालीन अभिलेख हैं. माताओं के नाम के पहले सम्मानसूचक उपाधियों का प्रयोग किया गया है.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

या धार्मिक रूप से बहिष्कृत होते हुए भी पुत्र उसका साथ नहीं छोड़ता था।[1]

मातओं को सम्मान देने के साथ ही पुत्रों के कुछ और भी कर्तव्य उनके प्रति होते थे. पुत्र द्वारा माता पिता के पुण्य में वृद्धि हेतु कई धार्मिक एवं लोकोपकारी कार्य करने के उल्लेख मिलते हैं. बुधगुप्त के एरण प्रस्तर स्तंभ लेख में माता पिता की पुण्य वृद्धि के उद्देश्य से पुत्र द्वारा ध्वज स्तंभ के सँस्थापन का उल्लेख मिलता है.[2] माता पिता के पुण्य वृद्धि हेतु पुत्र द्वारा दान का वर्णन महाराज संक्षोभ के खोह ताम्राकित में है.[3] सूर्य मँदिर का निर्माण, प्रस्तर निर्मित मँदिर का निर्माण, गाँव का पुण्य दान तथा वराह प्रतिमा की स्थापना----ये सभी धार्मिक एवँ सार्वजनिक हित के कार्य, माता पिता की पुण्य वृद्धि हेतु अथवा उनको स्वर्ग प्राप्ति के लिए पुत्रों द्वारा किये जाते थे.[4]

भारतीय सँस्कृति में पितृतर्पण करने के कारण ही पुत्र की आवश्यकता एवँ महत्व है. पुत्र अपने माता पिता एवँ पूर्वजों को पिंडदान करता था. साथ ही अपनी स्वर्गीय माताओं के श्राद्ध आदि

---

1. अल्तेकर, अनन्तसदाशिव, <u>पोजीशन ऑफ वूमन इन हिंदू सिविलिजेशन</u>, 1956, पृष्ठ 101.
2. फ्लीट, <u>भारतीय अभिलेख सँग्रह</u>, भाग 3, 1974
3. बुधगुप्त का एरण प्रस्तर स्तम्भ, पृष्ठ 111, संख्या 19.12 क
3. वही महाराज सँक्षोभ का खोह ताम्राँकित अभिलेख, पृष्ठ 142, सं 25.25 ख
4. वही तोरमाण का एरण से प्राप्त प्रस्तर वराह अभिलेख, पृष्ठ 196, सं.36.23 क
   मिहिरकुल का ग्वालियर प्रस्तर लेख, पृष्ठ 200, संख्या 37.23 ख
   राजा महाजयराज का आरँग ताम्रपत्र लेख, पृष्ठ 239, संख्या 40.26
   आदित्यसेन का मँदार पहाड़ी से प्राप्त शिलालेख, पृष्ठ 262, 44-45 तथा पाद टिप्पणी, पृष्ठ 262-64
   महाराज पृथ्वीषेण के नचने की तलाई से प्राप्त लेख, पृष्ठ 294, 53-54. 33 क तथा ख
   समुद्रगुप्त का सँदिग्ध गया ताम्रपत्र लेख, पृष्ठ 322. संख्या 60.37

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सँस्कार भी करता था।[1]

पुत्र के कल्याणार्थ माताओं द्वारा व्रत आदि करने के उल्लेख गुप्तकालीन साहित्य से प्राप्त होते हैं. पुत्र को दीर्घायु होने की कामना से मातायें "पुत्रपिण्डपालन" नाम का व्रत करती थीं जिसमें अपनी सामर्थ्यानुसार ब्राम्हणों को दान दक्षिणा देती थीं.[2] पुत्र प्राप्ति की कामना से व्रत एवँ "पुत्रेष्ठि यज्ञ" करती थीं.[3] इतना ही नहीं गर्भवती माता को मातृत्व का यथावत् प्रशिक्षण भी दिया जाता था. सँतान के प्रति वात्सल्य प्रेम का यह प्रशिक्षण घड़ों द्वारा पेड़ों को सींचकर दिया जाता था जो पर्याप्त होने के साथ ही स्थायी भी होता था.[4] माता का हृदय सँतान (पुत्र एवँ पुत्री) के प्रति अलौकिक प्रेम से परिपूर्ण होता था. प्रेम का यह भँडार बिना किसी भेदभाव के कभी रिक्त नहीं होता था. अपनी सँतान को अधिकाधिक एवँ बारम्बार देखने की प्रबल अभिलाषा प्रत्येक माता को रहती थी. पुत्र को सामने देख मातृ हृदय की अधीरता[5] एवँपुत्री की विदाई के अवसर का वर्णन[6] अति महत्वपूर्ण है. "मेना", "धारिणी", "उर्वशी", इत्यादि हमारे सामने भारतीय समाज की एक जीवन्त मातृमूर्ति के रूप में आती हैं. ऐसी ही माताओं से मानवता गौरवान्वित होती है.

---

1. रघुवँशम्, 15.91
2. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अँक 2, पृष्ठ 39
   मालविकाग्निमित्रम्, अँक 5, पृष्ठ 339
3. रघुवंशम्, 14.78
4. कुमार सँम्भवम्, 5.14
5. विक्रमोर्वशीयम्, 5.12
   रघुवँशम्, 14.4
6. कुमारसंभवम्, 6.92, 7.23-25

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पारिवारिक एवं राजकीय उत्सवों में माता की उपस्थिति अनिवार्य थी. राम केवन से लौटने पर उनकी अगवानी माताओं द्वारा की गई, वे भी सर्वप्रथम अपनी माताओं से मिले एवं उनके चरणस्पर्श किया.[1] राम के राज्याभिषेक का आरंभ भी उनकी माताओं के हर्ष भरे आँसुओं से हुआ.[2] इसी प्रकार स्कन्दगुप्त के भितरी प्रस्तर स्तम्भ लेख में शत्रु हूणों को हराकर स्कन्दगुप्त "विजय श्री प्राप्त कर ली गई है" ऐसा चिल्लाते हुए अपनी अश्रुपूर्ण नेत्रों वाली माता के पास ऐसे आए जैसे शत्रुओं का वध कर कृष्ण अपनी माता देवकी के पास. निश्चित ही राजमाता का पद सम्मान का था.

यद्यपि पत्नी को अपने स्त्रीधन पर पूरा अधिकार था, किंतु वह स्वतंत्र रूप से पारिवारिक सम्पत्ति को व्यय करने का अधिकार नहीं रखती थी. स्त्रियाँ 2 रूप में (स्थितियों में) सम्पत्ति की अधिकारिणी बन सकती थीं :

1. विधवा, पति की सम्पत्ति की अधिकारिणी,
2. निःसंतान पुत्र की माता, उसकी मृत्युपरांत.

पति की सम्पत्ति में विधवा के अधिकार के संबंध में स्मृतियों में मत वैभिन्य है. यदि मृत्यु के समय पति संयुक्त परिवार का सदस्य था तो उन्होंने विधवा के जीवन निर्वाह का अधिकार स्वीकार किया है किंतु यदि वह अलग रहता था तो याज्ञवल्क्य और बृहस्पति ने जीवन काल तक पति के अंश पर उत्तराधिकार माना है किंतु विधवा के इस अधिकार को भी उस समय (गुप्तकाल तक) तक बहुत मान्यता प्राप्त न हो सकी थी.[3] मनु एवं नारद ने पुत्रहीन पुरुष की विधवा को

---

1. रघुवंशम्, 14.1
2. रघुवंशम्, 14.7, 14.13
3. गुप्त, परमेश्वरी लाल, गुप्त साम्राज्य, 1970, पृष्ठ 437-38

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तराधिकारी नहीं माना है. प्राचीनकाल में विधवा को दायाधिकार नहीं था. अभिज्ञानशाकुन्तलम् में संतानहीन विधवा की सम्पत्ति राजकोष में जाने का उल्लेख है किंतु याज्ञवल्क्य, विष्णु एवं कात्यायन ने पुत्रहीन पुरूष की विधवा को प्रथम उत्तराधिकारी माना है.[1] पिता की मृत्यु के बाद (यदि स्त्रीधन न मिला हो तो) विभाजन के समय माता भी पुत्रों के बराबर अँश ग्रहण करे.[2]

निःसँतान पुत्र की मृत्यु होने पर, यदि उसकी पत्नी या पिता न हो तो उसकी सम्पत्ति उसकी माता को मिलती थी. मनु ने निःसँतान पुत्र के धन का प्रथम अधिकारी उसकी माता को माना है:

> "सँतानहीन पुत्र के धन को माता लेवे तथा माता मर गई हो तो पिता की माता (दादी) लेवे."[3]

विष्णुधर्मसूत्र के अनुसार :

> "यदि किसी मृत अपुत्र व्यक्ति की न तो पत्नी हो, न सँतान और न पिता तो उसकी संपत्ति उसकी माता को मिलेगी."[4]

बृहस्पति के अनुसार :

> "यदि मृत व्यक्ति की न तो स्त्री हो न पुत्र, तो उसकी सम्पत्ति उसकी (मृत व्यक्ति की) माता लेगी. माता की अनुमति होने पर मृत व्यक्ति के भाई लेंगे."[5]

माता की प्रतिष्ठा एवँ उसके अधिकारों का आधार है उसने अपनी सँतान के लिए इतना कष्ट उठाया है जिसका बदला चुकाना एक

---

1. काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, 1980, पृष्ठ 328-29
   याज्ञवल्क्य स्मृति, 2.135
2. याज्ञवल्क्य स्मृति, व्यवहाराध्याय, 123
3. मनुस्मृति, 9.217
4. विष्णुधर्मसूत्र, 17.4-7
5. बृहस्पति स्मृति, 25.63

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकार से असंभव है. मनु ने इस संबंध में कहा है:

"मनुष्य के उत्पन्न होने में {गर्भधारण, प्रसववेदना, पालन, रक्षण, अध्यापन} माता पिता जिस कष्ट को सहते हैं, सैकड़ों वर्षों में भी उसका बदला नहीं चुकाया जा सकता."[1]

मनु ने ही सर्वाधिक विस्तार से माता की सेवा का महत्व, उस सेवा का लाभ एवं अनिवार्यता का वर्णन किया है. उनके अनुसार माता को पिता एवं आचार्य के साथ संतुष्ट करने पर ही व्यक्ति का तप पूरा होता है तथा इनकी सेवा करना ही श्रेष्ठ तप है.[2] इसके साथ ही मनु माता की हत्या, उससे विवाद एवं उसके परित्याग की निंदा करते हैं.[3] माता अपराधी होने पर भी त्याज्य नहीं होती, अपितु हमेशा रक्षणीय होती है.[4] अकारण माता का त्याग करने वाला दण्ड का भागी होता है.[5] तथा अत्यन्त निंदनीय होने के कारण श्राद्ध में निमंत्रित नहीं किया जाता है.[6]

इसी प्रकार का उद्धरण <u>याज्ञवल्क्य स्मृति</u> में मिलता है. उनके अनुसार अकारण माता का त्याग करने वाला श्राद्धकर्म में निषिद्ध होता है.[7] स्मृतिकार बृहस्पति ने <u>मनुस्मृति</u> का श्लोक दोहराते हुए माता का भरणपोषण न करने वाले पुत्र को दण्ड का विधान दिया है.[8]

---

1. <u>मनुस्मृति</u>, 2. 227
2. <u>वही</u>, 2. 228-29
3. <u>वही</u>, 4. 162, 180
4. <u>वही</u>, 8. 389
5. <u>वही</u>, 9. 4
6. <u>वही</u>, 3. 157
7. <u>याज्ञवल्क्य स्मृति</u>, 1. 224
8. <u>बृहस्पति स्मृति</u>, 24. 3

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुप्तकालीन अभिलेखों में माता का अनादर अथवा मातृघात किसी भी स्थिति में क्षम्य नहीं था. अभिलेखों में मातृघात को पाँच पापों[1] में गिना गया है. ये पाँच पाप हैं:

1. मातृहत्या,
2. पितृहत्या,
3. "अर्हत्" की हत्या,
4. किसी बुद्ध का रक्त बहाना,
5. सँघ-भेद.[2]

अतः स्पष्ट है कि स्मृतिकारों ने न केवल माता के प्रति कर्तव्य का विस्तृत वर्णन किया है अपितु उन कर्तव्यों के अनुसार आचरण करने में उदासीन लोगों को दण्ड का भी विधान प्रस्तुत किया है.

---

1. फ्लीट, <u>भारतीय अभिलेख सँग्रह</u>, भाग 3, 1974, संख्या 5.3 रव
   चन्द्रगुप्त द्वितीय का साँची प्रस्तर अभिलेख, पृष्ठ 42
2. फ्लीट, <u>भारतीय अभिलेख सँग्रह</u>, भाग 3, 1974
   पृष्ठ 42 की पाद टिप्पणी क्रमाँक 3 में
   पाँच पापों के लिए देखिए चाइल्डर्स के पालि शब्द कोष में "प चनन्तरियकम्मम" तथा "अभिठाणम" शब्द.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गर्भावस्था में नारी:

पत्नी गर्भिणी होने से पीली पड़ जाती थी. दुर्बलता के कारण आभूषणों का भार सहने में असमर्थ वह अपने बहुत से आभूषण उतार देती थी. उसका मुख लोध्र के फूल के समान वैसा ही पीला पड़ जाता था जैसे पौ फटते समय कुछ तारे शेष रह गये हों और चन्द्रमा पीला हो शोभाहीन दिखाई देता है.[1] मुख पके सरपत के समान पीला पड़ जाता था, किंतु नेत्रों में चमक आ जाती थी.[2] आँखें अलसाई रहना, मुँह लवली के पत्तों के समान पीला पड़ जाना तथा पयोधर का अग्र भाग पहले की अपेक्षा अधिक साँवला पड़ जाना ये गर्भ के लक्षण पति को इँगित करते थेकि उसकी पत्नी गर्भवती है.[3] पति पत्नी का आदर करता था उसे वैसी ही महत्ववाली समझता था जैसे अमूल्य रत्नों से भरी हुई पृथ्वी, अपने भीतर अग्नि रखने वाला शमी का वृक्ष या भीतर ही भीतर जल बहाने वाली सरस्वती नदी.[4] पति पत्नी के इस समय में दोहद की पूर्ति के लिए विशेष रूप से प्रयत्नशील रहता था.[5] गर्भावस्था में गर्भिणी बहुधा मिट्टी खाती थीं, अत: पत्नी के सोंधे मुख को पति बार बार सूँघकर भी अघाते नहीं थे, जो उनके लिए विशेष आल्हादकारी होता था.[6] गर्भावस्था के प्रारंभिक कष्ट व्यतीत हो जाने पर पत्नी का सौंदर्य वैसे ही पूर्ववत हो जाता था जैसे वसँत ऋतु में लताएँ पुराने पत्ते

---

1. रघुवँशम्, 3. 2
2. रघुवँशम्, 14. 26
3. विक्रमोर्वशीयम्, अँक 5. 8
   रघुवँशम्, 3. 8
   रघुवँशम्, 14. 27
4. रघुवंशम्, 3. 9
5. रघुवँशम्, 3. 6
   रघुवँशम्, 14. 26
6. रघुवंशम्, 3. 3

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गिराकर नये कोमल पत्तों से लदकर सुंदर लगने लगती हैं।[1]

पति गर्भवती स्त्री का "पुंसवन संस्कार" बड़े ठाट-बाट से करता था।[8] गर्भ के बढ़ने के साथ ही उसे उठने बैठने तक में इतनी अधिक कठिनाई होती थी कि पति के स्वागत में हाथ जोड़ने में थकावट से ही आँसू निकल आते थे, जिन्हें देख कर पति अति प्रसन्न होता था।[3]

पति पत्नि के सुख का इतना ध्यान रखता था कि बच्चों की चिकित्सा करने वाले बहुत से चतुर वैद्यों से (चिकित्सकों) वे उपाय करवाता था कि जिनसे गर्भिणी सुख से बच्चा जनती थी और गर्भ पुष्ट होता था।[4]

<u>विरहावस्था में पत्नी:</u>

पत्नी का श्रृंगार एवं सौंदर्य पति के लिए ही सार्थक होता था।[5] पत्नियाँ, पति के समीप रेशमी वस्त्र और विभिन्न आभूषणों से अलंकृत हो, अँगराग और सुगँधित द्रव्यों से अपने को सुवासित कर तथा मदिरा पान से उन्मत्त हो वे पति के सम्मुख जाती थीं तथा वीणा पर गीत बजा कर पति का मनोरँजन करती थीं।[6] संपूर्ण ऋतु सँहार में, सुगँधित पुष्प तथा विभिन्न प्रकार के आभूषणों से अलँकृत हो पति के हृदय को आकर्षित करने का वर्णन है।[7] उनका परम उद्देश्य पति के अनन्य प्रेम को प्राप्त करना ही था. अतः सौभाग्यवती

---

1. <u>रघुवँशम्</u>, 3.7
2. <u>रघुवँशम्</u>, 3.10
3. <u>रघुवँशम्</u>, 3.11
4. <u>रघुवंशम्</u>, 3.12
5. <u>कुमार सँभवम्</u>, 5.1
   <u>कुमार सँभवम्</u>, 7.22
6. <u>ऋतु संहार</u>, 1.3, 1.4
7. <u>ऋतु संहार</u>, 2.18

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्त्रियों को "पति का अखण्ड, अनन्य प्रेम प्राप्त करो" यह आर्शीवाद दिया जाता था।[1]

इसके विपरीत पति के विदेश गमन पर प्रोषितभर्तृका सभी प्रकार के श्रृंगार करना छोड़ देती है. विरहावस्था में नारी की मानसिक स्थिति का वर्णन कवि कालिदास ने अपने मेघदूतम् में किया है. चूंकि पति ही पत्नी के सौंदर्य और यौवन का भोक्ता होता है अत: उसके विदेश गमन पर श्रृंगार करने की इच्छा स्वत: ही हृदय में नहीं रहती थी. वह अपने वेशविन्यास से विरक्त हो अतीत की याद में डूबी रहती, एवं पति की याद कर उसके गुणों का मान कर गिनगिन कर दिन काटती थी.

पति के जाते ही विरहिणी आभूषण पहनाना छोड़ देती थी.[2] सदैव से पहनती आ रही मोतियों की करधनी त्याग देती थी.[3] श्रृंगार करना पूरी तरह से छोड़ देती थी. आँखों में अँजन न लगाने से उनकी आँखें रूखी हो जाती थीं तथा बहुत समय से मदिरापान न करने से भ्रूविलास भी संकुचित हो जाता था.[4] पति के विदेशगमन के दिन जो वेणी बाँधी जाती थी, वह प्रिय के आगमन पर ही खुलती थी, बल्कि स्वयं प्रिय ही उसे खोलता था. वह वेणी जिसमें फूल नहीं गुथे होते थे और जो लम्बे समय से बँधी होने के कारण कठिन शुष्क और विषम हो जाती थी ऐसी उलझी और बिखरी एकहरी वेणी को वह अपने बढ़े हुए नखों वाले हाथों से, अपने गालों पर से बार बार हटाती थी.[5] सँभवत: यह वेणी विशेष प्रकार की एवं एक ही

1. कुमारसंभवम्, 7. 28
   अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अँक 4, पृष्ठ 65
2. उत्तरमेघ, 35
3. उत्तरमेघ, 38
4. उत्तरमेघ, 37
5. उत्तरमेघदूतम्, 34

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की जाती थी। वेणी के बार बार कपोल पर आने से लगता है यह पीछे न होकर एक कान के ऊपर ही गूँथी जाती थी।[1] पति के विरह में पत्नी कोरे जल से ही अर्थात् बिना तेल लगाये और बिना सुगंधित किये जल से ही स्नान करती थी जिससे उसके रूखे और बिना सँवारे हुए केश गालों पर बिखरे रहते थे।[2] रूखीं अलके पुष्पों के श्रृँगार से विहीन पीले कपोलों पर फैली रहती थीं।[3] विरहिणी अपने बढ़े हुए नाखूनों को भी नहीं काटती थी।

विरहिणी पत्नी की पति के वियोग में पाले से भारी हुई कमलिनी के समान स्थिति हो जाती थी।[4] विछोह में रोते रोते उसकी आँखें सूज ता जाती थीं। गर्म सासों से उसके ओठों का रँग फीका पड़ जाता था तथा चिंता के कारण गालों पर हाथ रखने से और बालों के मुँह पर आ जाने से उसका अधूरा दिखाई देने वाला मुँह मेघ से ढ़के हुए चन्द्रमा के समान धुँधला और उदास दिखाई देता था।[5] विरह में पत्नी दिन रात भगवान से पति की मँगल कामना की प्रार्थना करती, देवताओं को पूजा (बलि) चढ़ाती, पति के विरही रूप का चित्र बनाती या पिंजड़े में बैठी मृदुभाषी सारिका (मैना) से बातें करती थी।[6] पत्नी अपने मलिन वस्त्रों को पहने ही गोद में वीणा लिए, ऊँचे स्वर में पति के यश भरे गीत गाती थी। पति की अचानक याद आते ही वीणा आँसुओं से भीग जाती थी और

---

1. उत्तरमेघ, 34, स्पर्श क्लिष्टा
   उत्तरमेघ, 30
2. उत्तरमेघ, 33
3. रघुवँशम्, 6.23
4. उत्तरमेघ, 23
5. उत्तरमेघ, 24
6. उत्तरमेघ, 25

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बेसुध हो वह स्वयं स्वरों के आरोह-अवरोह को भूल जाती थी।[1]

पति के जाने के दिन से ही वह नित्यप्रति देहली पर फूल रखती है. कभी कभी उन फूलों की ढेरी को फैलाकर गिनकर जानने का प्रयत्न करती है कि विरह के कितने दिन व्यतीत हो गये और प्रिय से मिलन को कितने दिन शेष रह गए.[2]

इस प्रकार उसका दिन तो किसी तरह व्यतीत हो जाता किंतु रात्रि बड़ी कष्टकर होती थी. वही रात्रि जो पहले जी भर कर संभोग कर क्षण भर के समान बिताती थी वही अब विछोह की चिंता में क्षीण सूने पलंग पर एक करवट लेटी ही गरम गरम आँसुओं को बहाकर बिताया करती थी.[3] धरती पर लेटी वह उनींदी अवस्था में निद्रा आने का प्रयत्न करती थी.[4] अतीत को याद करती हुई मन ही मन काल्पनिक संभोग के आनंद का रस लेती थी. विरह में स्त्रियाँ प्राय: ऐसी ही बातों में अपने दिन काटती हैं.[5] वह सोने का प्रयत्न ही इसीलिए करती थी कि किसी प्रकार स्वप्न में ही प्रिय से संभोग हो जाए, किंतु आँसुओं का अनवरत प्रवाह उसकी आँख भी नहीं लगने देता.[6]

विरहावस्था में पूर्वाभ्यास के कारण शीतलदायिनी वस्तुओं अर्थात् जालीओं से आने वाली चन्द्रमा की शीतल किरणों से वह अपने तप्त शरीर को शांत करना चाहती थी किंतु वे किरणें विरह के कारण

---

1. उत्तरमेघ, 26
2. उत्तरमेघ, 27
3. उत्तरमेघ, 31
4. उत्तरमेघ, 28
5. उत्तरमेघ, 27
6. उत्तरमेघ, 33

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अत्यँत दुख देने वाली होती थीं. अत: ऐसा देखकर विरहिणी आँसुओं से भरी अपनी आँखे बन्द कर लेती थी. जिसकी तुलना पति बदली के दिन धरती पर खिलने वाली उस अधखिली कमलिनी से करता है जो न खिली ही है और न बँद ही![1]

विरहिणी का सौंदर्य चित्र, मनोदशा का वर्णन <u>अभिज्ञान-शाकुन्तलम्</u> में मिलता है. पति के वियोग में गालों का मुरझा जाना, मुँह का सूख जाना, स्तनों की कठोरता का विलोप हो जाना, देह पीली पड़ जाना, कन्धों का झुक जाना ये सब उसके विरहजन्य असह्य दुख के बोधक हैं.[2] इष्टप्रवासजनित अबला जनों का दुख निःसंदेह दुःसह्य ही है.[3] परन्तु इस आशा से कि कभी न कभी मिलन होगा ही, वे विरह सहने में असमर्थ हो पाती हैं.[4]

विरहिणी स्त्री के उपचारार्थ, उशीर (खस) का अनुलेप, मृणाल और नलिनी के पत्तों का प्रयोग किया जाता था.[5] तथापि उद्विग्नता अधिक होने पर इससे कोई लाभ नहीं होता था.

विरहिणी शकुन्तला का चित्रण कर कवि ने विरहिणी स्त्री की मनोदशा और मनोभावों पर पर्याप्त प्रकाश डाला है. मलिन वस्त्र, व्रतादि के कारण शुष्क मुख और एक वेणी-----विरहिणी का सजीव स्वरूप अँकित कर देते हैं.[6]

<u>धर्मशास्त्र में प्रोषितभर्तृका:</u>

प्रोषितभर्तृका वह स्त्री कही जाती थी जो अपने विदेश गये

---

1. <u>उत्तरमेघ</u>, 32
2. <u>अभिज्ञानशाकुन्तलम्</u>, 3.8
3. <u>अभिज्ञानशाकुन्तलम्</u>, 4.3
4. <u>अभिज्ञानशाकुन्तलम्</u>, 4.16
5. <u>अभिज्ञानशाकुन्तलम्</u>, अँक 3, पृष्ठ 41
6. <u>अभिज्ञानशाकुन्तलम्</u>, 7.21

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पति द्वारा की गई व्यवस्था पर अपना भरण पोषण करती थी. ऐसी स्त्री परदेश गये पति द्वारा किये गये प्रबंध पर नियमपूर्वक जीवन यापन करती थी. पति की अनुपस्थिति में प्रोषित पति का अत्यन्त कठिन और सँघर्षपूर्ण जीवन व्यतीत करती थी. धर्मशास्त्रकारों ने ऐसी स्त्री के लिए कतिपय नियम निर्धारिए किए हैं. याज्ञवल्क्य के मत में प्रोषितभर्तृका को "क्रीड़ा, शरीर सँस्कार (श्रृँगार), समाजोत्सवदर्शन, हास्य और दूसरे के घर सवारी से जाना त्याग देना चाहिए"[1] विष्णु का भी यही विचार है कि "पति के प्रवास में रहने पर पत्नी को प्रसाधन, दूसरे के घर गमन, द्वारदेश पर खड़ी होना छोड़ देना चाहिए"[2] वृहस्पति का कथन है कि "पति के प्रोषित होने पर पत्नी को प्रसाधन (साजसज्जा), नृत्य, गीत, समाजोत्सवदर्शन, माँस और मद्य का सेवन नहीं करना चाहिए"[3] यही उनका आदर्श था.

<u>सपत्नी की स्थिति:</u>

वैदिक काल में सपत्नी अस्तित्व में थी. <u>ॠग्वेद</u>[4] एवँ <u>अथर्ववेद</u>[5] में पत्नी द्वारा सौत के प्रति पति प्रेम घटाने के मँत्र दिए गये हैं. इससे स्पष्ट है कि बहुपत्नीकता के फलस्वरूप कहीं सपत्नियों में आपस में प्रेमभाव तो कहीं सपत्नी की डाह दोनों ही स्थितियाँ उत्पन्न होती थीं.

चूँकि गुप्तकाल में बहुपत्नी प्रथा प्रचलित थी, अतः इन स्थितियों का होना स्वाभाविक ही था. राजाओं की एक से अधिक

---

1. <u>याज्ञवल्क्य स्मृति</u>, 1.84
2. <u>विष्णु का उद्धरण</u>, कृत्यकल्पतरु, व्यवहार काण्ड, पृष्ठ 632
3. <u>वृहस्पति स्मृति</u>, 25.13
4. <u>ॠग्वेद</u>, 10.145
5. <u>अथर्ववेद</u>, 3.18

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पत्नियों अथवा सपत्नियों की स्थिति में विद्यमान सहज विरोध, का वर्णन आदित्यसेन के अफ्सड़ प्रस्तर लेख में मिलता है।[1]

कालिदास के साहित्य में सपन्तियों में आपस में प्रेमभाव एवं डाह दोनों ही देखने को मिलती है. सपत्नियों के बीच यह डाह बड़ी स्वाभाविक, प्राकृतिक एवं प्राचीन है. सौत के साथ साथ अपने पति को देखकर पत्नियाँ खँडिता नायिका के समान आँसू बहातीं,[2] कभी बिस्तर के कोने पर बैठकर आँसू गिरातीं, तो कभी क्रोध में अपने आभूषणों को तोड़कर व रूठ कर पति के सामने बैठ जातीं.[3]

ठीक इसके विपरीत स्त्रियों का सपत्नियों के प्रति प्रेम का व्यवहार भी रहता था. उनसे सखी सदृश्य व्यवहार की अपेक्षा की जाती थी इसलिए पतिगृह जाते समय कन्या को गुरूजन शिक्षा देते थे कि अपनी सौतों से सखियों जैसा प्रेम रखना.[4] कुलीन एवं साध्वी स्त्रियाँ अपनी प्रतिपक्षिणी को बहिन जैसा ही मानती थीं तथा पति की इच्छा को ही सर्वोपरि मानती थीं, अतः निश्चित है जो पति का प्रिय होता था, उसे वे भी प्रेम करती थीं. ईर्ष्यारहित होकर पति की प्रिया को बहिन कहकर संबोधित एवं स्वागत करती थीं.[5] तथा आपस में परस्पर प्रेम भाव प्रदर्शित करती थीं.[6] पतिव्रता एवं

---

1. फ्लीट, <u>भारतीय अभिलेख संग्रह</u>, भाग 3, संख्या 42. 28
   आदित्यसेन का अफसढ़ प्रस्तर लेख, पृष्ठ 255
2. <u>रघुवंशम्</u>, 19. 21
3. <u>रघुवंशम्</u>, 19. 22
4. <u>अभिज्ञानशाकुन्तलम्</u>, 4. 18, पृष्ठ 75
5. <u>मृच्छकटिकम्</u>, अँक 10
6. <u>रघुवंशम्</u>, 10. 57
   <u>मालविकाग्निमित्रम्</u>, अँक 4, पृष्ठ 315

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुलीना स्त्रियाँ सपत्नी के पुत्रों को पुत्रवत् स्नेह करती थीं।[1]

एक से अधिक, नई नई रानियों के रनिवास में आने पर भी राजा रनिवास की अन्य रानियों के प्रेम का एकाएक अनादर करना ठीक नहीं समझता था।[2] अत: राजा प्रेमिका से प्रेम करने पर भी रानी को पहले जैसा ही प्यार करते थे।[3] अत: यह निश्चित है कि दूसरी पत्नियों या प्रेमिकाओं के होने से ये अपनी पहली रानियों के प्रेम को भी ठेस नहीं लगने देना चाहते थे।[4] बल्कि ऐसी स्थिति आने पर पहली पत्नी का और भी अधिक आदर किया करते थे।[5] कभी कभी ऐसी स्थिति भी आती होगी जब राजा सब रानियों को छोड़कर सिर्फ एक ही रानी में मस्त रहता होगा अर्थात् सब रानियों पर प्रेम एक सा नहीं होता होगा।[6] किंतु धार्मिक पर्व इत्यादि के दिन राजा सभी देवियों (रानियों) के साथ भगवती गंगा या जमुना के सँगम पर स्नान करने जाते थे।[7] कभी कभी राजा की पत्नी उसके दूसरे विवाह में भी सहयोगी होती थी।[8]

उपरोक्त परस्पर प्रेमभाव एवँ सौत की डाह होते हुए भी कालिदास ने तो सौत को खुशी खुशी स्वीकारना पतिव्रता स्त्रियों के गुणों में शामिल कर दिया है :

"पति को प्यार करने वाली स्त्रियाँ अपने लिए सौत लाकर भी पति का मन रखा करती हैं,

---

1. रघुवँशम्, 14.4.
   मालविकाग्निमित्रम्, अँक 5, पृष्ठ 354
2. मालविकाग्निमित्रम्, अँक 3, पृष्ठ 294
3. विक्रमोर्वशीयम्, अँक 2, पृष्ठ 190
4. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अँक 6, पृष्ठ 120
5. विक्रमोर्वशीयम्, अँक 3, पृष्ठ 204
6. मालविकाग्निमित्रम्, अँक 5, पृष्ठ 326
7. विक्रमोर्वशीयम्, अँक 5, पृष्ठ 239
8. विक्रमोर्वशीयम्, अँक 3, पृष्ठ 205

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देखिए समुद्र में जाने वाली नदियाँ अपने साथ साथ दूसरी नदियों का पानी भी समुद्र में पहुँचा देती हैं"।

विधवाओं की अवस्था:

गुप्तकाल में विधवाओं की अवस्था का स्पष्ट वर्णन नहीं मिलता। कवि कालिदास ने भी विधवाओं की अवस्था का विस्तृत वर्णन नहीं किया है, किंतु उनके द्वारा वर्णित "नववैधव्यदु:ख"[2] की असह्यनीयता से विधवाओं की दयनीय अवस्था का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। माँगलिक कार्यों में विधवाओं की उपस्थिति अशुभ समझी जाती थी। अत: विवाहादि शुभ अवसरों पर श्रृंगारादि सधवा स्त्रियाँ ही किया करती थीं[3] गुप्तकालीन अभिलेखों में जैसे कुमारगुप्त तथा बंधुवर्मन के मंदसौर प्रस्तर अभिलेख[4] तथा अनन्तवर्मन के नागार्जुनी पहाड़ी गुहालेख[5] में वैधव्य की दारूणपीड़ा से दुखी शत्रुओं की पत्नियों का वर्णन है। स्कंदगुप्त के भितरी प्रस्तर स्तम्भ लेख[6] में, पिता के स्वर्गवासी हो जाने पर, अश्रुपूर्ण नेत्रों वाली उसकी माता का वर्णन है। निश्चित ही स्कंदगुप्त की माता वैधव्य के दुख से दुखी होंगी[6]

गुप्तकाल में सती प्रथा अधिक प्रचार न होने के कारण

---

1. मालविकाग्निमित्रम्, अँक 5, पृष्ठ 357
2. कुमारसंभवम्, 4.1
   मालविकाग्निमित्रम्, अँक 5, पृष्ठ 350
3. कुमारसंभवम्, 7.6
4. फ्लीट, भारतीय अभिलेख सँग्रह, भाग 3, संख्या 18.11, पृष्ठ106
   कुमारगुप्त तथा बंधुवर्मन का मंदसौर प्रस्तर अभिलेख।
5. फ्लीट, भारतीय अभिलेख सँग्रह, भाग 3, संख्या 49.31-क, पृष्ठ281
   अनन्तवर्मन का नागार्जुनी पहाड़ी गुहालेख।
6. फ्लीट, भारतीय अभिलेख सँग्रह, भाग 3, संख्या 13.7
   स्कंदगुप्त का भितरी प्रस्तर स्तंभ लेख, पृष्ठ 70

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कालिदास ने अनेक स्थानों पर विधवाओं का उल्लेख किया है. मालविकाग्निमित्रम् की परिव्राजिका, अभिज्ञानशाकुन्तलम् में व्यापारी धनमित्र की पत्नी, अग्निवर्ण की मृत्यु के पश्चात् उसकी गर्भवती रानी का गद्दी पर बैठना, राम की विधवा मातायें इत्यादि, विधवाओं के प्रमाण हैं. पति की मृत्यु होने पर यदि विधवा गर्भवती है तो गर्भस्थ शिशु ही पिता के धन, सम्पत्ति और राज्य का उत्तराधिकारी हुआ करता था।[1]

ऐसा ही एक प्रमाण मिलता है दक्षिण के वाकाटक राजा द्वितीय रूद्रसेन की पत्नी तथा महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री प्रभावती गुप्तका, जो कि विधवा थी ने, अपने नाबालिग पुत्रों के कारण राज्य का सफल सँचालन किया था।[2]

अतः गुप्तकाल में विधवाओं की स्थिति समाज में उच्च थी. वे पत्नी, माता तथा राजमाता के रूप में पूर्ण सम्मान पाती थीं.

सामाजिक रीति रिवाज, आचार तथा व्यवहार:

भारतवर्ष में स्त्री एवँ पुरूष दोनों के प्रणाम करने का सँभवतः एक ही ढँग था. माता, पिता, गुरू एवँ आचार्य सभी के चरण स्पर्श अथवा चरणों पर मस्तक रख कर प्रणाम किया जाता था. पत्नी भी पति के साथ गुरू को प्रणाम करती थी. राजा दिलीप ने रानी सुदक्षिणा के साथ गुरू वशिष्ठ को चरण छूकर प्रणाम किया।[3] इसके साथ ही गुरू वशिष्ठ तथा उनकी पत्नी ने बड़े प्यार से उनका

---

1. रघुवँशम्, 19.55
   अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अँक 6, पृष्ठ 121
2. एपीग्रेफिया इण्डिका, भाग 15, पृष्ठ 41
3. रघुवँशम्, 1.57

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्वागत किया।[1] प्रणाम चरण स्पर्श करके अथवा सिर झुकाकर ही किया जाता था. वन से लौटकर पुत्रों द्वारा माताओं को इसी प्रकार प्रणाम किया गया था।[2] राजा भरत ने भी भाभी सीता के चरणों में मस्तक रखकर प्रणाम किया था।[3]

पुरूषों के अनुरूप स्त्रियाँ भी प्रणाम करती थीं. स्त्रियाँ कभी कभी अपना नाम लेकर भी चरण स्पर्श कर प्रणाम करती थीं. सीता ने "मैं ही पति को कष्ट देने वाली कुलक्षणा सीता हूँ" कहकर अपनी सासों को प्रणाम किया था।[4] कभी कभी पुत्र भी अपनी माता का नाम लेते हुए प्रणाम करते थे. उर्वशी पुत्र आयुस ने भी "उर्वशी का पुत्र आयुस आपको प्रणाम करता है" कहकर प्रणाम किया।[5] कुमारी स्त्रियाँ (युवतियाँ) अविवाहित होने पर भी चरण छूकर प्रणाम करती थीं लेकिन यह सिर्फ कुलदेवताओं तथा सखियों तक ही सीमित रहता था।[6]

जनसाधारण या प्रजा की महिलाओं ने रानी सीता को हाथ जोड़कर प्रणाम किया था।[7]

गुप्तकालीन स्त्रियाँ तपस्विजनों,[8] देवी देवताओं[9] और पिता[10] को प्रणाम करती थीं. शीलवती नारियाँ कभी कभी

---

1. रघुवंशम्, 1.57
2. रघुवंशम्, 14.2
3. रघुवंशम्, 13.77
4. रघुवंशम्, 14.5
5. विक्रमोर्वशीयम्, अंक 5, पृष्ठ 253
6. कुमारसंभवम्, 7.27
7. रघुवंशम्, 14.13
8. विक्रमोर्वशीयम्, अंक 5, पृष्ठ 248-49
9. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अंक 4, पेज 70
10. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अंक 4, पृष्ठ 68

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"वन्दे"[1] एवं "पादवन्दनं करोमि"[2] कहकर प्रणाम करती थीं. जो उनके शिष्टाचार को प्रकट करता था. इस प्रकार के शिष्टाचारों की शिक्षा बचपन से ही दी जाती थी.

पत्नियाँ अपने पति को "जयतु जयतु आर्यपुत्र:" कहकर प्रणाम करती थीं.[3] प्रणाम करने में प्रयुक्त संबोधनों में विभिन्नता होती थी जो एक वर्ग द्वारा विशिष्ट व्यक्ति के लिए संबोधित होते थे. जैसे, परिचारिका अपने स्वामी को "जयतु जयतु भर्ता"[4] "जयतु देवो भर्ता"[5] "विजयतां विजयतां देव:"[6] कहकर प्रणाम करती थीं. इसी प्रकार भृत्य वर्ग अपनी स्वामिनी को "जयतु भट्टिनी"[7] "जयतु जयतु भर्तृदारिके"[8] कहकर अपनी स्वामी प्रकट करता था.

साहित्य में भट्टिनी संबोधन रानी के लिए भृत्य वर्ग द्वारा है किंतु अभिलेखों में यह उपाधि के रूप में उसके पुत्र, पौत्र द्वारा प्रयोग में लाया गया है.

---

1. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अँक 4, पृष्ठ 68
2. विक्रमोर्वशीयम्, अँक 5, पृष्ठ 248
3. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अँक 7, पृष्ठ 141
   मालविकाग्निमित्रम्, अँक 5, पृष्ठ 344
   मालविकाग्निमित्रम्, अँक 4, पृष्ठ 318
4. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अँक 6, पृष्ठ 119
   मालविकाग्निमित्रम्, अँक 4, पृष्ठ 320
   मालविकाग्निमित्रम्, अँक 4, पृष्ठ 325, 327, अँक 5, पृष्ठ 342
5. मालविकाग्निमित्रम्, अँक 4, पृष्ठ 321
6. मालविकाग्निमित्रम्, अँक 5, पृष्ठ 340, 344, 352
7. मालविकाग्निमित्रम्, अँक 5, पृष्ठ 357, 346
8. मालविकाग्निमित्रम्, अँक 5, पृष्ठ 346

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्त्री सँबंधी शिष्टाचार:

स्त्रियों के प्रति आदरपूर्ण, सभ्य तथा शिष्ट भाषा का प्रयोग होता था उनके साथ अभद्र तथा अनुचित व्यवहार शीलवंचना मानी जाती थी. गुप्तकाल में भी स्त्री वर्ग के प्रति इन शिष्टाचारों के प्रयोग के उदाहरण मिलते हैं. उस समय शिष्ट लोग स्त्रियों के सामने से नीची आँख कर निकल जाते थे, उन्हें घूरते हुए नहीं.[1] इसी प्रकार जहाँ केवल स्त्रियाँ हो वहाँ पुरूष प्रवेश वर्जित होता था.[2] आभूषणवती स्त्री के आभूषणों की चोरी करना अपराध माना जाता था.[3]

स्त्रियों के लिए, स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त सँबोधन एवँ शिष्टाचार:

. रानी के प्रति:

रानियों के आगमन पर राजा उनका स्वागत करता था.[4] जो उनके प्रति आदर एवँ शिष्टाचार का द्योतक है. अभिलेखों में रानी के मातृगृह के लोगों अर्थात् पिता का नाम देना एक प्रकार से रानी को सम्मान प्रदर्शित करना है.[5] सम्मान देने की दृष्टि से राजा रानी को "देवी" कह कर सँबोधित करते थे.[6]

राजकुमारियाँ तो जन्मजात देवी की अधिकारिणी होती थीं.[7] राजा के साथ विवाहित होने पर स्त्रियाँ देवी शब्द प्राप्त

---

1. मृच्छकटिकम्, 8. 15
2. मृच्छकटिकम्, 4. 3
3. मृच्छकटिकम्, 4. 6
4. मालविकाग्निमित्रम्, अँक 1, पृष्ठ 273
5. गुप्तकालीन अधिकाँश अभिलेखों में ऐसा वर्णन मिलता है.
6. विक्रमोंवशीयम्, अँक 2, पृष्ठ 188
   मालविकाग्निमित्रम्, अँक 4, पृष्ठ 318, 321
   मालविकाग्निमित्रम्, अँक 8, पृष्ठ 344, 346
7. मालविकाग्निमित्रम्, अँक 5, पृष्ठ 356

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करती थीं।[1] पति के लिए "आर्यपुत्र" सम्बोधन रानियाँ एवं कुलीन वर्ग की स्त्रियाँ प्रयुक्त करती थीं।[2]

• <u>पत्नि के प्रति:</u>

अपनी पत्नी के प्रति पति का सभ्य तथा आदरपूर्ण व्यवहार होता था। वह पत्नी को "आर्ये" अथवा "आर्या" कह कर सम्बोधित करता था।[3] आदर देने की इच्छा से कभी कभी उसका नाम न लेकर उसके प्रदेश के नाम पर अथवा उसके पिता के वंश के नाम से उसे संबोधित करता था।[4]

पत्नी से मिलने पर पति ही सर्वप्रथम उसका स्वागत करता था।[5] इससे पत्नी को मिलने वाला सम्मान स्पष्ट होता है।[6] पत्नियाँ पति को "आर्यपुत्र" अथवा "आर्य" कहकर संबोधित करती थीं।[7]

• <u>दासी के प्रति:</u>

राजमहलों की दासियाँ, दासी होते हुए भी आदर प्राप्त करती थीं जो उनके प्रति प्रयोग में आये आदरसूचक सम्बोधनों से प्रकट होता है। नाट्याचार्य गणदास "भद्रे चिरंजीव" कहकर दासी वकुलावलिका के प्रणाम का उत्तर देते हैं।[8] इसी प्रकार दासियों के आपस के व्यवहार के संबोधन हला, सखी इत्यादि थे।[9] उच्च

---

1. <u>मालविकाग्निमित्रम्</u>, अंक 5, पृष्ठ 356
2. <u>मालविकाग्निमित्रम्</u>, अंक 1, पृष्ठ 273
3. <u>मृच्छकटिकम्</u>, अंक 1,
4. <u>अभिज्ञानशाकुन्तलम्</u>, अंक 1, पृष्ठ 4
5. <u>मृच्छकटिकम्</u>, अंक 1, पृष्ठ
6. <u>अभिज्ञानशाकुन्तलम्</u>, अंक 7, पृष्ठ 140-41
7. <u>अभिज्ञानशाकुन्तलम्</u>, अंक 1, पृष्ठ 4,
   <u>विक्रमोर्वशीयम्</u>, अंक 3, पृष्ठ 205
8. <u>मालविकाग्निमित्रम्</u>, अंक 1, पृष्ठ 265
9. <u>मालविकाग्निमित्रम्</u>, अंक 1. पृष्ठ 263

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वर्ग (कुलीन घरों) की स्त्रियों को उनके परिजन "आर्या" शब्द का प्रयोग करते थे।[1] रानियाँ भी अपनी दासियों को सखी कहती थीं।[2] दासियाँ अपनी स्वामिनी रानी को भट्टिनी,[3] महारानी तथा देवी के आदरसूचक सम्बोधनों से सम्बोधित करती थीं।

अन्य स्त्री साधारण के प्रति:

गुप्तकाल में साधारणतया सभी स्त्रियों से आदरपूर्वक एवँ आदरसूचक सँबोधनों का व्यवहार किया जाता था।

तपस्विनी कन्याओं को राजा "अत्रभवती" से संबोधित करता था।[4] विद्वता सूचक "पँडित" उपाधि या सम्बोधन विदुषी स्त्रियों के नाम के आगे आदर देने की दृष्टि से लगाया जाता था।[5] साधारण जनता ही नहीं अपितु राजा भी उनको सम्माननीय स्थान प्रदान करते थे।[6]

तापसी स्त्रियों का राजा "भगवति अभिवादये"[7] तथा "अम्ब अभिवादये"[8] कह कर अभिवादन करता था। वृद्धा तापसियों मातृतुल्य थीं जिन्हें विशेष आदर की दृष्टि से देखा जाता था।

प्रौढ़ा स्त्रियाँ "आर्या" जैसे सम्मानसूचक शब्दों से संबोधित होती थीं, भले ही वह उच्च वर्ग की स्त्री हो अथवा वेश्या

---

1. मृच्छकटिकम्, अँक 3,
2. मालविकाग्निमित्रम्, अँक 3, पृष्ठ 306
3. मालविकाग्निमित्रम्, अँक 3, पृष्ठ 306, 308
   मालविकाग्निमित्रम्, अँक 1, पृष्ठ 262-64
4. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अँक 5, पृष्ठ
5. मालविकाग्निमित्रम्, अँक 1, पृष्ठ 272
6. मालविकाग्निमित्रम्, अँक 1, पृष्ठ 273-74
7. मालविकाग्निमित्रम्, अँक 1. पृष्ठ 273
8. विक्रमोर्वशीयम्, अँक 5, पृष्ठ 245

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की माँ.[1] उन्हें सभी वर्गों के व्यक्ति प्रणाम करते थे. आर्य चारुदत्त भी वसंतसेना की माँ को "आर्ये अभिवादये" कहकर प्रणाम करता है.[2]

वयोवृद्ध स्त्रियाँ कम उम्र की स्त्रियों को पुत्रीवत् मानते हुए "वत्से" कह कर सम्बोधित करती थीं.[3] समवयस्का कन्यायें परस्पर एक दूसरे को हला या सखी कहती थीं.[4] अथवा नाम भी लेती थीं.[5] कम अवस्था वाली मुनि कन्यायें प्रौढ़ा तपस्विनियों का "आर्या" कहकर आदर करती थीं.[6] सखी के पिता को भी सखियाँ पिता मानती थीं. कण्व को तात सम्बोधन शकुन्तला के साथ साथ अनुसूया और प्रियंवदा भी करती हैं.[7] इसके साथ तपस्विनियों को विभिन्न व्यक्तियों द्वारा अम्बे, भगवती इत्यादि सम्बोधनों से संबोधित किया जाता था.[8]

आशीर्वाद देने की प्रणाली:

प्रणाम के प्रत्युत्तर में आशीर्वाद देने का ढंग अवस्था एवं पद के अनुरूप होता था. परिव्राजिका द्वारा राजा को प्रणाम करने पर राजा "भगवति अभिवादये" कह कर उत्तर देता है.[9] रानी के प्रणाम के उत्तर में वह "स्वागतं देव्यै" कहता था. पति का

---

1. मृच्छकटिकम्, अँक 9, पृष्ठ
2. मृच्छकटिकम्, अँक 9, पृष्ठ
3. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अँक 5, पृष्ठ 88, अँक 4, पृष्ठ 65
4. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अँक 1, पृष्ठ 12
5. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अँक 1, पृष्ठ 13
6. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अँक 1, पृष्ठ 21
7. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अँक 1, पृष्ठ 18
8. मालविकाग्निमित्रम्, अँक 1, पृष्ठ 273
9. मालविकाग्निमित्रम्, अँक 1, पृष्ठ 273

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रेम प्राप्त करना स्त्री का सौभाग्य माना जाता था. अतः सदा स्त्रियों को "अखण्डितं प्रेम लभस्व पत्युः"[1] "भर्तुर्बहुमान सूचकं महादेवी शब्दं लभस्व"[2] एवं "वत्से भर्तुर्बहुमता भव"[3] कह कर आशीर्वाद दिया जाता था. "वीर प्रसविनी भव"[4] "सुतं त्वमपि सम्राजं"[5] अर्थात् वीरपुत्र की माता बनो तथा चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त करो इत्यादि कहकर आशीष दिया जाता था.

स्त्रियाँ प्रणाम के उत्तर में बहुत दिनों तक जिओ (सौम्य चिराय जीव) चिरंजीवी हो[6] कहती थीं. तापसी बच्चों को "नन्दय पितरम्" कह कर आशीष देती हैं[7] (पिता का जी सुखी करो) माता भी अपने पुत्र को "पिता की सेवा करने वाले बनो" यह आशीर्वाद देती थी. उर्वशी पुत्र आयु को "वत्स पितरमाराधयिता भव"[8] एवं "पितुराराधको भव"[9] कह कर आशीर्वाद देती हैं.

विदाई के अवसर पर वन देवियाँ भी पुत्री को आशीर्वाद देती थीं.[10] तथा "तुम्हारा मार्ग कल्याणकारी हो"[6] कह

1. कुमार संभवम्, 7. 28
2. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अंक 4, पृष्ठ 65
3. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अंक 4. 7
4. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अंक 4, पृष्ठ 65
5. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अंक 4, पृष्ठ 68
6. रघुवंशम्, 14. 59,
7. विक्रमोर्वशीयम्, अंक 5, पृष्ठ 247
8. विक्रमोर्वशीयम्, अंक 5, पृष्ठ 248
9. विक्रमोर्वशीयम्, अंक 5, पृष्ठ 255
10. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अंक 4, पृष्ठ 70
11. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अंक 4, पृष्ठ 10-11

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर कोयलों ने बिदा दी, बड़ों से भी एवं सखियों से गले मिलकर शकुन्तला बिदाई लेती है।[1]

---

1. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अंक 4, पृष्ठ 79

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भिक्षुणी :

गुप्तकाल के पूर्व से ही स्त्रियाँ, पुरूषों की भाँति, बौद्ध मठों में भिक्षुणी के वेश में रहती थीं. वे गृहस्थी को त्याग कर सन्यास ग्रहण कर लेती थीं. ये सिर मुड़ाये तथा गेरूआ वस्त्र पहने रहती थीं.[1] इनका उल्लेख हमें कालिदास के ग्रँथों में भी मिलता है.[2] प्रारँभिक काल में ये भिक्षुणियाँ सदाचारी एवँ लोकोपकार की भावना से ओतप्रोत हो अपना जीवन व्यतीत करती थीं, किंतु क्रमशः इनके आचरण की शिथिलता ही बौद्ध सँघ में व्यभिचार फैलाने का कारण बनी.

गुप्तकालीन बौद्ध अभिलेख में हमें जयभट्टा नामक शाक्य भिक्षुणी द्वारा यशोविहार नामक विहार के लिए प्रतिमा दान का उल्लेख मिलता है.[3]

भगवान बुद्ध के त्रय स्त्रिंश स्वर्ग से अवतरण की अनुश्रुति का विस्तार से वर्णन करते हुए चीनी यात्री फाहियान् लिखता है "यहाँ एक सहस्त्र भिक्षु और भिक्षुणियाँ रहती और हीनयान तथा महायान मतों का अध्ययन करती थीं.[4] इसी प्रकार ह्वेनसाँग के अनुसार सम्राट हर्षवर्धन की बहिन राज्यश्री सम्मितीय मत की भिक्षुणी बन गई थीं.[5]

---

1. उपाध्याय, वासुदेव, गुप्त साम्राज्य का इतिहास, भाग 1, 1969, पृष्ठ 248.
2. मालविकाग्निमित्रम्, 1.14
3. फ्लीट, भारतीय अभिलेख सँग्रह, भाग 3, सँख्या 70.40 प.
4. दत्त, नलिनाथ एवँ कृष्णदत्त बाजपेयी, उत्तर प्रदेश में बौद्ध धर्म का विकास, 1956, पृष्ठ 237
5. दत्त, नलिनाथ एवँ कृष्णदत्त बाजपेयी, उत्तर प्रदेश में बौद्ध धर्म का विकास, 1956, पृष्ठ 237

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फाहियान् ने श्रावस्ती में भिक्षुणी शिष्या विशाखा द्वारा बनवाये गये "भिगार मातु पासाद" नामक विहार का स्थान देखा[1] तथा बुद्ध की वही समृद्ध शिष्या विशाखा द्वारा "पूर्वाराम" नामक बौद्ध संघाराम का निर्माण कराया[2]. इसी प्रकार ह्वेनसाँग ने साकेत में महाप्रजापति गौतमी के नाम अर्पित एक भिक्षुणी बिहार के खण्डहर देखे.[3]

गणिका:

गुप्तकालीन समाज में एक प्रकार की सार्वजनिक स्त्रियाँ थीं जो गणिका के नाम से पुकारी जाती थीं.[4] वात्स्यायन के कामसूत्र के अनुसार गणिकायें अपनी लुभावनी अदाओं, गुणों तथा शिष्टाचार के कारण उच्च सामाजिक स्थिति पाती थीं.[5] वे अपनी सुंदरता, वाक्पटुता, धन एवं विलास के लिए प्रसिद्ध थीं. धनी एवं विलासी तथा राजपरिवारों में गणिका को सम्मान प्राप्त था किंतु गुप्तकालीन धार्मिक समाज में इन्हें स्थान प्राप्त था. स्मृतिकार मनु ने शठ ब्राम्हणों के गण तथा गणिका को एक ही स्थान देते हुए इनके अन्न को त्याज्य बतलाया है.[6]

---

1. दत्त, नलिनाथ एवं कृष्णदत्त बाजपेयी, उत्तरप्रदेश में बौद्ध धर्म का विकास, 1956, पृष्ठ 241-42
2. दत्त, नलिनाथ एवं कृष्णदत्त बाजपेयी, उत्तरप्रदेश में बौद्ध धर्म का विकास, 1956, पृष्ठ 271
3. दत्त, नलिनाथ एवं कृष्णदत्त बाजपेयी, उत्तरप्रदेश में बौद्ध धर्म का विकास, 1956, पृष्ठ
4. उपाध्याय, वासुदेव, गुप्त साम्राज्य का इतिहास, भाग 2, पृष्ठ 248.
5. चकलदार, सोशल लाइफ इन एंशेंट इंडिया, पृष्ठ 199 कामसूत्र, 1.3.20-21
6. मनुस्मृति, 4.209

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वात्स्यायन के अनुसार जिस गंधर्वशाला में गणिकाओं की कन्याओं को शिक्षा दी जाती थी, वहाँ सभ्य घरों की लड़कियों को पढ़ना निषेध था.

तत्कालीन संस्कृत साहित्य में गणिका को समाज में विशेष सम्मान प्राप्त होने के क प्रमाण मिलते हैं. मृच्छकटिकम् की गणिका वसंतसेना एक उच्च श्रेणी की वेश्या थी, जिसने स्वेच्छा से अपना पेशा छोड़ कर तथा सामाजिक अत्याचार सहते हुए भी अपनी मनपसंद गुणवान पुरूष के साथ रहना पसंद किया था. इसके बाद भी वेश्यायें लोभ एवँ चरित्रहीनता के लिए जनता में बदनाम थीं, उनकी शिक्षा का उद्देश्य पुरूषों को मुर्ख बनाकर पैसा हड़पना था. इसके विपरीत गणिका वसंतसेना के उत्तम चरित्र से प्रभावित होकर आर्य चारूदत्त जैसा सभ्य पुरूष वसंतसेना से विवाह करने का उद्यत था. इतना ही नहीं वसंतसेना के लिए वह अपनी सारी सम्पत्ति तथा सुख सामग्री त्यागने में भी सँकोच नहीं करता था.[1] पेशे से गणिका होते हुए भी वसंतसेना सच्चा प्रेम करना जानती थी. चारूदत्त के घर से उसके समस्त आभूषणों की चोरी हो जाने पर भी उसके दिल में बदले की भावना ने जन्म नहीं लिया, कालिदास के साहित्य में वेश्या वर्णन के पर्याप्त प्रमाण हैं.

गुप्तकालीन वेश्यायें ऐश्वर्य सम्पन्ना होती थीं. वसन्तसेना का वैभवशाली महल, सोने की सीढ़ियाँ, रत्नजटित गृह के फलक तथा स्फटिक मणि निर्मित खिड़कियों से सज्जित था.[2] वे

1. मृच्छकटिकम्, अँक 3
2. मृच्छकटिकम्, अँक 3-4

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपनी संपत्ति केवल भोगविलास में ही खर्च नहीं करती थीं अपितु सार्वजनिक हित के कार्यों तथा दान में देती थीं.[1]

वेश्याओं के साथ ही बड़े बड़े मँदिरों में देवपूजा के लिए कुमारियाँ {देवदासियाँ} रखने की प्रथा प्रचलित थी. कालिदास ने उज्जयनि के महाकाल मँदिर में तथा ह्वेनसाँग ने भी सूर्यदेवता के मंदिर में भी ऐसी कुमारियाँ {देवदासियाँ} रखने का वर्णन किया है.[2] इसके अतिरिक्त गुप्तयुग में उत्सवों, पुत्रजन्मोत्सव, विवाहोत्सव, राज्याभिषेक इत्यादि राजकीय उत्सव के अवसरों पर ये वेश्यायें मनोरँजन के लिए आवश्यक रूप से बुलाई जाती थीं, जो नृत्य, सँगीत एवँ गायन कला में निपुण होती थीं. उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि विचारशील एवँ गुणवान गणिकाओं का गुप्तकालीन समाज में सम्माननीय स्थान था.

---

1. चकलदार, सोशल लाइफ इन एश्येंट इंडिया, पृष्ठ 199
2. मेघदूतम्, 1. 36-38
   मजुमदार, रमेशचंद {संपादक} श्रेण्ययुग, 1984, पृष्ठ 635

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय : 3

गुप्तकाल में कर्मकाण्डीय संस्कारों का स्वरूप.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सँस्कार का अभिप्राय बाह्य धार्मिक क्रियाओं, अनुशासित अनुष्ठान, व्यर्थ आडम्बर, कोरा कर्मकाण्ड, राज्य द्वारा निर्दिष्ट चलनों , औपचारिकताओं तथा अनुशासिक व्यवहार न होकर, सँस्कार का अर्थ धार्मिक विधि विधान अथवा कृत्य जो आंतरिक तथा आत्मिक सौंदर्य का बाह्य तथा दृश्य प्रतीक माना जाता है।[1] सँस्कृत साहित्य में सँस्कार का प्रयोग शिक्षा, सँस्कृति, प्रशिक्षण[2], सौजन्य, पूर्णता, व्याकरण सँबंधी शुद्धि,[3] सँस्करण, परिष्करण[4], शोभा, आभूषण[5], प्रभाव, स्वरूप, स्वभाव, क्रिया, छाप[6], स्मरण शक्ति, स्मरण शक्ति

---

1. आक्सफोर्ड डिक्शनरी, "सिरीमनी" तथा "सेक्रामेण्ड" शब्द पाण्डेय, राजबली, हिन्दू सँस्कार, 1978, पृष्ठ 17
2. रघुवँशम्, 3. 35
3. कुमारसँभवम्, 1. 28
4. रघुवँशम्, 3. 18
5. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 7. 33
6. हितोपदेश, 1–8

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर पड़ने वाला प्रभाव,[7] शुद्धि क्रिया, धार्मिक विधि विधान[8], अभिषेक, विचार, भावना, धारणा, कार्य का परिणाम, क्रिया की विशेषता आदि अर्थों में हुआ है।[9]

अतः संस्कार का अर्थ, शुद्धि की धार्मिक क्रियाओं तथा व्यक्ति के दैहिक मानसिक और बौद्धिक परिष्कार के लिए किए जाने वाले अनुष्ठानों में से है, जिनसे वह समाज का पूर्ण विकसित सदस्य हो सके. किंतु हिन्दू संस्कारों में अनेक आरंभिक विचार, धार्मिक विधि विधान, उनके सहवर्ती नियम तथा अनुष्ठान भी समाविष्ट हैं, जिनका उद्देश्य केवल औपचारिक दैहिक संस्कार ही न होकर संस्कार्य व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का परिष्कार, शुद्धि और पूर्णता भी है. साधारणतया यह समझा जाता था कि सविधि संस्कारों के अनुष्ठान से संस्कृत व्यक्ति में विलक्षण तथा अवर्णनीय गुणों का प्रादुर्भाव हो जाता है. संस्कार शब्द का प्रयोग इस सामूहिक अर्थ में होता था।[4]

मनुष्य की निःसंदेह शुद्धि एवं योग्यता के लिए संस्कार की आवश्यकता प्रतिपादित करते हुए स्मृतिकार मनु ने कहा है:

> "द्विजातियों में माता पिता के बीज एवं गर्भ से उत्पन्न पाप, गर्भावस्था में किए गए होम के द्वारा, जन्म के पश्चात् जातकर्म, चौल मूँज मेखला धारण करके दूर किया जाता है. वेदाध्ययन, व्रत, होम, त्रैविधव्रत, पूजा, संतानोत्पत्ति, पँचमहायज्ञों, तथा वैदिक यज्ञों से मानव शरीर ब्रम्हप्राप्ति के योग्य बनाया जाता है".[5]

---

1. संस्कारजन्य ज्ञानं स्मृतिः, —तर्कसंग्रह.
2. मनुस्मृति, 2.26
3. रघुवंशम्, 1.20
4. पाण्डेय, राजबली, हिंदू संस्कार, 1978, पृष्ठ 18-19
5. मनुस्मृति, 2.27-28

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

याज्ञवल्क्य के मत से सँस्कार करने से बीज-गर्भ से उत्तपन्न दोष मिट जाते हैं.[1] आपस्तम्ब धर्मसूत्र में सँस्कार का विशद वर्णन करते हुए कहा गया है:

"इस जन्म की बहुत अधिक महत्ता है, क्योंकि माता पिता तो केवल शरीर को जन्म देते हैं, पर सँस्कारों से आत्मा की शुद्धि और विकास होता है.[2]

पाराशर स्मृति में यही बात उपमा द्वारा अभिव्यक्त की गई है:

"जिस प्रकार नाना प्रकार के रँगों के प्रयोग से चित्रकला का सौंदर्य प्रादुर्भूत हो उठता है उसी प्रकार ब्राम्हण विधि पूर्वक किए सँस्कारों के द्वारा उज्जवलतर हो जाता है."[3]

अत: हम कह सकते हैं कि सँस्कार शब्द से सर्वत्र शरीर की शुद्धि, पवित्रता एवँ रमणीयता की ध्वनि निकलती है. कवि कालिदास ने भी सँस्कार को इसी पवित्रता, शुद्धता एवँ रमणीयता के अर्थ में लिया है.[4] सँस्कार का वर्णन अभिज्ञानशाकुन्तलम् में निम्न प्रकार मिलता है:

"जिस प्रकार खराद में से निकली हुई मणि क्षीण होने पर भी अलौकिक प्रभायुक्त हो जाती है उसी प्रकार सँस्कार हो जाने से व्यक्ति तेजस्वी हो जाता है."[5]

काणे ने सँस्कार के अनेक उद्देश्य बताये हैं : उपनयन जैसे सँस्कारों का सँबंध था आध्यात्मिक एवँ साँस्कृतिक उद्देश्यों से, उनसे गुण सम्पन्न व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित होता था, वेदाध्ययन का मार्ग खुलता था तथा अनेक प्रकार की सुविधायें प्राप्त होती थीं. उनका

---

1. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1. 13
2. आपस्तम्बधर्मसूत्र, 1. 1. 16-18
3. पाराशर स्मृति, 8. 19
4. रघुवँशम्, 15. 75, 3. 18
5. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 6. 6

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मनोवैज्ञानिक महत्व भी था. सँस्कार करने वाला व्यक्ति एक नये जीवन का आरँभ करता था, जिसके लिए वह नियमों के पालन के लिए प्रतिश्रुत होता था. नामकरण, अन्नप्राशन एवँ निष्क्रमण ऐसे सँस्कारों का केवल लौकिक महत्व था, उनसे केवल प्यार, स्नेह एवँ उत्सवों की प्रधानता मात्र झलकती है. गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन ऐसे सँस्कारों का महत्व रहस्यात्मक एवँ प्रतीकात्मक था. विवाह सँस्कार का महत्व था दो व्यक्तियों को आत्म निग्रह, आत्म त्याग एवँ परस्पर सहयोग की भूमि पर लाकर समाज को चलते जाने देना.

सँक्षेप में सँस्कारों के चार उद्देश्य थे : 1. पवित्रता, 2. उत्सव के प्रति अभिरूचि, 3. सामाजिकता, 4. वैदिक अध्ययन, कर्तव्य आदि की उपयोगिता.

गृह्यसूत्रों[1] में वर्णित है कि जातकर्म से लेकर चूड़ाकर्म तक सभी सँस्कार लड़कों के समान लड़कियों के भी होना चाहिए. अँतर यही है कि लड़कियों के सँस्कार मँत्ररहित होना चाहिए. विष्णुधर्मसूत्र[2] के अनुसार विवाह सँस्कार को छोड़कर {जातकर्म आदि} सँस्कार मँत्रों के बिना होने चाहिए. स्मृतिकार मनु के विचार:

> "शरीर की शुद्धि के लिए उचित समय, क्रम और विधि से पवित्र मँत्रों का उच्चारण किए बिना ही स्त्रियों के सँस्कार होने चाहिए"[3]

क्योंकि स्त्रियाँ असत्य {अन्ततम} की भाँति अशुभ हैं.[4] याज्ञवल्क्य का भी यही विचार है :

---

1. आश्वलायन गृह्यसूत्र, 1.15, 12, 1.16.6, 1.17, 18
   शांखायन गृह्यसूत्र, 1.28, 22
   गोभिल गृह्यसूत्र, 2.9.22-23
2. एता एव क्रिया, स्त्रीणाममन्त्रका: तासां समन्त्रको विवाह:
   --विष्णुधर्मसूत्र, 27, 13-14, जीवानन्द 1, पेज 111
3. अमंत्रिका तु कार्येयं स्त्रीणामावृद शेषत:
   संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकालं यथाक्रमम् --मनुस्मृति, 2.66
4. मनुस्मृति, 9.18

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"विवाह को छोड़कर कन्याओं के सँस्कारों में मँत्रों का उच्चारण नहीं होना चाहिए"।[1]

मनु[2] का भी यही मत है किंतु तीन उच्च वर्णों के नारी वर्ग के विवाह में वैदिक मँत्रों का प्रयोग होता है।[3]

गुप्तकालीन अभिलेखों एवँ मुद्राओं में किसी भी सँस्कार से सँबंधित कोई वर्णन नहीं प्राप्त होता न ही नारी से सँबंधित किसी सँस्कार का ही वर्णन. तत्कालीन साहित्य में भी नारी सँस्कारों का कोई स्पष्ट वर्णन नहीं मिलता. मात्र स्मृतियों में ही इस विषय पर कुछ वर्णन प्राप्त होता है.

सँस्कारों की सँख्या के विषय में धर्मशास्त्री एकमत नहीं हैं. सँस्कारों की भिन्न भिन्न सँख्याओं के होते हुए भी अधिकतम सँस्कार 16 ही माने गए हैं जिन्हें "षोडश सँस्कार" कहते हैं. ये सोलह सँस्कार निम्न लिखित हैं:

1. गर्भाधान,	2. पुसंवन,	3. सीमन्तोन्नयन,
4. विष्णुवलि,	5. जातकर्म,	6. नामकरण,
7. निष्क्रमण,	8. अन्नप्राशन,	9. चौल,
10. उपनयन,	11. वेदव्रत चतुष्टय,	12. समावर्तन,
13. विवाह,		

गर्भाधान:

गर्भाधान सँस्कार का वर्णन हमें सबसे पहले अथर्ववेद[4] में मिलता है. आश्वलायनगृहसूत्र[5] एवँ बृहदारण्यकोपनिषद्[6] में "गर्भाधान"

1. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.13
2. मनुस्मृति, 2.67
3. काणे, पाण्डुरंग वामन, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 179
4. अथर्ववेद, 5.25
5. आश्वलायन गृहसूत्र, 1.13.1
6. काणे, पी. वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 181
   बृहदारण्यकोपनिषद्, 6.4.21

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"पुसंवन" एवँ "अन्वलोभन" का वर्णन है.

वैखानस[1] ने "ऋतु संगमन" और "गर्भाधान" को अलग अलग माना है तथा "ऋतु संगमन" को "निषेक" भी कहा है.[2] किंतु मनुस्मृति[3], याज्ञवल्क्यस्मृति[4] एवँ विष्णुधर्मसूत्र[5] में "गर्भाधान" के लिए ही "निषेक" शब्द का प्रयोग हुआ है. याज्ञवल्क्य[6] ने "गर्भाधानमृतौ" का प्रयोग किया है. निश्चित ही "ऋतु" से तात्पर्य "ऋतुसंगमन" होगा. पारस्कर[7], आपस्तम्ब[8] एवँ साँख्यायन[9] गृहसूत्रों में "गर्भाधान" का उल्लेख न होकर "चतुर्थीकर्म" या "चतुर्थीहोम" का विस्तृत वर्णन दिया गया है. विवाह की तीन रात्रियों के पश्चात्, चौथी रात्रि को पति अग्नि में अग्नि, वायु, सूर्य आदि को आहुति देकर मँत्रों आदि को पढ़ते हुए अंत में :

"आ ते योनिं गर्भ एतु पुमान बाण इवेषुधिम्,
आ वीरो त्र जायतां पुत्रस्ते दशमास्य:.
संभोग करे.[10]

---

1. काणे, पी.वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पेज 182.
2. वैखानस गृहसूत्र, 6.2 : ऋतौ संगमनं निषेकमित्याहु:
3. निषेकादिश्मशानान्तो पुण्यै र्निषेकादिर्द्विजन्मनां.
   --मनुस्मृति, 2.16, 26
4. निषेकाद्या: श्मशानान्तास्तेषां
   --याज्ञवल्क्यस्मृति, 2.10
5. विष्णुधर्मसूत्र, 2.3
6. याज्ञवल्क्यस्मृति, 2.11 --गर्भाधानमृतौ पुंस:
7. पारस्कर गृह्यसूत्र, 1.11
8. आपस्तम्ब गृह्यसूत्र, 8.10-11
9. शांखायन गृह्यसूत्र, 1.18-19
10. अथर्ववेद, 3.23.2

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गृह्यसूत्र रचनाकारों ने चतुर्थीकर्म को वैवाहिक संस्कार का ही एक अंग माना. संभवत: बड़ी अवस्था में विवाह होने के कारण विवाह के साथ ही यह संस्कार भी साथ ही कर देते होंगे किंतु बाद में कम उम्र में विवाह होने के कारण यह संस्कार विवाह के साथ न करके बाद में करते होंगे. अत: इसका पृथक नाम गर्भाधान संस्कार रखा.

कवि कालिदास ने भी अपनी रचनाओं में इस संस्कार के संकेत दिए हैं.[1] कालिदास ने गर्भाधान के लिए "निषेक"[2] शब्द का भी प्रयोग किया है तथा गर्भाधान की शुद्धता एवं पवित्रता का वर्णन किया है.[3]

मनु[4] एवं याज्ञवल्क्य[5] ने गर्भाधान का उपयुक्त समय, नक्षत्र एवं अन्य नियमों का विस्तृत वर्णन किया है.

---

1. नरपति कुलभूत्यै गर्भमाधत्त राज्ञी
   गुरुभिरभिनिविष्टं लोकपालानुभावै:.
   ताभिर्गर्भ: प्रजाभूत्यै दध्रे देवांशसंभव:
   सौरीभिरिव नाडीभिरमृताख्याभिरम्मय:
   --<u>रघुवंशम्</u>, 2.75, 10.58
2. यौषित्सु तद्वीर्यनिषेकभूमि: सैव क्षमेत्यात्मभुवोपदिष्टम्.
   --<u>कुमारसंभवम्</u>, 3.16
3. सा भूधराणामधिपेन हिमवता समाधिमत्यां उदपादि भव्या,
   सम्यक प्रयोगादपरिक्षतायां नीताविवोत्साहगुणेन सम्पत.
   --<u>कुमारसंभवम्</u>, 1.22
4. <u>मनुस्मृति</u>, 3.46, 3.47, 4.128, 3.48
5. <u>याज्ञवल्क्यस्मृति</u>, 1.79, 1.80

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गर्भाधान सँस्कार, गर्भ (भ्रूण स्थित बच्चे) का सँस्कार है अथवा स्त्री का ? इस प्रश्न पर मतभेद है. गौतम[1] एवँ मनु[2] इसे गर्भ (गर्भस्थित बालक) का सँस्कार मानते हैं. याज्ञवल्क्य[3] के टीकाकार विश्वरूप के अनुसार :

> "सीमन्तोन्नयन सँस्कार को छोड़ कर सभी सँस्कार बार बार सम्पादित होते हैं, क्योंकि वे गर्भ के सँस्कार हैं, किंतु सीमन्तोन्नयन सँस्कार केवल एक बार सम्पादित होता है, क्योंकि यह स्त्री से सम्बंधित है".

<u>पुंसवन :</u>

"पुंसवन" शब्द सर्वप्रथम "अथर्ववेद"[4] में आया है. "गर्भाधान सँस्कार" के बाद "पुंसवन सँस्कार" पुत्रोत्पत्ति के लिए किया जाता है. हिन्दू धर्म में पितृऋण से मुक्ति दिलाने वाला पुत्र ही होता है, अत: पुत्र का बहुत अधिक महत्व सर्वत्र एवँ स्वाभाविक ही है. कवि कालिदास ने भी अपने काव्यों <u>रघुवँशम्</u>[5] <u>अभिज्ञानशाकुन्तलम्</u>[6] एवँ <u>विक्रमोर्वशीयम्</u>[7] में अनेक स्थानों पर पुंसवन सँस्कार का महत्व स्वीकार

---

1. गौतम, 8.24
2. <u>मनुस्मृति</u>, 1.16
3. प्रतिगर्भं चापसीमन्तोन्नयदा: प्रवर्तन्ते तस्य स्त्री संस्कारत्वात्.
   —<u>याज्ञवल्क्य</u>, 1.11, विश्वरूप टीका
4. शमीमश्वत्थ आरूढ़स्तत्र पुसंवनं कृतम्.
   —<u>अथर्ववेद</u>, 6.11.1
5. नूनं मत्त: परं वँश्या: पिंडविच्छेददर्शिन:
   न प्रकामभुज: श्राद्धस्तवधासंग्रहतत्परा :
   —<u>रघुवँशम्</u>, 1.66
   न चोपलेभे बाम्रणनिर्मोक्ष साधनम्, —10.2
   यथाक्रमं पुंसवनादिका: क्रिया. — 3.10
6. देव इदानीमेव साकेतस्य श्रेष्ठिनो दुहिता निवृत्तपुंसवना जाया स्य श्रूयते.
   —<u>अभिज्ञानशाकुन्तलम्</u>, अँक 6, पेज 121
7. संतानत्वं वर्जयित्वा न किमप्यस्य हीनम्,
   —<u>विक्रमोर्वशीयम्</u>, अँक 5, पेज 239

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किया है एवँ "पुंसवन सँस्कार" का नाम उल्लेख किया है.

आपस्तम्ब गृह्यसूत्र, हिरण्यकेशिगृह्यसूत्र भारद्वाज इत्यादि सभी गृह्यसूत्रों में पुंसवन सँस्कार का वर्णन है.[1] याज्ञवल्क्य स्मृति[2], वृहस्पति स्मृति एवँ विष्णु धर्मसूत्र ने भी पुंसवन सँस्कार का उल्लेख किया है.[3]

पुंसवन सँस्कार के अनुष्ठान के लिए उचित समय का विचार स्मृतियों में किया गया है. याज्ञवल्क्य[4] एवँ मनु के अनुसार यह सँस्कार गर्भाशय में गर्भ के गतिशील होने के पूर्व सम्पन्न करना चाहिए. वृहस्पति[5] गर्भ के स्पन्दनशील होने के पश्चात् ही इस कृत्य के लिए उचित काल मानते हैं. विष्णु धर्मसूत्र में भी यही कहा गया है.[6]

काणे के अनुसार पुंसवन सँस्कार में धार्मिक, प्रतीकात्मक एवँ औषधि सम्बन्धी तत्व पाये जाते हैं.[7]

इस सँस्कार के अनुष्ठान का समय गर्भ के द्वितीय मास से आठवें मास तक माना गया है. सँभवतः विभिन्न स्त्रियों में गर्भधारण के चिन्ह विभिन्न कालों में व्यक्त होने के कारण ऐसी व्यवस्था होगी.

---

1. काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पेज 188
2. गर्भाधान मृतौ पुंसः सवनं स्पन्दनात्पुरा,
   --याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.11
3. काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पेज 188
4. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.11-गर्भाधानमृतौ पुंसःसवनं स्पन्दनात्पुरा.
5. सवनं स्पन्दिते शिशौ.
   --वीरमित्रोदय सँस्कार प्रकाश, भाग 1 पेज 166.
6. काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पेज 188
7. काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पेज 188

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पारिवारिक प्रथायें एवँ कुलाचार भी इस विविधता के लिए उत्तरदायी थे. बृहस्पति[1] ने इस भेद को इस प्रकार बताया है:

> "प्रथम गर्भ में यह सँस्कार तीसरे मास में करना चाहिए किंतु उस स्त्री के विषय में जो इसके पूर्व भी संतति का प्रजनन कर चुकी हो, यह कृत्य गर्भ के चौथे, छटे अथवा आठवें मास में भी संपन्न किया जा सकता है."

परवर्ती गर्भों की अपेक्षा पहली बार गर्भधारण होने पर उसके चिन्ह कुछ पूर्व ही स्पष्ट हो जाते हैं. इसी कारण द्वितीयादि गर्भों में अपेक्षाकृत परवर्तीकाल विहित किया गया है.

यह कृत्य स्पष्टतया पुंसवन का एक भाग है किन्तु आश्वलायन-गृहसूत्र में इन दोनों को पृथक पृथक माना है. वैजवाप गृह्यसूत्र के अनुसार दोनों अर्थात् "अनवलोभन" और "पुंसवन एक साथ ही एक दिन द्वितीय अथवा तृतीय मास में मना लेने चाहिए.[2]

जैसा अनवलोभन अथवा गर्भरक्षण नाम से स्वतः सिद्ध एवँ स्पष्ट है, गर्भ नष्ट न हो, अथवा गर्भपात न हो, इसलिए इसकी उपयोगिता है.

कवि कालिदास ने अनवलोभन या गर्भरक्षण का प्रत्यक्ष रूप से प्रयोग नहीं किया है किंतु अप्रत्यक्ष रूप से इसके सँकेत अवश्य हैं. रघुवंशम् में "पुंसवनादिकाः" शब्द में "आदि" शब्द के प्रयोग में इस सँस्कार के सम्पन्न होने का भी सँकेत है.[3] इन दोनों संस्कारों के करने का तात्पर्य यह है कि इनके करने से गर्भपात नहीं होता.

---

1. तृतीये मासि कर्तव्यं गृष्टेरन्यत्र शोभनम्,
   गृष्टेश्चतुर्थे मासे तु षष्ठे मासे थवा ष्टमे.
   --वीरमित्रोदय संस्कार प्रकाश, भाग 1, पेज 168
2. काणे, पी.वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 188
3. यथाक्रमं पुंसवनादिकाः क्रियाः धृतश्च धीरः सदृशीर्व्यधत्त सः
   --रघुवंशम्, 3.10

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आश्वलायन गृह्यसूत्र[1] में इसकी विधि दी गई है.

दूर्वारस का स्त्री की नाक में डालना, उसके हृदय को स्पर्श करना एवं देवताओं को भ्रूण की रक्षा के लिए प्रसन्न करना आदि कर्म इस सँस्कार के विशिष्ट लक्षण हैं.[2]

State Museum Library 7226 Lucknow

सीमन्तोन्नयन सँस्कार :

"सीमन्तोन्नयन" का शाब्दिक अर्थ है-----"ऊपर की ओर माँग निकालना". यह गर्भवती स्त्री का एक सँस्कार है जिसमें पति अपनी पत्नी के बालों का उन्नयन करता है. वीरमित्रोदय सँस्कार प्रकाश में सीमन्तोन्नयन की परिभाषा दी गई है.[3] इस सँस्कार का वर्णन हमें वैदिक साहित्य में नहीं मिलता है. डॉ. राजबली पाण्डेय[4] के अनुसार :

> "इस सँस्कार का प्रयोजन आँशिक रूप से विश्वासमूलक तथा व्यावहारिक था. जनसाधारण का यह विश्वास था कि गर्भिणी को अमँगलकारी शक्तियाँ ग्रस्त कर सकती हैं, अत: उनके निराकरण के लिये विशेष सँस्कार की आवश्यकता प्रतीत हुई".

प्राय: समस्त गृह्यसूत्रों में "सीमन्तोन्नयन सँस्कार" का विस्तृत वर्णन किया गया है.[5] याज्ञवल्क्य स्मृति में इस सँस्कार को

---

1. आश्वलायन गृह्यसूत्र, 1.13.5-7
2. काणे, पी.वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 189
3. वीरमित्रोदय सँस्कार प्रकाश, भाग 1, पृष्ठ 172
4. पाण्डेय, राजबली, हिंदु सँस्कार, 1978, पृष्ठ 78
5. आश्वलायन गृह्यसूत्र, 1.14.1-9
   शाखांयन गृह्यसूत्र, 1.22
   हिरण्यकेशीय गृह्यसूत्र, 2.1
   बौधायन गृह्यसूत्र, 1.10
   पारस्कर गृह्यसूत्र, 1.15
   वैखानस गृह्यसूत्र, 3.12

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

केवल "सीमन्त" सँस्कार कहा गया है।[1]

यह सँस्कार कब सम्पन्न किया जाए, इस विषय में मतैक्य नहीं है. फिर भी अधिकाँश गृह्यसूत्रों काठक गृह्य सूत्र में तृतीय मास में, मानव गृह्यसूत्र में तृतीय, षष्ठ अथवा अष्टम मास में, आश्वलायन ने चौथे, आपस्तम्ब एवँ हिरण्यकेशी ने क्रम से चौथे एवँ छठे तथा पारस्कर याज्ञवल्क्य तथा विष्णुधर्मसूत्र ने छठे, आठवें मास को इस सँस्कार के लिए उपयुक्त समय माना है.[2]

काणे के अनुसार "सीमन्तोन्नयन सँस्कार" का सामाजिक एवँ औत्सविक महत्व है, क्योंकि यह केवल गर्भिणी को प्रसन्न रखने के लिए है. इस सँस्कार में कच्चे फल और दर्भ से पत्नी की माँग ऊपर को निकालना, गले में माला बाँधना, उसको मुदग और घी से युक्त उबला चाँवल देना, वीणा-गायिनों से गाने को कहना, उत्सवप्रियता का ही परिचायक है. कच्चे फलों या उदुम्बरफल प्रयोग करे.[3]

"सीमन्तोन्नयन सँस्कार" को कुछ विद्वान गर्भ का सँस्कार मानते हैं. ऐसे व्यक्तियों का कहना है कि प्रत्येक गर्भ पर यह सँस्कार होना चाहिए. विष्णुधर्मसूत्र इसे स्त्री का सँस्कार मानते हुए कहते हैं कि यह केवल प्रथम गर्भ पर ही होना चाहिए.[4] आपस्तम्ब, बौधायन, भारद्वाज एवँ पारस्कर भी इसे केवल एक बार प्रथम गर्भाधान के समय

---

1. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.11
2. काणे, पी.बी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पेज 190
3. काणे, पी.बी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पेज 190
4. सीमन्तोन्नयनं कर्म तत् स्त्री संस्कार इष्यते
   केचिद् गर्भस्य सँस्कारो गर्भे गर्भे प्रयुंजते.
   --विष्णुधर्मसूत्र, स्मृतिचन्द्रिका, 1.17

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मनाने का उल्लेख करते हैं. कालान्तर में यह सँस्कार समाप्तप्राय हो गया, क्योंकि मनु ने इसका नाम तक नहीं लिया है किंतु याज्ञवल्क्य ने इसका उल्लेख किया है.[1]

विष्णुबलि सँस्कार :

वशिष्ठ धर्मसूत्र के अनुसार यह कृत्य गर्भाधान के आठवें मास में जब शुक्ल पक्ष के चन्द्र के साथ श्रवण, रोहिणी या पुरूष नक्षत्र हो और तिथियाँ हों दूसरी, सातवीं या द्वादशी तब किया जाना चाहिए. भ्रूण की बाधाओं को दूर करने तथा सन्तानोत्पत्ति में रक्षार्थ यह कृत्य किया जाता है. यह प्रत्येक गर्भाधान पर आवश्यक था. इसके एक दिन पूर्व नान्दी श्राद्ध की व्यवस्था की जाती थी. इसके पश्चात् अग्निहोम आज्यभाग तक किया जाता है. अग्नि के दक्षिण कमल या स्वस्तिक के चिन्ह के आकार का एक अन्य स्थण्डिल बनाया जाता है, जिस पर विष्णु को पके हुए चाँवल की (घृत के साथ) 64 आहुतियाँ दी जाती हैं. कुछ लोग विष्णु को न देकर अग्नि को ही आहुति देते हैं. इसमें मँत्रों का उच्चारण होता है.[2]

सोष्यन्तीकर्म सँस्कार :

सोष्यन्तीकर्म सँस्कार का अर्थ है-----"एक ऐसी नारी के लिए सँस्कार जो अभी बच्चा जनने वाली हो". अर्थात् बच्चा जनने वाली नारी के लिए सँस्कार या कृत्य.[3]

ऋग्वेद[4] में इस सँस्कार के प्रारँभिक सँकेत मिलते हैं अतः यह

---

1. काणे, पी. बी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पेज 190
2. काणे, पी. बी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पेज 190-91
3. काणे, पी. बी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पेज 191
4. ऋग्वेद, 5. 78. 7-9

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अति प्राचीन सँस्कार है. आपस्तम्ब गृह्यसूत्र,[1] हिरण्यकेशिगृह्यसूत्र[2] भारद्वाज गृह्यसूत्र[3] गोभिलगृह्यसूत्र[4] खादिरगृह्यसूत्र[5] पारस्करगृह्यसूत्र[6] एवँ काठक गृह्यसूत्र[7] में भी इस सँस्कार का वर्णन है. वास्तविक जातकर्म के पहले शीघ्र प्रसव के लिए सोष्यन्ती कर्म अथवा क्षिप्रप्रसवन नामक विधि सम्पन्न की जाती थी. गृह्यसूत्रों में कुछ कुछ अन्तर से विस्तार पूर्वक इसका वर्णन मिलता है.

जातकर्म सँस्कार :

जातकर्म सँस्कार अत्यंत प्राचीन सँस्कार है.[8] बालक के जन्म लेने के पश्चात् यह पहला सँस्कार है. तैत्तिरीय सँहिता एवँ बृहदारण्यकोपनिषद् से स्पष्ट है कि यह सँस्कार पुत्र के उत्पन्न होने पर ही मनाया जाता था.[9]

---

1. आपस्तम्ब गृह्यसूत्र, 14. 13-15
2. हिरण्यकेशि गृह्यसूत्र, 2. 2. 8, 2. 3. 1
3. भारद्वाज गृह्यसूत्र, 1. 22
4. गोभिल गृह्यसूत्र, 2. 7. 12-14
5. खादिर गृह्यसूत्र, 2. 2. 29-30
6. पारस्कर गृह्यसूत्र, 1. 16
7. काठक गृह्यसूत्र, 33. 1-3
8. काणे, पी. वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 192
9. तैत्तिरीय सँहिता, 2. 2. 5. 3-4
   बृहदारण्यकोपनिषद्, 1. 5. 2
   काणे, पी. वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 192

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जातकर्म संस्कार के विषय में मनु[1] का कहना है:

आश्वलायन् के अनुसार:[2]

> "माँ और धातृ के अतिरिक्त किसी अन्य के स्पर्श करने के पूर्व यह सँस्कार हो जाना चाहिए. पारस्कर ने भी मनु की ही बात का समर्थन किया है:[3]

जातकर्म सँस्कार की विधि के बारे में विद्वानों के भिन्न भिन्न मत हैं. __बृहदारण्यकोपनिषद्__[4] के अनुसार :

> "जब पुत्र की उत्पत्ति होती है, तब उसे सर्वप्रथम विमलीकृत मक्खन चटाना चाहिए".

__बृहदारण्यकोपनिषद्__[5] के विस्तृत विवरण से इस सँस्कार के कई अँगों का सँकेत मिलता है:

1. मँत्र पढ़ते हुए धृतयुक्त दही की अग्नि में आहुति देना,
2. बच्चे के कान में तीन बार "वाक्" शब्द कहना,
3. सोने की छोटी चम्मच से धृत, दही और शहद बच्चे को चटाना,
4. बच्चे का एक नाम रखना, जो गुप्त नाम रहे,
5. माता के स्तनों के पास ले जाना,
6. माता को मँत्रों द्वारा सम्बोधित करना.

गृह्यसूत्रों में जातकर्म सँस्कार के विभिन्न भागों का वर्णन मिलता है :[6]

1. होम,	2. मेधाजनन,
2. आयुष्य,	4. अंसाभिमर्शन,
5. मात्रभिमन्त्रण,	6. पँचब्राम्हण स्थापन,

---

1. प्रज्ञाभिवर्धनात् पुंसो जातकर्म विधीयते. --__मनुस्मृति__, 2. 29
2. __आश्वलायन गृह्यसूत्र__, 1. 15. 2
3. __पारस्कर गृह्यसूत्र__, 1. 16
4. तस्मात् कुमारं जातं धृतं वै वाग्रे प्रतिलेहयन्तिस्तनं वा अनुधापयन्ति. --__बृहदारण्यकोपनिषद्__, 1. 5. 2
5. __बृहदारण्यकोपनिषद्__, 1. 5. 2, 6. 4. 24-28
6. काणे, पी. वी., __धर्मशास्त्र का इतिहास__, भाग 1, पृष्ठ 193-94

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

7. स्तन प्रतिधान या स्तनप्रदाय,   8. नामकरण,

9. देशाभिमन्त्रण {देशाभिमदर्शन}   10. भूतप्रेतों को भगाना.

जातकर्म सँस्कार से सँबंधित 2 बातें अति महत्वपूर्ण हैं. पहली बात तो यह है कि आश्वलायन एवँ शांखायन जैसे कुछ विद्वान जन्मदिव या जातकर्म के समय ही नाम रख देते हैं तथा पृथक "नामकरण संस्कार" का विधान नहीं करते. सांख्यायन ने अवश्य ही जन्म के 10 वें दिन "व्यावहारिक नाम" देने का कहा है.[1]

दूसरी बात यह है कि जातकर्म सँस्कार के बहुत से विभाग हैं अथवा बहुत छोटे छोटे सँस्कारों-----नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन इत्यादि को मिलाकर "जातकर्म सँस्कार" कहते हैं.[2]

कवि कालिदास ने अपने काव्यों में अनेक स्थानों पर जातकर्म सँस्कार का उल्लेख किया है.[3] <u>रघुवँशम्</u> की टीका में मल्लिनाथ ने जातकर्मादय:[4] शब्द का प्रयोग कर प्रमाणित किया है कि "जातकर्म सँस्कार" पैदा होने या जन्म के समय का ही सँस्कार विशेष नहीं है अपितु यह नामकरण निष्क्रमण, अन्नप्राशन इत्यादि छोटे छोटे सँस्कारों की समष्टि मात्र है. विक्रमोंवशीयम् नाटक में भी आदि शब्द का प्रयोग है.[5]

जातकर्म सँस्कार का महत्व स्वीकारते हुए कालिदास कहते हैं:

> "जिस प्रकार शोणोल्लिखित मणि अपूर्ण तेज हो जाती है, उसी प्रकार जातकर्मादि सँस्कारों के पश्चात्

---

1. <u>शांख्यायन</u>, 1.24.6
2. <u>रघुवँशम्</u>, 3.18
3. <u>रघुवँशम्</u>, 10.78

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिलीपपुत्र पहले से कहीं अधिक शोभा सम्पन्न हो गए।[1]

इतना ही नहीं जातकर्म के विभिन्न अँग "स्तन प्रदाय", "होमादि" के पश्चात् बच्चों को स्तन के निकट ले जाना, इनका भी अप्रत्यक्ष रूप से कालिदास ने वर्णन किया है।[2]

स्मृतिकार याज्ञवल्क्य ने भी जन्म के पश्चात् जातकर्म सँस्कार करने का उल्लेख किया है।[3]

"वधिवद" शब्द का प्रयोग इस बात का प्रमाण है कि जातकर्म सँस्कार जैसा प्राचीन ग्रँथों में मनाया जाता था वैसा ही गुप्त काल में भी।[4] गुप्तकालीन समाज में जन्मोत्सव धूमधाम से मनाया जाता था. समृद्ध घरों में वेश्याओं के नृत्य होते थे. राजपरिवार में भी मनोहर बाजे बजते एवँ वेश्याओं के नृत्य इत्यादि होते थे।[5] इतना ही नहीं राजकुमारों के जातकर्म सँस्कार के समय राज्य के सभी कैदियों को भी मुक्त कर दिया जाता था।[6]

गुप्तकाल में पुत्री का जातकर्म सँस्कार धूमधाम से मनाया जाता था. इसका उल्लेख हमें कहीं नहीं मिलता. गुप्तकालीन साहित्य में पुत्र प्राप्ति पर ही "जातकर्म सँस्कार" सम्पादित होने के उल्लेख हैं. निस्संदेह धूमधाम एवँ महत्व भी पुत्र के जातकर्म सँस्कार को ही दिया जाता था. मनु[7] एवँ याज्ञवल्क्य[8] के अनुसार जातकर्म से लेकर चूड़ा-

---

1. रघुवँशम्, 3. 18
2. रघुवँशम्, 12. 78
3. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1. 11
4. रघुवँशम्, 14. 75, 3. 18, 10. 78, 14. 75, 15. 31. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, पेज 147, 139, विक्रम, अँक 5
5. रघुवँशम्, 3. 19
6. रघुवँशम्, 3. 20
7. अमन्त्रिका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषत:
   संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकालं यथाक्रमम. —मनुस्मृति, 2. 66
8. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1. 13

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर्म तक सभी सँस्कार लड़कों के समान ही लड़कियों के भी होना चाहिए किंतु मँत्र रहित.

<u>नामकरण सँस्कार:</u>

नामकरण सँस्कार का महत्व बताते हुए <u>बृहस्पति</u>[1] कहते हैं:

> "नाम अखिल व्यवहार का हेतु है, वह शुभावह कर्मों में भाग्य का हेतु है. नाम से ही मनुष्य कीर्ति प्राप्त करता है, अतः नामकरण अत्यन्त प्रशस्त है".

"नामकरण सँस्कार" शिशु के नाम रखने से सँबंधित है. इस सँस्कार का विस्तृत वर्णन हमें गृह्यसूत्रों में मिलता है.[2]

नामकरण की तिथि के विषय में धर्मशास्त्रकारों में मतभेद रहा है. प्राचीन साहित्य सूत्रों एवँ स्मृतियों में नामकरण सँस्कार की अनेक तिथियों का वर्णन मिलता है:

1. गोभिल एवँ खादिर के अनुसार सोष्यन्तीकर्म में भी नाम रखा जा सकता है.
2. <u>बृहदारण्यकोपनिषद</u>, <u>आश्वलायन शांखायन</u>, <u>काठक गृह्यसूत्र</u>, <u>शतपथ ब्राम्हण</u> एवँ <u>पातंजलि</u> आदि के जन्म के दिन ही नाम रखने की व्यवस्था की है.[3]

---

1. <u>बृहस्पतिस्मृति</u>, <u>वीरमित्रोदय सँस्कार प्रकाश</u>, भाग 1, पेज 241
   पाण्डेय, राजवली, <u>हिंदू सँस्कार</u>, 1978, पेज 99
2. <u>आपस्तम्ब गृह्यसूत्र</u>, 15.8-11
   <u>आश्वलायनगृह्यसूत्र</u>, 1.15.4-10
   <u>बौधायन गृह्यसूत्र</u>, 2.1.23-31
   <u>गोभिल गृह्यसूत्र</u>, 2.8.8-18
   <u>शांखायन गृह्यसूत्र</u>, 1.24.4-6
   <u>वैखानस गृह्यसूत्र</u>, 3.19
   काणे, पी.वी., <u>धर्मशास्त्र का इतिहास</u>, भाग 1, पृष्ठ 195
3. काणे, पी.वी., <u>धर्मशास्त्र का इतिहास</u>, भाग 1, पृष्ठ 195

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

3. आपस्तम्ब, बौधायन, भारद्वाज एवँ पारस्कर ने नामकरण सँस्कार के लिए 10 वाँ दिन बताया है.[1]
4. याज्ञवल्क्य[2] ने जन्म के 11 वें दिन नामकरण करने का उल्लेख किया है.
5. मनु[3] के अनुसार जन्म के 10 वें या 12 वें अथवा पुण्य तिथि, मुहुर्त और गुणयुक्त नक्षत्र में बालक का नामकरण करें.

आश्वलायन जन्म के दिन ही 2 नाम रखने के लिए कहते हैं. एक व्यावहारिक नाम, दूसरा गुप्त नाम, जिसे उपनयन सँस्कार तक केवल माता पिता ही जानते हैं. साँख्यायन के अनुसार इस दिन केवल गुप्त नाम ही रखना चाहिए. व्यावहारिक नाम जन्म दिवस से दसवें दिन रखना चाहिए. आपस्तम्ब गृह्यसूत्र, बौधायन, भारद्वाज एवँ पारस्कर का भी यही मत है.[4] बृहस्पति के अनुसार:

> "शिशु का नामकरण जन्म से दसवें, बारहवें, तेरहवें, सोलहवें, उन्नीसवें अथवा बत्तीसवें दिन सम्पन्न करना चाहिए".[5]

कवि कालिदास ने भी "नामकरण सँस्कार" का प्रत्यक्ष रूप से उल्लेख न करते हुए भी, पुत्र जन्म के पश्चात् पिता के द्वारा नाम

---

1. काणे, पी. बी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 196
2. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.12
3. नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वास्य कारयेत
   पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते.
   --मनुस्मृति, 2.30
4. काणे, पी. बी., धर्मशास्त्र का इतिहास, पेज 195-96
5. पाण्डेय, राजवली, हिंदू संस्कार, 1978, पेज 108
   वीरमित्रोदय संस्कार प्रकाश, भाग 1, पेज 234
   "द्वादशाहे दशाहे वा जन्मतो पि त्रयोदशे
   षोडशैकोनविंशे धा द्वात्रिंशे वर्णत: क्रमात्."
   --बृहस्पति स्मृति

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रखवाया जाना बताया है।[1]

नाम किस प्रकार का होना चाहिए इस पर भी हमें प्राचीन ग्रंथों में उल्लेख मिलते हैं. चार प्रकार के नामों का प्रचलन प्राचीन काल में था :

1. नक्षत्र नाम,[2]
2. मास के देवता पर आधारित नाम,[3]
3. कुल देवता पर आधारित नाम[4]
4. लौकिक नाम[5].

कवि कालिदास ने भी नाम रखने के संबंध में प्रचलित नियमों यथा-----नाम शुभ, सार्थक और योग्य हों का पालन किया है.[6] बौधायन गृह्यसूत्र के अनुसार बालक का नाम ऋषि देवता अथवा पूर्वजों के नाम पर रखना चाहिए.[7] कालिदास ने अज नाम ब्रम्हा के नाम पर रखा है.[8]

सीता की प्रसव पीड़ा लव और कुश वस्तुओं से दूर होने के कारण पुत्रों के नाम लव और कुश रखे गए. इसी प्रकार शकुन्तला के पुत्र का भरत और सर्वदमन नाम अपने अर्थ की पुष्टि एवं सार्थकता सिद्ध करता है तथा भविष्य में तेजस्वी होगा, इसका परिचायक है.[9] अतः

---

1. रघुवंशम्, 10.67, 5.36
2. आश्वलायन गृह्यसूत्र, 1.15.4
3. पाण्डेय, राजवली, हिंदू संस्कार, 1978, पेज 104-5
   पाण्डेय, राजवली, हिंदू संस्कार, 1978, पेज 105
4. पाण्डेय, राजवली, हिंदू संस्कार, 1978, पेज 106
5. पाण्डेय, राजवली, हिंदू संस्कार, 1978, पेज 106
   बृहस्पति स्मृति, वीरमित्रोदय संस्कार प्रकाश, भाग 1, पेज 241
6. रघुवंशम्, 3.22
7. बौधायन गृह्यसूत्र, 2.1.28.21
8. रघुवंशम्, 5.66
9. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 7.33

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कालिदास के युग में नामकरण कुल परम्परा के अनुकूल होता था एवं सार्थक नाम रखने का प्रयत्न किया जाता था.

चूँकि जातकर्म से लेकर चूड़ाकर्म तक के सँस्कार लड़कियों के लड़कों के समान ही सम्पादित होते, सिर्फ मँत्रों के उच्चारण के बिना. अत: लड़कियों का "नामकरण सँस्कार" भी होता था, किंतु मँत्र रहित.

यात्रा से लौटने पर पिता पुत्र के सिर को हाथ से छूकर नाम के साथ कहता है-----"अँगादँगात्" और उसे तीन बार सूँघता है. पुत्री के लिए यह नहीं होता, यथा माथा सूँघना या मँत्रोच्चारण, केवल गद्य में ही कुछ कहना होता है. इससे स्पष्ट है कि पुत्री की अपेक्षा पुत्र को अधिक महत्व दिया जाता था, यद्यपि पुत्री को बिल्कुल निरादृत नहीं समझा गया है.[1]

पुत्री के नामकरण के आधार बिल्कुल भिन्न थे. पुत्री के नाम के अक्षरों की सँख्या विषम तथा आकारान्त होना चाहिए, साथ ही उसमें तद्धित का प्रयोग करना चाहिए.[2]

मनु स्त्री नामों की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए कहते हैं:

> "वह उच्चारण में सुखकर और सरल, सुनने में अक्रूर, विस्पष्टार्थ तथा मनोहर, मँगलसूचक, दीर्घवर्णान्त और आशीर्वाद युक्त होना चाहिए.[3] साथ ही उसका नक्षत्र {ग्रह} वृक्ष, नदी, पर्वत, पक्षी, सर्प तथा सेवक के नाम पर और भीषण नाम नहीं रखना चाहिए".

---

1. काणे, पी. बी., <u>धर्मशास्त्र का इतिहास</u>, भाग 1, पृष्ठ 201
2. <u>पारस्कर गृह्यसूत्र</u>, 1. 17. 3
3. <u>मनुस्मृति</u>, 2. 33

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निष्क्रमण संस्कार:

निष्क्रमण वह शुभ दिन है जिस दिन सबसे पहले बालक को घर से बाहर निकालकर सूर्य के दर्शन कराये जाते हैं. यह एक छोटा सा कृत्य है जिसका संक्षेप में वर्णन पारस्कर गृह्यसूत्र,[1] गोभिल गृह्यसूत्र,[2] खादिर गृह्यसूत्र[3] बौधायन गृह्यसूत्र[4] मानव गृह्यसूत्र[5] एवं काठक गृह्यसूत्रों[6] में मिलता हैं. अधिकांश धर्मशास्त्रकारों ने इस संस्कार का समय जन्म के चौथे मास में सम्पादित करने का कहा है.

मनु[7] के अनुसार निष्क्रमण संस्कार चौथे मास में करना चाहिए. याज्ञवल्क्य[8] का भी यही विचार है.

बृहस्पति स्मृति[9] इस संस्कार के लिए बारहवें दिन का विधान करते हैं. विष्णुधर्मोत्तर पुराण एवं बृहस्पतिस्मृति[10] में इस संस्कार की विधि का विस्तृत वर्णन दिया गया है.

सम्पूर्ण संस्कार का महत्व शिशु की दैहिक आवश्यकता और उसके मन पर सृष्टि की असीमित महत्ता के अंकन में निहित है. संस्कार का व्यावहारिक अर्थ केवल यही है कि एक निश्चित समय के

---

1. पारस्कर गृह्यसूत्र, 1. 17
2. गोभिल गृह्यसूत्र, 2. 8. 1-7
3. खादिर गृह्यसूत्र, 2. 3. 1-5
4. बौधायन गृह्यसूत्र, 11. 2
5. मानव गृह्यसूत्र, 1. 19. 1-6
6. काठक गृह्यसूत्र, 37-38
7. मनुस्मृति, 2. 34
8. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1. 12
9. वीरमित्रोदय, संस्कार प्रकाश, भाग 1, पेज 250
   पाण्डेय, राजबली, हिंदू संस्कार, 1978, पृष्ठ 111
10. पाण्डेय, राजबली, हिंदू संस्कार, 1978, पृष्ठ 112-113

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पश्चात् बालक को घर से बाहर उन्मुक्त वायु में लाना चाहिए और यह अभ्यास निरन्तर प्रचलित रहना चाहिए. प्रस्तुत सँस्कार शिशु के उदीयमान् मन पर यह भी अँकित करता था कि यह विश्व ईश्वर की अपरिमित सृष्टि है और उसका आदर विधिपूर्वक करना चाहिए.[1]

<u>अन्न प्राशन सँस्कार:</u>

"अन्न प्राशन सँस्कार" शिशु की शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति से सम्बद्ध था.[2] परवर्ती काल में आकर ही शिशु को पहली बार भोजन कराने की प्रथा को धार्मिक रूप प्राप्त हुआ.

सभी गृह्यसूत्रों में इस संस्कार का वर्णन मिलता है.[3] "अन्नप्राशन संस्कार" में बालक को सबसे पहली बार खाना {अन्न} दिया जाता था. शाँख्यायन के अनुसार:

> "बकरे की वसा, तीतर अथवा चकोर का माँस
> या मछली का माँस या उबले चाँवल, दही, घी
> और शहद में मिलाकर पिता बच्चे को चटावें".[4]

उपर्युक्त चारों व्यँजन क्रम से पुष्टता, प्रकाश, तीक्ष्णता या धनधान्य के प्रतीक माने जाते हैं.

आश्वलायन भी यही विधि बताते हैं. केवल मछली का माँस नहीं बताते[5] जबकि <u>आपस्तम्ब गृह्यसूत्र</u>[6] के अनुसार केवल दही, घी और शहद चाँवल में मिलाकर चटाना ही श्रेयस्कर है.

यह सँस्कार कब सम्पादित होना चाहिए तो अधिकांश

---

1. पाण्डेय, राजवली, <u>हिंदू संस्कार</u>, 1978, पृष्ठ 113
2. पाण्डेय, राजवली, <u>हिंदू संस्कार</u>, 1978, पृष्ठ 114
3. काणे, पी. वी., <u>धर्मशास्त्र का इतिहास</u>, भाग 1, पृष्ठ 202
4. <u>शाँख्यायन गृह्यसूत्र</u>, I-27
5. <u>आश्वलायन गृह्यसूत्र</u>, 1. 16. 1-6
6. <u>आपस्तम्ब गृह्यसूत्र</u>, 16. 1-2

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धर्मशास्त्रकारों ने इसे जन्म के छठें मास में सम्पादित करने का कहा है. मनु[1] एवं याज्ञवल्क्य[2] के अनुसार जन्म के छठें महीने में यह संस्कार किया जाना चाहिए. <u>नारदस्मृति</u>[3] के अनुसार:

> "अन्न प्राशन संस्कार जन्म से छठे सौर मास में अथवा स्थगित होने पर आठवें, नवें अथवा दसवें मास में करना चाहिए, किंतु कतिपय पंडितों के अनुसार यह बारहवें मास में अथवा एक वर्ष पूर्ण होने पर भी किया जा सकता था".

बालकों के लिए सम तथा बालिकाओं के लिए विषम मास अन्नप्राशन के लिए विहित थे. लिंग पर आधारित यह भेद इस भाव का सूचक है कि संस्कारों में भी विभिन्न लिंगों के लिए किसी न किसी प्रकार का अंतर होना चाहिए.[4]

अन्नप्राशन संस्कार माता को भी यह चेतावनी देता था कि एक निश्चित समय पर उसे शिशु को दूध पिलाना बंद कर देना चाहिए. अनाड़ी शिशु के प्रति स्नेह के कारण उसे एक वर्ष या उससे भी अधिक समय तक यह अपना स्तन्य पिलाती भी रहती है किंतु वह इस तथ्य की ओर ध्यान नहीं देती कि इससे वह शिशु का यथार्थ कल्याण न कर अपनी शक्ति का निरर्थक क्षय करती है. शिशु और माता दोनों के हित के लिए इस संस्कार द्वारा सामयिक चेतावनी दे दी जाती थी.[5]

---

1. <u>मनुस्मृति</u>, 2.34
2. <u>याज्ञवल्क्य स्मृति</u>, 2.12
3. जन्मतो मासि षठे वा सौरेणोत्तममन्नदम्
   तदभावे ष्टमे मासे नवमें दशमे पि वा
   द्वादशे वा पि कुर्वीत प्रथमान्नाशनंपरम्
   संवत्सरे वा सम्पूर्णे केचिदिच्छन्ति पंडिता:
   —<u>नारद स्मृति</u>
4. पाण्डेय, राजवली, <u>हिंदू संस्कार</u>, 1978, पृष्ठ 116
5. पाण्डेय, राजवली, <u>हिंदू संस्कार</u>, 1978, पृष्ठ 118

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

<u>वर्षवर्धन या अब्दपूर्ति:</u>

वर्षवर्धन या अब्दपूर्ति के विषय में गोभिल[1] एवँ शांखायन[2] का विचार है कि यह एक वर्ष तक प्रतिमास मनाया जाए, तत्पश्चात् प्रत्येक वर्ष. <u>बौधायन गृह्यसूत्र</u>, <u>काठक गृह्यसूत्र</u> एवँ <u>वैखानस गृह्यसूत्र</u>[3] ने विस्तार के साथ वर्षवर्धन का वर्णन किया है. इनके अनुसार यह सँस्कार जीवन भर प्रत्येक वर्ष, प्रत्येक छठे मास, प्रत्येक चौथे मास, प्रत्येक ऋतु या प्रत्येक मास जन्म के नक्षत्र दिन करना चाहिए.[4]

कालिदास के "जातकर्मादिय" शब्द के "आदय:" का तात्पर्य निष्क्रमण, अन्नप्राशन एवँ वर्षवर्धन इत्यादि छोटे छोटे संस्कारों से होगा.[5]

<u>चौल, चूड़ाकर्म या चूड़ाकरण सँस्कार:</u>

"चूड़ा" का तात्पर्य है बाल-गुच्छ, इसे "शिखा" भी कहते हैं. अत: "चूड़ाकर्म" या "चूड़ाकरण" वह कृत्य है जिसमें जन्म के उपराँत पहली बार सिर पर एक बालगुच्छ {शिखा} रखा जाता है. चूड़ा से ही चौल बना है, क्योंकि उच्चारण में "ड" का "ल" हो जाना सहज माना गया है.[5]

वैदिक काल में भी चूड़ाकरण एक धार्मिक सँस्कार था, जिसमें सिर का भिगोना, छुरे की स्तुति, नापित को निमन्त्रण, वैदिक मँत्रों

---

1. <u>गोभिल गृह्यसूत्र</u>, 2.8.19-20
2. <u>शांखायन गृह्यसूत्र</u>, 1.25.10-11
3. <u>बौधायन गृह्यसूत्र</u>, 2.7.1-2
   <u>काठक गृह्यसूत्र</u>, 1.36.12 एवँ 16
   <u>वैखानस गृह्यसूत्र</u>, 3.20-21
4. काणे, पी.वी., <u>धर्मशास्त्र का इतिहास</u>, भाग 1, पृष्ठ 202-3
5. काणे, पी.वी., <u>धर्मशास्त्र का इतिहास</u>, भाग 1, पृष्ठ 203

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के साथ केशच्छेदन तथा, दीर्घायुष्य समृद्धि, वीर्य तथा शिशु की संतान के लिए भी कामना की जाती थी।[1]

गृह्यसूत्रों में इस संस्कार की विधि तथा नियमों का विस्तृत वर्णन है।[2] इन सभी गृह्यसूत्रों में चूड़ाकर्म के लिए तृतीय वर्ष ही उपयुक्त माना गया है।

स्मृतिकार मनु ने प्रथम अथवा तृतीय वर्ष में "चूड़ाकर्म संस्कार" करने का आदेश दिया है।[3] किंतु याज्ञवल्क्य[4] ने इसे समय की सीमा में न बाँधकर कुल की परंपरा के अनुसार करने को महत्त्व दिया।

कवि कालिदास[5] ने भी प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से चूड़ाकर्म संस्कार का वर्णन किया है।

"काकपक्ष"[6] और "शिखंडक"[2] शब्द कालिदास ने चौलकर्म के संदर्भ में ही प्रयुक्त किए हैं। कवि ने इसे मनाने की विधि का स्पष्ट वर्णन नहीं किया है किंतु इस कृत्य का प्रमुख कार्य है बच्चे के

---

1. पाण्डेय, राजवली, हिंदू संस्कार, भ 1978, पृष्ठ 121
   अथर्ववेद, 6.68.2
   यजुर्वेद, 3.63, 3.33
   अथर्ववेद, 6.68.2, 6.68.3, 8.4.17
2. शांखायन गृह्यसूत्र, 1.28 आश्वलायन गृह्यसूत्र, 1.17
   पारस्कर गृह्यसूत्र, 2.1, गोभिल गृह्यसूत्र, 2.9
   खादिर गृह्यसूत्र, 2.3-16, आपस्तम्ब गृह्यसूत्र, 16.3
   बौधायन गृह्यसूत्र, 2.4
   काणे, पी.वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 203-4
3. चूड़ाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः
   प्रथमे ब्दे तृतीये वा कर्तव्यं श्रुतिचोदनात्।
   --मनुस्मृति, 2.35
4. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2.12 : चूडाकार्या यथाकुलम्
5. स वृत्तचूलश्चलकाकपक्षकैरमात्य पुत्रैः सवयोभिरन्वितः
   --रघुवंशम्, 3.28
6. रघुवंशम्, 11.31, 11.42, 18.43
7. रघुवंशम्, 11.5

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिर के केश काटना. इसके साथ होम, ब्राम्हण भोजन, आर्शीवचन ग्रहण, दक्षिणादान आदि कृत्य किये जाते हैं. कटे हुए केश गुप्त रूप से इस प्रकार हटा दिए जाते हैं कि कोई उन्हें पा नहीं सके।[1]

लड़कियों के चूड़ाकर्म सँस्कार के पक्ष में मनु[2] एवँ याज्ञवल्क्य[3] दोनों हैं. इनके अनुसार जातकर्म से लेकर चूड़ाकर्म तक सभी सँस्कार लड़कों के समान लड़कियों के भी होने चाहिए किंतु लड़कियों के सँस्कारों में मँत्रों का उच्चारण नहीं होना चाहिए.

आश्वलायन[4] के अनुसार लड़कियों का चूड़ाकर्म अवश्य होना चाहिए पर वैदिक मँत्रों के पाठ के बिना. मनु एवँ याज्ञवल्क्य का भी यही विश्वास है कि शरीर की शुद्धि के लिए जातकर्म से चौल तक के सभी सँस्कार लड़कियों के बिना वैदिक मँत्रों के होने चाहिए.

कालिदास ने स्त्रियों के चौलकर्म का कहीं वर्णन नहीं किया है.

<u>कर्णवेध सँस्कार:</u>

कर्णों में छेद करने को "कर्णवेध सँस्कार" कहते हैं. इस संस्कार का उल्लेख केवल कौषीतकी एवँ <u>पारस्कर गृह्यसूत्रों</u> में मिलता है.[5]

स्मृतिकार मनु एवँ याज्ञवल्क्य कर्णवेध सँस्कार के विषय में मौन हैं. किंतु बृहस्पति स्मृति के अनुसार :

---

1. काणे, पी. वी., <u>धर्मशास्त्र का इतिहास</u>, भाग 1, पृष्ठ 204
2. <u>मनुस्मृति</u>, 2.66
3. <u>याज्ञवल्क्य स्मृति</u>, 1.13
4. <u>आश्वलायन</u>, 1.17.18, 1.16.6, 1.15,12
5. कुजूर, स्कालास्तिका, <u>वैदिक एवँ धर्मशास्त्रीय साहित्य में नारी</u> 1982, पृष्ठ 102.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

> "जन्म के दसवें, बारहवें अथवा सोलहवें दिन कर्णवेध सँस्कार होना चाहिए."[1]

स्वर्णमयी सूची शोभादायिनी है किंतु अपनी सामर्थ्य के अनुसार चाँदी अथवा लोहे की सुई का भी व्यवहार किया जा सकता है.[2]

विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार "बालक का दाहिना एवं कन्या का बाँया कान पहले छेदा जाता था. अँत में ब्राम्हणों, ज्योतिषियों और वैध को दान दक्षिणा दी जाती थी तथा स्त्रियों, मित्रों और संबंधियों का सत्कार और मनोरँजन किया जाता था.[3]

बौधायन गृह्यसूत्र[4] के अनुसार बच्चे का "कर्णवेध संस्कार" जन्म के 7 वें अथवा 8 वें मास में करना चाहिए. किंतु बृहस्पति[5] ने इसे जन्म के 10 वें, 12 वें या 16 वें दिन या 7 वें या 10 वें मास में करने का आदेश दिया है. कर्णवेध के उपरांत ब्राम्हण भोजन का आयोजन होता था.

प्राचीन काल में यह सँस्कार किया जाता था, निरूक्त[6] में प्राप्त उल्लेख से यह प्रमाणित है:

> "जो (गुरू) कान को सत्य के साथ छेदता है, बिना पीड़ा दिए जो अमृत डालता है वह अपने माता एवं पिता के समान है".[6]

---

1. जन्मतो दशमे वान्हि द्वादशे वा थ षोडशे
   —बृहस्पति स्मृति, वीरमित्रोदय संस्कार प्रकाश, भाग 1, पेज 258 पर उद्धृत
2. शात कुम्भमयी सूची वेधने शोभनप्रदा
   राजती वाडयसी वा पि यथा विभवत: शुभा.
   —बृहस्पति, वीरमित्रोदय संस्कार प्रकाश में उद्धृत.
3. विष्णुधर्मोत्तरपुराण, वीरमित्रोदय सँस्कार प्रकाश, भाग 1, पेज 162
4. बौधायन गृह्यसूत्र, 1. 12
5. काणे, पी. वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पेज 201
6. निरूक्त, 2. 4

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐसा ही उल्लेख हमें वशिष्टधर्मसूत्र[1], विष्णुधर्मसूत्र[2], शांतिपर्व[3] एवँ मनुस्मृति[4] में भी मिलता है.

मनुस्मृति, बृहस्पति स्मृति एवँ विष्णुधर्मसूत्र में कर्णवेध के वर्णन से स्पष्ट है गुप्तकाल में भी यह सँस्कार प्रचलित था. इसके विपरीत गुप्तकालीन साहित्य अभिलेख इत्यादि में इस सँस्कार के प्रचलन के प्रमाण नहीं मिलते.

सँभवत: कालिदास द्वारा प्रयुक्त "जातकर्मादय:" शब्द में "आदय:" शब्द से तात्पर्य छोटे छोटे सँस्कारों से होगा.

विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार बालक का दाहिना एवँ बालिका का बाँया कर्ण पहले छेदित करना चाहिए.[5]

विद्यारम्भ सँस्कार:

विद्यारम्भ सँस्कार का सम्पादन बालक के मस्तिष्क के शिक्षा ग्रहण करने के योग्य होते ही होता था. इस सँस्कार के साथ ही बालक को अक्षर ज्ञान कराया जाता था. इस सँस्कार के अनेक नाम धर्मशास्त्रकारों ने दिए जैसे विद्यारम्भ, अक्षरारम्भ, अक्षरस्वीकरण, अक्षर लेखन इत्यादि. यह एक प्राकृतिक सँस्कार न होकर साँस्कृतिक सँस्कार है. इस सँस्कार का उद्भव सभ्यता की अत्यन्त उन्नत अवस्था में हुआ, जब वर्णमाला का विकास हो चुका था और लिखने में उसका उपयोग किया जाने लगा.[6] और निश्चित ही विद्यारम्भ का उद्भव स्मृतियों

---

1. वशिष्ट धर्मसूत्र, 2.10
2. विष्णु धर्मसूत्र, 30.47
3. शांतिपर्व, 108.22-23
4. मनुस्मृति, 2.144
5. कुजूर, स्कालास्तिका, वैदिक एवँ धर्मशास्त्रीय साहित्य में नारी 1982, पृष्ठ 102.
6. पाण्डेय, राजबली, हिंदु सँस्कार, 1978, पृष्ठ 137

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में उसकी चर्चा होने के पूर्व ही हो चुका था।[1]

अक्षरारम्भ के सँस्कार के रूप में विलम्ब से मान्य होने का कारण सँभवतः इस सँस्कार का अनुष्ठान "चौल" या "मुण्डल संस्कार के ही साथ किया जाता था।[2] कौटिल्य के अर्थशास्त्र से इस धारणा की पुष्टि होती है कि बालक की लिपि और सँख्या की शिक्षा का आरँभ चौल सँस्कार के साथ होता था।[3] कवि कालिदास ने रघुवँशम् में वर्णन किया है कि अज ने पहले अक्षर सीखे और तब वह सँस्कृत साहित्य के सिंधु में उतरा।[4]

सँभवतः ईसा की आरँभिक शताब्दियों से विद्यारम्भ नामक सँस्कार सम्पादित किया जाने लगा था।[5] गुप्तकाल में यह सँस्कार अस्तित्व में था किंतु लड़कियों के लिए विद्यारँभ सँस्कार का वर्णन हमें प्राप्त नहीं होता।

बृहस्पति[5] के अनुसार "सुधी बालक को द्वितीय जन्म (उपनयन) के पूर्व अक्षरारम्भ अवश्य करा देना चाहिए".

---

1. पाण्डेय, राजबली, हिंदु संस्कार, 1978, पृष्ठ 139
2. अल्तेकर, अनन्त सदाशिव, एजुकेशन इन एश्येंट इंडिया, भाग 1 1934, पृष्ठ 2.
3. अर्थशास्त्र, 1.5
4. रघुवँशम्, 3.28
5. काणे, पी.वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 206
6. द्वितीय जन्मतः पूर्वमारभेताक्षरान् सुधीः.
   --बृहस्पति स्मृति, वीरमित्रोदय सँस्कार प्रकाश, भाग 1, पेज 321 पर उद्धृत.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपनयन सँस्कार:

"उपनयन" का अर्थ है-----"पास या सन्निकट ले जाना" अर्थात् आचार्य के पास (शिक्षण के लिए) ले जाना. किन्तु कालान्तर में इस कृत्य की विस्तृतता के कारण इसका दूसरा अर्थ प्रयुक्त होने लगा. इसके अनुसार उपनयन सँस्कार एक सँस्कार है जो उसके लिए किया जाता है जो विद्या सीखना चाहता है:

> "यह ऐसा सँस्कार है जो विद्या सीखने वाले को गायत्री मँत्र सिखाकर किया जाता है".[1]

क्या प्राचीन भारत में स्त्रियों का उपनयन सँस्कार होता था. स्मृतिचन्द्रिका में उद्धृत हारीत धर्मसूत्र में स्त्रियों के "उपनयन सँस्कार" का वर्णन है.

हारीत के अनुसार स्त्रियों के दो वर्ग होते थे:

1. ब्रम्हवादिनी,
2. सद्योवधू.

इनमें ब्रम्हवादिनी को उपनयन करना, अग्निसेवा करना, वेदाध्ययन करना, अपने गृह में ही भिक्षाटन करना इत्यादि आवश्यक थे, किंतु सद्योवधुओं का केवल उपनयन "विवाह सँस्कार" के साथ ही कर दिया जाता था.[2] गोभिल गृह्यसूत्र में भी "लड़कियों को

---

1. काणे, पी.वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 208-9
2. यत्तु हारीतेनोक्तं द्विविधा: स्त्रियो ब्रम्हवादिन्य: सद्योवध्वश्च तत्र ब्रम्हवादिनी नामुपनयनमग्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृहे च भिक्षाचर्येति सद्योवधूनां तु उपस्थिते विवाहे कथंचिदुपनयनमात्रं कृत्वा विवाह: कार्य:.

   --हारीत धर्मसूत्र, स्मृतिचंद्रिका भाग 1, पृष्ठ 24

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपनयन के प्रतीक के रूप में यज्ञोपवीत धारण करने का वर्णन मिलता है।[1]

हारीत[2] के अनुसार स्त्रियों का "समावर्तन सँस्कार" मासिक धर्म प्रारँभ होने के पूर्व ही हो जाना चाहिए अर्थात् ब्रम्हवादिनी नारियों का "उपनयन" गर्भाधान के आठवें वर्ष होता था. वे वेदाध्ययन करती थीं. और उनका छात्रा जीवन रजस्वला होने के (युवा हो जाने के) पूर्व ही समाप्त हो जाता था.[3]

प्राचीन काल में स्त्री एवँ पुरूष दोनों समान रूप से शिक्षा कार्य सम्पादित करने के अधिकारी थे. विद्यार्जन के लिए बालिकायें ब्रम्हचर्य व्रत धारण करती थीं. ब्रम्हचर्य की विशिष्ट अवधि समाप्त होते ही उनका विवाह किया जाता था.[4] वैदिक कालीन समाज में घोषा एवँ लोपामुद्रा जैसी विद्वान एवँ विदुषी स्त्रियाँ स्त्री शिक्षा के व्यापक प्रसार को प्रमाणित करती हैं.[5]

स्मृतिकार मनु ने भी स्त्री शिक्षा की प्रथा का वर्णन किया है. मनु ने स्त्रियों के उपनयन सँस्कार को वैदिक मँत्रों के उच्चारण रहित करने का आदेश दिया है.[6]

जिस यज्ञ में स्त्री का सहयोग रहे, उसके उत्सव में ब्राम्हणों को

---

1. प्रावृतां यज्ञोपवीतिनीमभ्युदानयम् जपेत सोमो ददद गन्धर्वायेति,
   --<u>गोभिल गृह्यसूत्र</u>, 2. 1. 19
2. प्राग्रजसः समावर्तनम् इति हारीतोक्त्या.
   --<u>हारीत धर्मसूत्र</u>, <u>संस्कारप्रकाश</u> पृष्ठ 404.
3. काणे, पी. वी., <u>धर्मशास्त्र का इतिहास</u>, भाग 1, पृष्ठ 219
4. ब्रम्हचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्,
   --<u>अथर्ववेद</u>, 11. 5. 18
5. <u>ऋग्वेद</u>, 10. 39, 40, 1. 179
6. अमंत्रिका तुकार्येयं स्त्रीणामावृदशेषत संस्कारार्थं शरीरस्य यथाक्रमम.
   --<u>मनुस्मृति</u>, 2. 66

   उपाध्याय, वासुदेव, <u>गुप्त साम्राज्य का इतिहास</u>, भाग 2, पृष्ठ 189

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भोजन नहीं करना चाहिए. मनु[1] का यह कथन संकेत करता है कि ईस्वी सन् के पश्चात् कई शताब्दियों तक स्त्रियों को वैदिक शिक्षा को प्रावधान नहीं था. किंतु वैदिक शिक्षा को छोड़कर अन्य विषयों के अध्ययन से स्त्रियाँ वँचित नहीं थीं. सभ्य स्त्रियों में पढ़ने लिखने कविता करने तथा शास्त्राध्ययन के प्रचार का प्रमाण हमें बौद्ध ग्रँथ <u>ललित विस्तर</u> से मिलता है.[2]

गुप्तकालीन समाज में स्त्रियों का "उपनयन सँस्कार" नहीं किया जाता था किंतु विद्यारम्भ के पूर्व कुछ प्रारँभिक सँस्कार किए जाने का प्रावधान अवश्य था. याज्ञवल्क्य[3] एवँ नारद[4] ने इसका वर्णन किया है. यम ने पुरूषों की तरह स्त्रियों के भी यज्ञोपवीत सँस्कार करने का आदेश दिया है.[5]

<u>विष्णु स्मृति</u> के अनुसार स्त्रियों के लिए उपनयन सँस्कार आवश्यक नहीं है, क्योंकि "विवाह सँस्कार" ही उनका "उपनयन सँस्कार" है.[6]

यम[7] के अनुसार "प्राचीन काल में मूज की मेखला बाँधना

---

1. नाश्रोत्रियतते यज्ञे ग्रामयाजि हुते तथा स्त्रिया क्लीबेन च हुते भुञ्जीत ब्राम्हण: क्कचित्.
   --<u>मनुस्मृति</u>, 4. 205
2. उपाध्याय, वासुदेव, भाग 2, <u>गुप्त साम्राज्य का इतिहास</u>, पेज 189
3. <u>याज्ञवल्क्य स्मृति</u>, 1. 13
4. <u>नारद स्मृति</u>, 13. 33
   उपाध्याय, वासुदेव, भाग 1, पेज 189
5. पुराकल्पे तु नारीणां मौञ्जी बन्धनमिष्यते
   --<u>यम स्मृति</u>,
6. स्त्रीणां विवाह: संस्कार: --<u>विष्णुस्मृति</u>, 22. 32
7. यमेऽपि पुराकल्पे कुमारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते
   अध्यापनं च वेदानां सावित्री वाचनं तथा
   पितृव्यो भ्राता वा नैनामध्यापयेत्पर:
   स्वगृहे चैव कन्याया भैक्षचर्या विधीयते
   वर्जयेदजिनं चीरं जटाधारणमेव च.
   --<u>यम स्मृति</u>
   काणे, पी. वी., <u>धर्मशास्त्र का इतिहास</u>, भाग 1, पृष्ठ 219

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नारियों के लिए भी एक नियम था. उन्हें वेद पढ़ाया जाता था, वे सावित्री का उच्चारण करती थीं, उन्हें उनके पिता, चाचा या भाई पढ़ा सकते थे, अन्य कोई बाहरी पुरूष नहीं पढ़ा सकता था, वे गृह में ही भिक्षा माँग सकती थीं. उन्हें मृगचर्म, वल्कल वसन नहीं पहनना पड़ता था और न वे जटायें रखती थीं.

मनु[1] ने भी स्त्रियों के "जातकर्म" से लेकर "उपनयन संस्कार" तक सँस्कारों का वर्णन किया है किंतु वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि "ये कृत्य नारियों के लिए ज्यों के त्यों किए जाते थे, किन्तु बिना मँत्रों के, परन्तु केवल विवाह के सँस्कार में स्त्रियों के लिए वैदिक मँत्रों का प्रयोग होता था.

अत: स्पष्ट है कि मनु के समय में तथा गुप्तकाल में स्त्रियों का उपनयन नहीं होता था, किंतु प्राचीनकाल में यह सँस्कार होता था, इसके स्पष्ट प्रमाण हमें मिलते हैं.

समावर्तन सँस्कार:

आश्वलायन गृह्यसूत्र में स्त्रियों के वैदिक अध्ययन को महत्व दिया गया है. अत: स्त्रियों के समावर्तन सँस्कार का भी वर्णन किया है. आश्वलायन गृह्यसूत्र के अनुसार समावर्तन सँस्कार :

> "अपने दोनों हाथों से लेप {उबटन} लगाकर ब्राम्हण अपने मुख को, क्षत्रिय अपनी दोनों बाहुओं को, वैश्य अपने पेट को, स्त्री अपने गर्भस्थान को तथा जो दौड़ लगाकर अपनी जीविका चलाते हैं {सरणजीवी} वे अपनी जाँघों को लिप्त करें".[2]

---

1. मनुस्मृति, 2.66
2. आश्वलायन गृह्यसूत्र, 3.8.2
   काणे, पी.वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 219

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हारीत के अनुसार :

> "मासिक धर्म चालू होने के पूर्व ही स्त्रियों का समावर्तन सँस्कार हो जाना चाहिए".[1]

<u>महाभारत के अनुसार</u> :

> "एक ब्राम्हण ने पाण्डवों की माता को अथर्वशीर्ष के मँत्र पढ़ाये थे".[2]

अत: स्पष्ट है कि ब्रम्हवादिनी नारियों का उपनयन गर्भाधान के आठवें वर्ष होता थो. वे वेदाध्ययन करती थीं और उनका छात्रा जीवन रजस्वला होने के (युवा होने के) पूर्व समाप्त हो जाता था.[3]

मनुस्मृति में स्त्रियों के समावर्तन सँस्कार का वर्णन प्राप्त नहीं होता. सँभवत: मनु के समय तक यह सँस्कार न भी मनाया जाता हो, अथवा मँत्र रहित होता हो. कालिदास ने भी "समावर्तन सँस्कार" स्त्रियों के लिए अनिवार्य था, ऐसा कहीं भी वर्णन नहीं किया है.

<u>विवाह सँस्कार:</u>

<u>ऋग्वेद</u>[4] में विवाह का उदेश्य गृहस्थ होकर देवों के लिए यज्ञ करना तथा सन्तानोत्पत्ति करना है. परवर्ती साहित्य भी यही प्रमाणित करता है. विवाह के मुख्य उदेश्य हैं :

---

1. हारीत, <u>सँस्कार प्रकाश</u>, पेज 404
   प्राग्रजस: समावर्तनम् इति हारीतोक्त्या.
   काणे, पी. वी., <u>धर्मशास्त्र का इतिहास</u>, भाग 1, पेज 219
2. ततस्तामनवद्यांगीं ग्राहयामास स द्विज:
   मंत्रग्रामं तदा राजन्नथर्व शिरसिश्रुतम्.
   --<u>वनपर्व</u>, 305. 20
3. काणे, पी. वी., <u>धर्मशास्त्र का इतिहास</u>, भाग 1, पृष्ठ 219
4. <u>ऋग्वेद</u>, 10. 85. 36, 5. 3. 2, 5. 28. 3, 3. 53. 4

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

1. पत्नी पति को धार्मिक कृत्यों के योग्य बनाती है,
2. वह पुत्र या पुत्रों की माता होती है और पुत्र ही नरक से रक्षा करते हैं.

अतः स्पष्ट है कि धर्म, सम्पत्ति, प्रजा एवं रति ये तीन विवाह सम्बन्धी प्रमुख उद्देश्य स्मृतियों एवं निबन्धों में माने गए हैं।[1]

स्त्री के सँस्कारों में सर्वाधिक महत्त्व विवाह सँस्कार को ही दिया गया है. "उद्वाह", "परिणय", "परिणयन", "पाणिग्रहण" इत्यादि शब्द विवाह सँस्कार के ही पर्यायवाची शब्द हैं, जो शास्त्रों में भिन्न भिन्न स्थानों पर प्रयुक्त हुए हैं.[2]

प्राचीन काल में स्त्रियों का विवाह सँस्कार वैदिक मँत्रों के साथ धूमधाम से किया जाता था. मनु[3] एवं याज्ञवल्क्य[4] ने भी स्त्रियों का विवाह सँस्कार मँत्रों के साथ करने का आदेश दिया है.

कवि कालिदास ने भी अपने काव्यों रघुवँशम्[5] तथा कुमारसँभवम्[6] में पार्वती और इन्दुमति के विवाह सँस्कार धूमधाम से मनाये जाने का विस्तृत वर्णन किया है.

---

1. काणे, पी.बी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 269
   मनुस्मृति, 9.28
   याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.78
   शतपथ ब्राम्हण, 5.2.1.10
   ऐतरेय ब्राम्हण, 33.1
   आपस्तम्ब गृह्यसूत्र, 2.5.11.12
2. एवमुपयमनपाणिग्रहणशब्दवत्परिणयनशब्दोऽपि, दाक्षिण्यायेनैव कर्मसमुदाये शास्त्रेषु प्रयुज्यते. —अपरार्क टीका, पेज 91
   वर्मा, गायत्री, पेज 78
3. मनुस्मृति, 2.67
4. तूष्णीमेताः क्रियाः स्त्रीणां विवाहस्तु समन्त्रकः
   —याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.13
5. रघुवँशम्, सर्ग 7 सम्पूर्ण
6. कुमारसँभवम्, सर्ग 7 सम्पूर्ण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि गुप्तकाल में भी स्त्रियों का विवाह सँस्कार मँत्र उच्चारणों सहित धूमधाम से किया जाता था.

अन्त्येष्ठि सँस्कार :

हिन्दू के जीवन का अँतिम सँस्कार अन्त्येष्टि है, जिसके साथ वह अपने जीवन का अँतिम अध्याय समाप्त करता है. मरणोत्तर होने पर भी यह सँस्कार कम महत्वपूर्ण नहीं है, क्योंकि हिन्दू के लिए इस लोक की अपेक्षा परलोक का मूल्य उच्चतर है.[1]

अन्त्येष्टि सँस्कार का वर्णन मनु[2] एवँ याज्ञवल्क्य[3] दोनों स्मृतिकारों ने किया है. "अन्त्येष्टि सँस्कार" के लिए कालिदास ने "नैष्ठिक" शब्द का भी प्रयोग किया है.[4] कालिदास ने स्त्रियों के अन्त्येष्टि सँस्कार का वर्णन किया है. स्त्री की मृत्यु के पश्चात् उसके शव को पुष्प, आभूषण इत्यादि से अँतिम बार सजाया जाता था. इस अँतिम साज-सज्जा को कवि ने "अन्त्यमंडनम्".[5] अथवा "मृत्युमँडनम्".[6] कहा है. रानी इन्दुमति का अँतिम श्रृँगार पुष्पमाला से किया गया था. अँतिम श्रृँगार के समय पैरों में महावर तथा बिछुए भी पहनाये जाते थे.

---

1. पाण्डेय, राजबली, हिंदू संस्कार, पृष्ठ 296
2. मनुस्मृति, 2. 16
3. निषेकादा: श्मशानान्तास्तेषां वै मन्त्रत: क्रिया:
   --याज्ञवल्क्य स्मृति, 1. 10
4. विदधे विधिमस्य नैष्ठिकं यतिभि: सार्धं मनग्निमग्निचित्.
   --रघुवंशम्, 8. 25
5. विससर्ज तदन्त्यमण्डनामनलायानै रूचन्दनैधसै.
   --रघुवंशम्, 8. 71
6. अथवा एतदेव मे मृत्युमण्डनं भविष्यति
   --मालविकाग्निमित्रम्, अँक 3, पृष्ठ 299.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अग्नि सँस्कार:

शव को अँतिम बार सजाकर उसका "अग्नि सँस्कार" कर दिया जाता था. रानी इन्दुमति का अग्नि सँस्कार अगर और चंदन की लकड़ियों से किया गया था. सँभवत: राजकुल के व्यक्तियों के लिए चँदन की चिता बनाई जाती थी.[1]

श्राद्ध सँस्कार:

गुप्तकाल में पुरूषों के समान ही स्त्रियों का "श्राद्ध सँस्कार" नियमपूर्वक मनाया जाना स्पष्ट है. राजा अज ने अपनी पत्नी इंदुमती के सभी क्रिया कर्म दस दिन बाद बड़ी धूमधाम से किए थे.[2] इसी प्रकार राम आदि चारों भाइयों ने अपनी स्वर्गीया माताओं के श्राद्ध आदि सँस्कार विधिपूर्वक किए थे.[3] पत्नी का परलोक सुधारने ✓ के लिए ही पति द्वारा पत्नी को पिण्डदान आदि किया जाता है.[4]

---

1. विससर्ज तदन्त्यमंडनामनलायागुरूचन्दनैधसे.
 --रघुवँशम्, 8.71
2. अथ तेन दशाहत: परे गुणशेषामुपदिश्य भामिनीम्
 विदुषा विधयो महर्द्धय: पुर एवोपवने समापिता:
 --रघुवँशम्, 8.73
3. इत्यारोपित पुत्रास्ते जननीनां जनश्वरा:
 मर्त्यलोकप्रपन्नानां निवापान्विदधु: क्रमात्.
 --रघुवँशम्, 15.91
4. अपशोकमना: कुटुम्बीमनुगृहीष्ण निवापदत्तिभि,
 स्वजनाश्रु किलातिसंततं दहति प्रेतमिति प्रचक्षते.
 --रघुवँशम्, 8.86

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्राद्ध करते समय मृतक को उसकी प्रिय वस्तु दी जाती थी.[1]

कभी कभी पति पत्नी दोनों को एक साथ जल से तर्पण किया जाता था, जिसे वे परलोक में पीते थे.[2]

---

1. कुमारसंभवम्, 4. 38
2. इतिचापि विधाय दीयतां सलिलस्याञ्जलिरेक एव नौ
   अविभज्य परत्र तै मया सहितः पास्यति तेस बान्धवः
   --कुमारसंभवम्, 4. 37

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय : 4

गुप्तकालीन पारिवारिक तथा सामाजिक संरचना.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

<u>वर्ण व्यवस्था:</u>

वैदिक कालीन भारतीय समाज का मूल आधार वर्ण था. वैसे तो वर्ण का अर्थ रंग होता है किंतु कालान्तर में जब व्यावसायिक विकास और व्यावसायिक योग्यता ने पारिवारिक रूप ग्रहण किया तो यही शब्द जाति बोधक बन गया. ऋग्वैदिक काल में ही समाज चार वर्णों-----ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र, में बंट गया था. ब्रम्हा के शरीर से वर्ण की उत्पत्ति के अनुसार ब्राम्हण उनके मुख से, क्षत्रिय उनकी भुजाओं से, वैश्य उनकी जंघाओं से तथा शूद्र उनके पैरों से उत्पन्न हुए. इस प्रकार आलंकारिक रूप से चारों वर्णों की व्यावसायिक स्थिति के अनुसार धर्म संबंधी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ज्ञान के शिक्षक और प्रचारक ब्राम्हण, युद्धरत लोग क्षत्रिय, शारीरिक श्रम कर धन पैदा करने वाले वैश्य और सेवा कार्य करने वाले शूद्र कहलाते थे. आरंभ में वर्ण कर्मबोधक था तथा उसमें किसी प्रकार का कठोर विभाजन न था किंतु धीरे धीरे उसने कर्मणा विभाजन के स्थान पर जन्मना समाज अथवा जाति का रूप ले लिया था. गुप्तकाल से पहले ही वर्णव्यवस्था का पूरा विकास हो गया था तथा नाना उपजातियाँ भी बन गई थीं.[1] गुप्त कालीन स्मृतियों में वर्ण के इस कठोर रूप की झलक मिलती है. मनुस्मृति में वर्ण का पूर्णत: कठोर रूप है. कालिदास ने साहित्य में भी वर्णव्यवस्था का चित्रण किया है किंतु व्यावहारिक रूप में वर्ण व्यवस्था की कठोरता प्रकट नहीं होती बल्कि गुप्तकाल में उस कठोरता में कमी आने लगी.

गुप्तकालीन स्मृतियों, अभिलेखों एवं साहित्य में वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रमाण हमें प्राप्त होते हैं. वात्स्यायन ने अपने <u>कामसूत्र</u> में समाज का 4 वर्णों में विभाजन तथा इन वर्णों और आश्रमों के पालन करने की आवश्यकता का वर्णन किया है.[2]

<u>चार वर्णों में पारस्परिक संबंध:</u>

प्राचीन भारत में 4 वर्णों में परस्पर संबंध बहुत अच्छे थे तथा वैवाहिक संबंध भी निर्विघ्न रूप से सम्पादित होते थे.[3] किंतु इस अन्तर्वर्ण विवाह के दो भेद अवश्य हो गये थे:

1. अनुलोम विवाह (उच्चवर्ग का पुरूष + निम्न वर्णी कन्या)
2. प्रतिलोम विवाह (उच्चवर्ण की स्त्री + निम्न वर्णी पुरूष).

1. बैनर्जी, <u>गुप्त लैक्चर्स</u>, पृष्ठ 118
2. <u>कामसूत्र</u>, पृष्ठ 20
3. <u>मनुस्मृति</u>, 10.10

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उच्च वर्ण के पुरूष द्वारा अपने वर्ण के अतिरिक्त अपने वर्ण से निम्न वर्ण की स्त्री से विवाह करना "अनुलोम विवाह" कहलाता था.[1] अनुलोम विवाह धर्मसम्मत था. वशिष्ट ने ब्राम्हण के अन्य तीन वर्णों की स्त्रियों से जन्मे पुत्रों को समान रूप से दाय के अधिकारी माना है.[2] स्मृतिकार मनु[3] ने तो उस संतान को ब्राम्हण ही कहा है. मनु एवं याज्ञवल्क्य ने अनुलोम विवाहों से उत्पन्न संतति का नामकरण भी किया है.[4] स्मृतिकार याज्ञवल्क्य ने भी शूद्र माता की संतान को ब्राम्हण पिता की सम्पत्ति में उत्तराधिकार स्वीकारा है[5] किंतु गुप्त काल तक इस स्थिति में परिवर्तन आ गया और वृहस्पति ने इसके इस दायाधिकार को अस्वीकार कर दिया.[6] उच्च वर्ण की स्त्री द्वारा निम्न वर्ण के पुरूष के साथ विवाह "प्रतिलोम विवाह" कहलाता था. यह हेय दृष्टि से देखा जाता था तथा इस प्रकार के विवाहों को कोई मान्यता प्राप्त नहीं थी.

अनुलोम एवं प्रतिलोम विवाहों के प्रति उपरोक्त धर्म शास्त्रीय दृष्टिकोण होते हुए भी व्यावहारिक रूप से दोनों ही प्रकार के विवाह राजपरिवारों में निर्विघ्न रूप से सम्पादित होते थे. इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हमें गुप्त वंश में ही देखने को मिलते हैं. वैश्य गुप्तवंशी राजकुमारी प्रभावती गुप्त (चन्द्रगुप्त द्वितीय की

---

1. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.13, सोशल लाइफ इन एंशेंट इंडिया, पेज 103
2. घुरये, कास्ट एंड रेस इन इंडिया, पृष्ठ 59
3. मनुस्मृति, 10.6
4. मनुस्मृति, 10.8-40
   याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.91
5. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2.13
6. वृहस्पति स्मृति, पुत्र विभाग, 44

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुत्री) का विवाह वाकाटक नरेश ब्राम्हण रूद्रसेन से हुआ था।[1] इसी प्रकार चन्द्रगुप्त द्वितीय की पत्नी कुबेरनागा नागवंशी थी तथा नाग क्षत्रिय थे. इस प्रकार यह प्रतिलोम विवाह का उदाहरण है (वैश्य + क्षत्रिय). चन्द्रगुप्त प्रथम का विवाह लिच्छिवि राजकुमारी कुमारदेवी से, जो कि क्षत्रिय थे से हुआ यह भी प्रतिलोम विवाह था. कदम्ब और गुप्तकुल के विवाह सँबंध ब्राम्हण-वैश्य प्रतिलोम प्रकार के विवाह का उदाहरण है. कदम्बों ने अपने अभिलेखों में इसका सगर्व उल्लेख किया है.[2] मात्र राजपरिवारों में ही नहीं अपितु सामान्य नागरिकों में भी अनुलोम, प्रतिलोम प्रकार के विवाह प्रचलित थे. इसके प्रमाण तत्कालीन नाटकों एवँ आख्यानों में है. गणिकापुत्री एवँ गणिका दासियों से भी विवाह करना निषिद्ध नहीं था. शूद्रक के नाटक <u>मृच्छकटिकम्</u> में ब्राम्हण चारूदत्त द्वारा गणिका वसंतसेना से और ब्राम्हण शार्विलक द्वारा वसंतसेना की दासी से विवाह करने का वर्णन है.

<u>अस्पृश्यता:</u>

अस्पृश्यता की भावना केवल भारत में ही नहीं प्रत्युत इसका परिदर्शन अन्य महाद्वीपों, विशेषत: अमेरिका, दक्षिण अफ्रीका में भी होता है.[3] भारतीय जाति व्यवस्था में चार वर्णों के अतिरिक्त भी कुछ ऐसी जातियाँ हैं जो अस्पृश्य समझी जाती हैं तथा अत्यजों के नाम से प्रसिद्ध हैं. इनमें चाण्डाल मुख्य हैं. स्मृतियों में वर्णित अन्त्यजों के नाम आरँभिक वैदिक साहित्य में

---

1. <u>एपीग्रैफिया इण्डिका</u>, 15, पृष्ठ 41
   <u>जर्नल ऑव प्रोसीडिंग्स एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल</u>, 20 (नं. सी), पृष्ठ 58
   <u>आर्केलाजिकल सर्वे ऑफ वेस्टर्न इण्डया</u>, 3, पृष्ठ 140
2. <u>एपीग्रैफिया इण्डिका</u>, 8 पृष्ठ 31
3. काणे, <u>धर्मशास्त्र का इतिहास</u>, भाग 1, पृष्ठ 167

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आये हैं, किंतु ये वैदिक शब्द एवं नाम अस्पृश्य जातियों के द्योतक नहीं हैं. उपनिषदों में वर्णित चाण्डाल अस्पृश्य प्रमाणित नहीं किया जा सकता.[1]

मनु के अनुसार सभी प्रतिलोम संतान शूद्र हैं.[2] किंतु शूद्र एवं चाण्डाल में अंतर है. शूद्रों के बाद अत्यजों {चाण्डालों} की गणना होती है. कोई भी शूद्र अन्त्यज हो सकता था किंतु अन्त्यज शूद्र नहीं हो सकते थे.[3]

अस्पृश्यता केवल जन्मजात नहीं होती, उसके उद्गम के और भी कई स्त्रोत हैं:

1. भयँकर पापों अर्थात् दुष्कर्मों से लोग जाति निष्कासित एवं अस्पृश्य हो सकते हैं. मनु के अनुसार ब्रम्हहत्या करने वाले, ब्राम्हण के सोने की चोरी करने वाले या सुरापान करने वाले को जाति से बाहर कर देना चाहिए, न तो कोई उनके साथ न उन्हें स्पर्श करे, न उनकी पुरोहिती करे और न उनके साथ कोई विवाह संबंध स्थापित करे, वे लोग वैदिक धर्म से विहीन होकर संसार में विचरण करें.[4]

2. धर्म संबंधी घृणा एवं विद्वेष के कारण अस्पृश्यता उत्पन्न होती है.[5]

3. अस्पृश्यता उत्पन्न होने का कारण है कुछ लोगों का, जो साधारणतः अस्पृश्य नहीं हो सकते थे कुछ विशेष व्यवसायों का पालन करना यथा-----देवलक, ग्राम के पुरोहित, सोमलता विक्रय

---

1. काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 167
2. बृहदारण्यकोपनिषद्, 1.3
   मनुस्मृति, 10.41
3. घुरये, कास्ट एण्ड रेस इन इण्डिया, पृष्ठ 208
   उपाध्याय, वासुदेव, गुप्त साम्राज्य का इतिहास, भाग 2,
4. मनुस्मृति, 9.235-39
5. अपरार्क, पृष्ठ 923, स्मृतिचन्द्रिका, 1, पृष्ठ 118

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर्ता को स्पर्श करने से वस्त्र परिधान सहित स्नान करना पड़ता था।[1]

4. कुछ परिस्थितियों में पड़ जाना----यथा रजस्वला स्त्री के स्पर्श, पुत्रोत्पन्न होने के दस दिन की अवधि में स्पर्श, सूतक में स्पर्श, शवस्पर्श आदि में वस्त्र सहित स्नान करना पड़ता था।[2]

5. म्लेच्छ या कुछ विशिष्ट देशों का निवासी होना।

इसके अतिरिक्त स्मृतियों के अनुसार कुछ ऐसे व्यक्ति जो गंदा व्यवसाय करते थे, अस्पृश्य माने जाते थे, यथा-----कैवर्न (मछुआ), मृगयु (मृग मारने वाला), व्याध (शिकारी), सैनिक (कसाई), शाकुनिक (पक्षी पकड़ने वाला या बहेलिया), धोबी, जिन्हें छूने पर स्नान करके ही भोजन किया जा सकता था।[3]

चाण्डालों को समाज में नीच दृष्टि से देखा जाता था। वे लोगों के साथ गाँवों अथवा शहरों में रहने के अधिकारी नहीं थे। उनका रात्रि में नगर प्रवेश निषेध था। दिन में भी जब वे नगर में प्रवेश करते तो लकड़ी से ढोल बाजाते चलते थे जिससे लोग मार्ग से हट जायें तथा उनके स्पर्श से बच जावें।[4] बाण की कादम्बरी में शूद्रक के दरबार में प्रवेश करने वाली "चाण्डालकन्या" वहाँ पहुँचकर बाँस के डंडे से फर्श पीटती है, जिससे उसके आने का पता राजा को चल जाय। मृच्छकटिकम् एवं मुद्राराक्षस में चाण्डालों का वर्णन मिलता है।

---

1. काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 168
2. मनुस्मृति, 5.85
3. काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 168
4. गाइल्स, ट्रेवेल्स ऑफ फाहियान, पृष्ठ 21
   गुप्त, परमेश्वरी लाल, गुप्त साम्राज्य, 1970, पृष्ठ 420

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अस्पृश्यता संबंधी विधान किसी जाति संबंधी विद्वेष के प्रतिफल नहीं थे, प्रत्युत उनके पीछे मनोवैज्ञानिक या धार्मिक धारणायें एवँ स्वास्थ्य संबंधी विचार थे, जो मोक्ष के लिए परम आवश्यक माने गये थे, क्योंकि अँतिम छुटकारे {मोक्ष} के लिए शरीर एवँ मन से पवित्र एवँ स्वच्छ होना अनिवार्य था.[1] प्राचीन हिंदू लोग अस्वच्छता से भयाकुल रहा करते थे, अतः कुछ व्यवसायों को, यथा----झाडू देने, चर्मशोध, श्मशान रक्षा आदि को बुरे एवँ अस्वच्छ व्यवसायों में गिनते थे. इस प्रकार का पृथकत्व बुरा नहीं माना जा सकता. अस्पृश्यता के भीतर जो मान्यता एवँ धारणा पायी जाती है, वह मात्र धार्मिक एवं क्रिया सँस्कार संबंधी है. हिन्दू के घर में मासिक धर्म के समय माता, बेटी, बहिन, स्त्री, पतोहू आदि सभी अस्पृश्य मानी जाती हैं.

प्राचीनकाल में बहुत से व्यवसाय वंशानुक्रमिक थे, अतः क्रमशः यह विचार ही घर करता चला गया कि वे लोग जो ऐसी जाति के होते हैं, जो गन्दा व्यवसाय करते हैं, जन्म से ही अस्पृश्य मानते जाते थे.

प्राचीन धर्मसूत्रों में केवल चाण्डाल को ही अस्पृश्य माना है. विष्णुधर्मसूत्र एवँ कात्यायन ने चाण्डालों को अस्पृश्यों की श्रेणी में रखा है.[2] गौतम धर्मसूत्र[3] के अनुसार चाण्डाल, ब्राम्हणी से शूद्र द्वारा उत्पन्न सँतान है अतः वह प्रतिलोमों में अत्यन्त गर्हित प्रतिलोम है. मनु[4] ने भी चाण्डालों की उत्पत्ति, ब्राम्हनी

---

1. काणे, पी.वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 168
2. काणे, पी.वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 169
   विष्णुधर्मसूत्र, 104
3. गौतमधर्मसूत्र, 4.15 एवँ 23
4. मनुस्मृति, 10.12

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथा शूद्र से उत्पन्न संतान से बताई है.

मनु के अनुसार केवल अन्ध्र, मेद, चाण्डाल एवं श्वपच को गाँव के बाहर तथा अन्त्यावसायी को श्मशान में रहने को कहा है. इससे स्पष्ट है कि अन्य हीन जातियाँ गाँव में रह सकती थीं, तथा दिवाकीर्ति (चाण्डाल), उदक्या (रजस्वला), पतित (पाप करने पर निष्कासित), सूतिका (पुत्रोत्पत्ति करने पर नारी), शव और शव को छू लेने वाले को छू लेने पर स्नान की व्यवस्था दी है. अतः मनु ने चाण्डाल, रजस्वला, तथा सूतिका को एक ही श्रेणी में रखते हुए अस्पृश्य बताया है.

प्राचीन स्मृतियों जैसे मनुस्मृति और याज्ञवल्क्यस्मृति ने चाण्डाल या पतित की छाया अपवित्र होने का उल्लेख नहीं किया है किंतु आगे चलकर कुछ स्मृतियों ने चाण्डाल की छाया को अपवित्र मानकर, छाया स्पर्श से स्नान करना आवश्यक बताया. स्मृतिकार बृहस्पति का यही विचार है.[1]

स्मृतिकारों ने अस्पृश्यता के कुछ अपवाद भी बताये हैं जब अस्पृश्य का स्पर्श अस्पृश्यता का द्योतक नहीं होता. बृहस्पति के अनुसार मंदिर, देवयात्रा, विवाह, यज्ञ एवं सभी उत्सवों में किसी अस्पृश्य का स्पर्श अस्पृश्यता नहीं कहला सकता.[2]

विष्णुधर्मसूत्र में अस्पृश्य द्वारा तीन उच्च वर्णों का स्पर्श करने पर उसे पीटे जाने का दण्ड देने का विधान है किंतु याज्ञवल्क्य ने ऐसे दण्ड के अपराधी को मात्र 100 पण दंड की व्यवस्था की है.

1. बृहस्पति स्मृति.
   काणे, पी.वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 170
2. काणे, पी.वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 170

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

<u>आश्रम व्यवस्था:</u>

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है उसके जीवन में समाज का स्थान महत्वपूर्ण है. मनुष्य के जीवन को 4 भागों में विभाजित कर उसके अलग अलग कर्तव्य एवँ कर्म निर्धारित किये गये हैं. जीवन का यह विभाजन "आश्रम" कहलाता है. आश्रम निम्न प्रकार के हैं:

1. ब्रम्हचर्य,
2. गृहस्थाश्रम,
3. वानप्रस्थाश्रम, एवँ
4. संन्यासाश्रम.

जीवन के प्रारँभिक 25 वर्ष ब्रम्हचर्याश्रम के थे. इस अवधि में व्यक्ति का उत्तरदायित्व था कि वह स्वयँ को शिक्षित कर अपनी बौद्धिक क्षमता को विकसित करे. अगले 25 वर्ष व्यक्ति गृहस्थाश्रम में व्यतीत करे. गृहस्थ रहते हुए वह विवाह करके पारिवारिक जीवन व्यतीत करते हुए म समाज के प्रति अपने कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों का निर्वाह करे. सांसारिक बँधनों से स्वयँ को मुक्त रखते हुए वानप्रस्थाश्रम में, धार्मिक भाव से चिंतन कर अगले 25 वर्ष बितायें. अँतिम आश्रम संन्यास आश्रम में लौकिक चिन्ताओं का परित्याग कर पारलौकिक चिंतन स्वयँ को ईश्वर की प्राप्ति में लीन करे. मनुष्य द्वारा समय के अनुसार व्यवस्थित तरीके से अपनी जीवन की सभी आकाँक्षायें पूर्ण करना ही आश्रम व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य था किंतु गुप्तकाल में इसका व्यावहारिक रूप क्या था, तथा इसकी प्राप्ति में नारियों का क्या योगदान था, इसका रूप जानना आवश्यक है.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

1. <u>ब्रम्हचर्याश्रम:</u>

वर्तमान शिक्षा काल ही तत्कालीन ब्रम्हचर्याश्रम था. अत: शिक्षा का आरंभ पाँच वर्ष की अवस्था में उपनयन सँस्कार कर किया जाता था. इस प्रकार वह 25 वर्ष की अवस्था तक ज्ञानार्जन करता था. गुप्तकाल में ब्रम्हचर्याश्रम के पालन में नारी की क्या स्थिति थी यह प्रश्न महत्वपूर्ण है.

वैदिक काल में नारियों को पुरूषों के समान ही शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था. वे विद्याभ्यास हेतु ब्रम्हचर्य व्रत धारण करती थीं. उनका उपनयन संस्कार भी विधिवत् सम्पादित होता था. परवर्ती काल में नारी शिक्षा का महत्व था किंतु वे वैदिक अध्ययन से वंचित कर दी गई थीं. मनु ने स्त्रियों के उपनयन सँस्कार की बात करते हुए उन्हें वैदिक मँत्र उच्चारण का निषेध बताया है.[1] उनका मत है कि जिस यज्ञ में नारी का योग हो उस आयोजन में ब्राम्हणों को भोजन नहीं करना चाहिए.[2] गुप्तकाल आते आते स्त्रियाँ उपनयन सँस्कार से वँचित कर दी गईं थीं. उनकी शिक्षा के विषय वैदिक साहित्य के स्थान पर लौकिक साहित्य हो गये.[3] स्त्री शिक्षा का विस्तृत विवरण अध्याय 9 : गुप्तकालीन नारी शिक्षा का स्वरूप में.

<u>स्मृतिचन्द्रिका</u> में उद्धृत <u>हारीतधर्मसूत्र</u> तथा अन्य निबंधों से स्पष्ट है कि स्त्रियाँ 2 प्रकार की होती थीं :

1. ब्रम्हवादिनी, (ज्ञानिनी) सद्योद्वाहा,
2. सद्योवधू (जो सीधे विवाह कर लेती थी).

---

1. <u>मनुस्मृति,</u> 2.66
2. <u>मनुस्मृति,</u> 4.205
3. गुप्त, परमेश्वरी लाल, <u>गुप्त साम्राज्य,</u> 1970, पृष्ठ 427-28

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इनमें ब्रम्हवादिनी को उपनयन करना, अग्नि सेवा करना, वेदाध्ययन करना, अपने ही घर में भिक्षाटन करना इत्यादि, किंतु सद्योवधुओं का विवाह के समय केवल उपनयन कर दिया जाता था. आश्वलायन गृहसूत्र में स्त्रियों के समावर्तन संस्कार का प्रसँग है. अत: स्पष्ट है कि ब्रम्हवादिनी नारियों का उपनयन गर्भाधान के आठवें वर्ष होता था, वे वेदाध्ययन करती थीं और उनका छात्रा जीवन रजस्वला होने के पूर्व समाप्त हो जाता था. यम के अनुसार प्राचीन काल में मूँज की मेखला बाँधना {उपनयन} नारियों के लिए भी एक नियम था. उन्हें वेद पढ़ाया जाता था, वे सावित्री {पवित्र गायत्री मँत्र} का उच्चारण करती थीं, उन्हें उनके पिता, चाचा या भाई पढ़ा सकते थे. अन्य कोई बाहरी पुरूष नहीं. वे गृह में ही भिक्षा माँग सकती थीं, उन्हें मृगचर्म, वल्कल वसन नहीं पहनना पड़ता था और न वे जटायें रखती थीं. मनु ने जातकर्म से उपनयन तक के सँस्कारों का वर्णन कर निष्कर्ष यह निकाला कि "ये कृत्य नारियों के लिए भी ज्यों के त्यों किए जाते थे, किंतु बिना मँत्रों के, परँतु केवल विवाह के सँस्कार में स्त्रियों के लिए वैदिक मँत्रों का प्रयोग होता था. अत: स्पष्ट है कि मनु के काल में स्त्रियों का उपनयन नहीं होता था, किंतु प्राचीन काल में यह होता था.[1]

गृहस्थाश्रम:

मनु ने गृहस्थाश्रम को सब सुखों का सार कहा है. जिस प्रकार वायु से समस्त प्राणी जीवित रहते हैं, उसी प्रकार गृहस्थाश्रम पर ही अन्य आश्रम आश्रित हैं. जैसे नदियाँ समुद्र में जाकर शान्त

1. काणे, पी.बी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, 1980 पृष्ठ 210-20

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हो जाती हैं उसी प्रकार अन्य आश्रमों के लिए गृहस्थाश्रम आधार है. इसी कारण वेद, स्मृति सब इस आश्रम को उत्तम कहते हैं.[1] अत: मनुष्य को विवाह कर गृहस्थ जीवन बिताना चाहिए. गृहस्थाश्रम का महत्व त्रिवर्ग की प्राप्ति था. मनुष्य अतिथिपूजा, पंचमहायज्ञ, जाप होम, तर्पण, सन्ध्या वन्दना से धर्म, जीविकोपार्जन से अर्थ, स्त्री और पुत्र की प्राप्ति से काम[2] यही धर्म, अर्थ, काम त्रिवर्ग की उपलब्धि गृहस्थाश्रम का महत्व कहा जा सकता है. इसमें विवाह कर ही धार्मिक कृत्य अथवा पुत्र प्राप्ति की जा सकती थी. अत: गृहस्थाश्रम में पत्नी का उतना ही महत्व था.

3. <u>वानप्रस्थाश्रम:</u>

वानप्रस्थ एवं वैखानस- वानप्रस्थ के लिए प्राचीनकाल में संभवत: वैखानस शब्द प्रयुक्त होता था.[3] गृहस्थाश्रम के समस्त सुखों को भोगने के पश्चात् व्यक्ति (गृहस्थ), वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश करता था. धार्मिक क्रियाओं के रहते हुए भी गृहस्थाश्रम अर्थ और काम प्रधान है. पूर्णरूपेण इन्द्रियजन्य तृप्ति हो जाने पर स्वत: मनुष्य का मन क्रमश: भोग विलास से विरक्ति की ओर उन्मुख होता जाता है, साथ ही पुत्र पुत्रियों में समस्त उत्तरदायित्व सँभालने की योग्यता आने पर, उसके पारिवारिक कर्तव्यों की भी इति श्री हो जाती है. अत: वानप्रस्थाश्रम में सांसारिक मोह और बँधनों का त्याग ही चरम उद्देश्य है. पारिवारिक बंधनों को परित्याग कर, स्त्री के साथ वन में जाकर तपस्या करना, ईश्वर में

1. <u>मनुस्मृति</u>, 3.77-78, 3.89-90
2. <u>रघुवंशम्</u>, 1.76
   काणे, पी.बी., <u>धर्मशास्त्र का इतिहास</u>, भाग 1, पृष्ठ 268
3. काणे, पी.बी., <u>धर्मशास्त्र का इतिहास</u>, भाग 1, पृष्ठ 482

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ध्यान लगाना तथा मुनिवृत्ति को ग्रहण करना ही वानप्रस्थाश्रम की सार्थकता है.

यथार्थतः युवावस्था में विलासिता की वस्तुओं से युक्त भवनों में रहना तथा वृद्धावस्था में पत्नी के साथ पेड़ों के नीचे रहना ही वानप्रस्थाश्रम में प्रत्येक व्यक्ति का आदर्श था.[1] धर्म शास्त्रों ने वानप्रस्थ की अवस्था 50 वर्ष के बाद की निर्धारित की, किंतु यह अनिवार्य नहीं था, साथ ही गृहस्थ कभी भी अपने गृहस्थ जीवन से विरक्त हो सकता था.

वानप्रस्थाश्रम में व्यक्ति अपनी पत्नी को साथ रख सकते थे[2] किंतु उन्हें पूर्णतः काम से विरक्त होकर रहना होता था. साथ ही पत्नी के अतिरिक्त अन्य कोई पारिवारिक संबंधी उसके साथ नहीं जा सकता था क्योंकि इससे वानप्रस्थ के चरम लक्ष्य मोह त्याग की सार्थकता नहीं हो पाती थी अर्थात् स्त्रियाँ भी वानप्रस्थी हो सकती थीं. वैरवानस के नियमों का पालन करती थीं. ऋषि कण्व के आश्रम में रहती हुई शकुन्तला के जीवन को "वैरवानसव्रत" कहा गया है.[3]

वानप्रस्थियों के लिए स्मृतियों में नियमों का विधान है. जिनका पालन करना उन्हें अनिवार्य है. वानप्रस्थितियों के लिए जँगलों या तपोवन में रहना अनिवार्य नहीं था, अपितु यह उनकी अपनी व्यक्तिगत इच्छा पर निर्भर था, कि वे नगर से बाहर कुटिया

1. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 7.20
2. मनुस्मृति, 6.3
   याज्ञवल्क्य स्मृति, 3.45
   अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 4.20 एवँ अंक 7
   रघुवंशम्, 3.70, 7.71
3. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 1.25

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बनाकर रहें.[1] अथवा अरण्य में तपस्वियों के आश्रम में चले जावें.[2] उन्हें मात्र रहने के ही स्थान की आवश्यकता थी. विलासिता से परिपूर्ण कोई भवन नहीं, अपितु आवश्यकता की पूर्ति के लिए वे या तो कुटिया बनाकर[3] या ऐसे ही पेड़ों के नीचे रहते थे.[4] मृगचर्म[5] अथवा कुश[6] की चटाई पर सोते और वल्कल पहनते थे तथा प्रकाश के लिए इँगुदी के तेल का दीपक प्रयोग में लाया जाता था.[7] इन नियमों का विस्तृत विवरण काणे ने किया है.[8]

4. संन्यासाश्रम:

सबसे अँतिम आश्रम "सन्यास आश्रम" कहलाता था. संन्यास एवँ वानप्रस्थ आश्रम में अधिक अँतर नहीं था. वानप्रस्थ योगसाधना एवँ वैराग्य का प्रारँभ था तो सन्यास उसकी परिपक्वता. मोक्ष पाने के उद्देश्य से योगियों से शास्त्र चर्चा मन की एकाग्रता, योगबल से पाँचों पवनों पर अधिकार एवँ सत, रज और तम पर विजय पाना ही सन्यास है. वानप्रस्थी प्रारंभ में अपनी स्त्री भी साथ रख सकता था किंतु संन्यासी ऐसा नहीं कर सकता था अर्थात् संन्यासी को मुख्यत: अपनी इन्द्रियों पर सँयम रखकर परम तत्व का ध्यान करना पड़ता था. जन साधारण में चाहे इन आश्रमों का अधिक प्रचार न हो परँतु गुप्तकालीन आदर्श अवश्य ही यही था.[9]

1. रघुवँशम्, 8.14
2. रघुवँशम्, 3.70
3. रघुवँशम्, 1.95, 14.81, 8.14
4. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 7.20
5. रघुवँशम्, 14.81
6. रघुवँशम्, 1.95
7. रघुवँशम्, 14.81
8. काणे, पी.वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 483-85
9. रघुवँशम्, 8.17-24

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुप्तकाल में पुरूषों की भाँति ही गृहस्थ आश्रम का परित्याग कर सन्यास आश्रम में प्रवेश करती थीं. इस प्रकार की स्त्रियाँ बौद्ध धर्म की अनुयायी अधिक मात्रा में दिखाई देती हैं. ऐसी बौद्ध भिक्षुणियाँ सिर मुड़ाये, गैरिक वस्त्र पहले बौद्ध बिहारों में रहती हुई लोकोपकार एवँ सदाचार का जीवन व्यतीत करती थीं. कालिदास ने परिव्राजिका कौशिकी का वर्णन मालविकाग्निमित्रम् में किया है।[1] कालिदास ने काव्यों में परिव्राजिका का कई जगह उल्लेख किया है. प्रारँभिक काल मे ये भिक्षुणियाँ बड़े सदाचार से रहीं किंतु धीरे धीरे इनके आचरण में शिथिलता आती गई फलस्वरूप ये बौद्ध सँघों में व्यभिचार फैलाने का कारण बन गई।[2] निश्चित ही इन्हीं कारणों से हिंदू धर्म में सामान्यत: नारियों के लिए अग्रही होकर सन्यासियों जैसा इधर उधर घूमना अच्छा नहीं माना जाता रहा है।[3]

सँयुक्त परिवार:

पूर्ववर्ती काल के समान ही गुप्त काल में सँयुक्त परिवार व्यवस्था समाज में प्रचलित थी. वयोवृद्ध व्यक्ति का पूरे परिवार पर अनुशासन होता था और परिवार के सभी लोग उसका अनुशासन मानते थे.[4] ठीक इसी प्रकार उसकी पत्नी का भी पारिवारिक स्थिति में उतना ही महत्त्व था. गुप्तकालीन अभिलेखों से स्पष्ट है कि पिता की मृत्यु के उपराँत भी आठ वयस्क पुत्र, असँख्य पौत्र और भाई सँयुक्त रूप से एक ही परिवार में रहते थे.[5] एक अन्य

1. मालविकाग्निमित्रम्, 1. 14
2. उपाध्याय, वासुदेव, गुप्त साम्राज्य का इतिहास, भाग 2, 1969, पृष्ठ 248
3. काणे, पी. वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 497
4. गुप्त, परमेश्वरी लाल, गुप्त साम्राज्य, 1970, पृष्ठ 437
5. एपीग्रैफिया इण्डिका, 1, पृष्ठ 6, 12, पृष्ठ 2, एपीग्रैफिया इण्डिका, 19, पृष्ठ 120

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अभिलेख में अपने, अपनी माँ, पत्नी, बेटे बेटी, भाई, दो भतीजे और दो भतीजियों के आत्मिक सुख के लिए व्यवस्था का उल्लेख है.[1] निश्चित ही गुप्तकालीन संयुक्त पारिवारिक व्यवस्था सुदृढ़ रूप से और सद्भावनापूर्वक कई पीढ़ियों तक चलती रहती थी. गुप्त राजाओं के अभिलेखों में वर्णित वंशावली में अपने पूर्वजों का (पिछली कई पीढ़ियों तक का) ससम्मान अंकन इसका प्रबल उदाहरण है. राजा किसका प्रपौत्र, किसका पौत्र तथा किसका पुत्र था इसका स्पष्ट अंकन अभिलेखों में है. समुद्रगुप्त के एरण प्रस्तर अभिलेख में दत्त देवी को अश्व, धन, धान्य की स्वामिनी तथा बहुतेरे पुत्रों और पौत्रों से युक्त घर में प्रसन्नता पूर्वक विचरण करते हुए कहा गया है.[2] निश्चित ही सँयुक्त परिवार में पत्नी माता तथा दादी के रूप में स्त्री की महत्त्वपूर्ण भूमिकायें एवँ स्थान था. विजयी स्कंदगुप्त के साथ ही उसकी माता भी रहती थी क्योंकि विजय श्री प्राप्त कर सर्वप्रथम वह अपनी माता के ही पास आया.[3] इसके अतिरिक्त और भी अभिलेख हैं जिनमें पुत्र, पौत्र शब्द स्पष्ट रूप से आया है जो गुप्तकाल में संयुक्त परिवार व्यवस्था का प्रमाण है.[4] संयुक्त परिवार व्यवस्था में माता का अवश्य ही

1. इण्डियन ऐण्टीक्वेरी, 11, पृष्ठ 258
2. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3, संख्या 2. 2-क
   समुद्रगुप्त का एरण प्रस्तर अभिलेख, पृष्ठ 26
3. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3, संख्या 13. 7
   स्कंदगुप्त का भितरी प्रस्तर स्तंभ लेख, पृष्ठ 70
4. फ्लीट, भारतीय अभिलेख सँग्रह, भाग 3, संख्या
   महाराज शर्वनाथ का खोह ताम्रपत्र अभिलेख, संख्या 32. 20, पृष्ठ 168
   महाराज प्रवरसेन द्वितीय का सिवनी ताम्रपत्रलेख, संख्या 56. 35 पृष्ठ 168
   महाराज प्रवरसेन द्वितीय का चम्मक ताम्रपत्र लेख, संख्या 55. 34, पृष्ठ 302
   महाराज धरसेन द्वितीय का मालिया ताम्रपत्रांकित लेख, संख्या 38. 24, पृष्ठ 208

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उच्च स्थान था क्योंकि वंशावली में पत्नी के साथ ही माता, दादी, परदादी एवं एक और पीढ़ी की दादी का उल्लेख है.

स्मृतियों में मनु ही ऐसे हैं जिन्होंने कौटुम्बिक व्यवस्था का विशद वर्णन किया है. आदर्श संयुक्त कुटुम्ब के वातावरण में ही निःस्वार्थ श्रद्धा, पारस्परिक सहयोग, दया, सहानुभूति, धैर्य संतोष, विनम्रता आदि सद्गुणों का निर्माण होता था. अतः विद्वान ब्राम्हणों के कुटुम्ब विद्या और ज्ञान के दीपक थे. विद्यार्थी ऐसे कुटुम्बों में रहकर विद्याध्ययन करते थे. गुप्तकालीन साहित्य भी संयुक्त परिवार व्यवस्था के उदाहरण मिलते हैं.[1]

पर्दा प्रथा:

गुप्तकालीन समाज में पर्दा प्रथा नहीं थी.[2] राजाओं की रानियां अलंकृत हो राजसभा में आती थीं. साधारण वर्ग की स्त्रियाँ भी वस्त्राभूषों से सुसज्जित होकर, सार्वजनिक कार्यों में सम्मिलित होती थीं.[3] चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री एवं वाकाटक नरेश रुद्रसेन द्वितीय की पत्नी प्रभावती गुप्ता ने, जो उच्च पुत्रों श्रेणी की शिक्षिता महिला थी, अपने दोनों नाबालिग पुत्रों की ओर से राज्य का सफल संचालन किया.[4] चीनी यात्री फाहियान, ह्वेनसाँग के यात्रा वर्णन में कहीं भी स्त्रियों में पर्दा प्रथा के प्रचलन का उल्लेख नहीं है. कुमारगुप्त तथा बन्धुवर्मन के मँदसौर प्रस्तर अभिलेख में उल्लेख है कि मालव नगर के हाट में स्त्रियों की बहुलता

---

1. रघुवंशम्, 14.85
   रघुवंशम्, 17.7
2. उपाध्याय, वासुदेव, गुप्त साम्राज्य का इतिहास, भाग 1, 1969 पृष्ठ 244
3. वकलदार, सोशल लाइफ इन एन्शेंट इंडिया, पृष्ठ 173
4. एपिग्रेफिया इण्डिका, भाग 15, पृष्ठ 41

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थी, वे स्वतंत्रता से बड़े समूहों में निरन्तर गानरत प्रसन्न मुद्रा में विचरण करती थीं.[1] ईस्वी सन् की प्रारंभिक शताब्दियों में निर्मित मूर्तियों एवं बाघ तथा अजंता के चित्रों में कहीं भी पर्दा का प्रचलन नहीं है. गुप्तकालीन स्मृतियों में भी पर्दा प्रथा के प्रचलन के संकेत नहीं हैं. कवि कालिदास तथा भास ने पर्दा का कहीं उल्लेख नहीं किया है. कालिदास की सभी नारी पात्र शकुन्तला, इंदुमति, अनसूया, गौतमी, धारिणी इत्यादि के वर्णन में पर्दाप्रथा का अभाव है. कालिदास द्वारा सभी राजाओं के समक्ष इंदुमति के स्वयंवर का वर्णन है. पर्दाप्रथा के प्रचलित होने पर राजपरिवारों में स्वयंवर किसी भी स्थिति में संभव नहीं होता.[2] हवेनसांग के अनुसार हूण सरदार मिहिरकुल के पराजित हो, बंदी बनाये जाने पर गुप्त नरेश बालादित्य की माता उससे मिलने आईं और उनकी आज्ञानुसार वह मुक्त कर दिया गया.[3] गुप्तकालीन राजाओं के राजा रानी प्रकार सिक्के तथा अश्वमेध प्रकार सिक्कों पर राजा के साथ ही रानी का अंकन, जिसके उसके मुँह पर पर्दा नहीं है प्रमाणित करते हैं कि गुप्तकाल में पर्दा जैसी कोई चीज नहीं थी.[4] शूद्रक के <u>मृच्छकटिकम्</u> में भी पर्दा का अभाव है.[5] राज्यश्री बिना किसी परदे के हर्ष की राज्य सभा में जाती है तथा हवेनसांग तथा दिवाकर मित्र से, महायान दर्शन पर राज्यश्री के वार्तालाप का वर्णन मिलता है.

---

1. फ्लीट, <u>भारतीय अभिलेख संग्रह</u>, भाग 1, संख्या 18.11
   कुमारगुप्त तथा बन्धुवर्मन का मंदसौर प्रस्तरअभिलेख, पृष्ठ 104
2. <u>रघुवंशम्</u>, 6.10
3. वाटर, <u>हुवेनसांग</u>, भाग 1, पृष्ठ 288
4. अल्तेकर, <u>गुप्तकालीन मुद्रायें</u>, 1972
   गुप्तकालीन राजाओं के सभी सिक्कों में रानी पर्दा नहीं लिए है.
5. उपाध्याय, वासुदेव, भाग 2, पृष्ठ 244
   बील, <u>लाइफ ऑफ हुवेनसांग</u>, पृष्ठ 176

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दुष्यन्त के सम्मुख शकुन्तला का अवगुंठन आधुनिक परदे से बिल्कुल भिन्न था.

अतः 3 री शताब्दी के पश्चात् पर्दाप्रथा का प्रारंभ इस रूप में हुआ कि जब राजवंशों की स्त्रियाँ जन साधारण में जायें, तब अवगुण्ठन करें. अपने मुखमण्डल को ढँक लें. यह राजकीय प्रथा कुछ कुलीन और सम्पन्न सामन्त परिवारों ने भी अपनाना प्रारंभ कर दिया, यह भी कुछ सीमित अंशों में तथा सीमित राजवंशों में था.[1] किंतु गुप्तकाल में पर्दाप्रथा बिल्कुल नहीं थी.

<u>दास प्रथा:</u>

प्राचीन भारतीय समाज उन्नतिशील एवं सभ्य होते हुए भी दास प्रथा जैसे रोग से अछूता नहीं था. भारत के अतिरिक्त अन्य देशों-----बेबीलोन, मिस्त्र, यूनान, रोम तथा अन्य यूरोपीय राष्ट्रों में दासत्व पाया जाता था.[2] प्राचीन भारतीय समाज में दास प्रथा वैदिक काल से ही अस्तित्व में थी. दास प्रथा की उत्पत्ति सर्वप्रथम आत्मदान या आत्म समर्पण से ही होने का उल्लेख है.[3] स्मृतियों ने इस प्रथा को विशद रूप से वर्णित किया है. मनु[4] ने सात प्रकार के दासों का वर्णन किया है:

1. ध्वजाहृत, (युद्ध में जीता हुआ),
2. भक्तदास, (आत्मदान),
3. गृहज, (दासी का पुत्र),

---

1. अल्टेकर, <u>पोजीशन ऑफ वीमेन इन हिंदू सिविलिजेशन</u>, पृष्ठ 171
2. <u>इनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइंसेज</u>, भाग 14, पृष्ठ 74
3. <u>कात्यायन स्मृति</u>, अपरार्क, पृष्ठ 786, द्वारा उद्धृत कात्यायन
4. <u>मनुस्मृति</u>, 8.415

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

4. क्रीत, (खरीदा हुआ),
5. दत्रिम, (दूसरे स्वामी को दिया हुआ),
6. पैत्रिक, (दास के वंशज),
7. दण्डदास (दण्ड रूप में जो दास बनाया गया हो).

नारद एवं कात्यायन ने दासत्व का विस्तृत वर्णन किया है. नारद ने शुश्रूषक (जो दूसरों की सेवा करता है) को 5 भागों में विभाजित किया है:

1. वैदिक छात्र,
2. अन्तेवासी, (नवसिखुवा),
3. आधिकर्मकृत, (मेट या काम करने वालों को देखने वाले)
4. भृतक, (नौकर, वेतन पर काम करने वाला).
5. दास.

इनमें से प्रथम चार कर्मकार कहलाते थे जो सभी पवित्र कार्य करने के लिए बुलाये जाते थे किन्तु दासों को सभी प्रकार के कार्य करने पड़ते थे यथा----घर बुहारना, गन्दे गड्ढों, मार्ग, गोबर स्थलों को स्वच्छ करना, गुप्तांगों को खुजलाना या स्पर्श करना, मल मूत्र फेंकना इत्यादि.[1]

नारद के अनुसार दास 15 प्रकार के होते थे[2] :

1. घर में उत्पन्न,
2. खरीदा हुआ,
3. दान या किसी अन्य प्रकार से प्राप्त,
4. वसीयत में प्राप्त,
5. अकाल में रक्षित,
6. किसी अन्य स्वामी द्वारा प्रतिभूत,
7. बड़े ऋण से मुक्त,
8. युद्धबन्दी,
9. बाजी में विजित,

---

1. नारद स्मृति, 6.7
   काणे, पी.वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 174
2. काणे, पी.वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 174

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

10. "मैं आपका हूँ" कहकर दासत्व ग्रहण करने वाला,
11. सन्यास से च्युत,
12. जो अपने से कुछ दिनों के लिए दास बने,
13. भोजन के लिए बना हुआ,
14. दासी के प्रेम से आकृष्ट दास, {बड़वाहृत},
15. अपने को बेच देने वाला.

याज्ञवल्क्य के अनुसार सन्यास पतित व्यक्ति राजा का दास होता है।[1] वर्णों के अनुसार ही दास बनने का वर्णन याज्ञवल्क्य एवं नारद ने किया है. जैसे ब्राम्हण के अतिरिक्त तीनों वर्ण ब्राम्हण के, वैश्य या शूद्र क्षत्रिय के दास हो सकते हैं, किंतु क्षत्रिय किसी वैश्य या शूद्र का या वैश्य शूद्र का दास नहीं हो सकता.[2] कात्यायन के अनुसार ब्राम्हण किसी ब्राम्हण का भी दास नहीं हो सकता, किंतु यदि वह होना ही चाहे तो किसी चरित्रवान एवं वैदिक ब्राम्हण का ही, और वह भी केवल पवित्र कार्य करने के लिए हो सकता है तथा सन्यासच्युत ब्राम्हण को राज्य से निकाल बाहर करना चाहिए, किंतु सन्यासभ्रष्ट क्षत्रिय एवं वैश्य व्यक्ति राजा का दास होता है.[3] शूद्रक के मृच्छकटिकम्[4] नाटक से स्पष्ट है कि स्वामी दास के शरीर का अधीश होता था. साथ ही "दासी पुत्रों", जो खरीदी गई दासियों के पुत्र थे, का वर्णन है. ये दास महलों में ही रहते थे, किंतु "दासी पुत्र" क्रमशः बुरे अर्थ में प्रयुक्त होने लगा तथा "दासी पुत्र" होना निन्दनीय हो गया.

याज्ञवल्क्य के अनुसार दासी पुत्र {शूद्र पिता द्वारा}

---

1. याज्ञवल्क्य स्मृति, 3. 183
2. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2. 183, नारद स्मृति, अभ्यु. 39
   कात्यायन स्मृति, अपरार्क, पृष्ठ 786 द्वारा उद्धृत.
3. काणे, पी. वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 174
   कात्यायन स्मृति, अपरार्क, पृष्ठ 721 द्वाराउद्धृत.
4. मृच्छकटिकम्, अंक 8 एवं अंक 9

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पिता की इच्छा से अँशग्राही होता है. वह पिता की मृत्यु के पश्चात् आधे भाग एवँ भाई तथा विवाहिता पुत्रियाँ एवँ उनकी सँतान न होने पर {दासीपुत्र} सम्पूर्ण धन का अधिकारी होता है.[1] नारद[2] एवँ कात्यायन[3] ने किसी वैदिक छात्र शिक्षार्थी दास, स्त्री, नौकर या कर्मकर द्वारा कुटुम्ब के भरण पोषणार्थ धन लिया गया धन गृहस्वामी को देने का आदेश दिया है भले ही यह धन उसकी अनुपस्थिति में ही क्यों न लिया गया हो. मनु[4] ने अन्य गवाहों के अभाव में दास एवँ नौकर को भी गवाह माना है. मनु को दासियों के साथ पर्याप्त सहानुभूति थी. वे उनको उचित वेतन देने का आदेश देते हैं.[5] वे दासियों की दयनीय स्थिति पर तरस करते हुए कहते हैं कि राजा को अपने पुत्रों के अनुसार ही नाप में दासियों को शारीरिक दण्ड देना चाहिए.[6] फिरभी उनके अनुसारदासों की अपनी कोई सम्पत्ति नहीं. उनके द्वारा उपार्जित धन स्वामी का होता है.[7] यहाँ तक कि दासी का उत्पन्न पुत्र भी स्वामी का ही होता है.[8] किंतु दासी पुत्र के अधिकार के विषय में उनका विचार है कि दासी पुत्र {शूद्र पिता से उत्पन्न} विवाहिता स्त्री के पुत्रों के बराबर पितृधन में धन का भाग लेवे, ऐसी धर्म की व्यवस्था है.[9] याज्ञवल्क्य ने अवरुद्धा {केवल स्वामी की सेवा के लिए रखी हुई} अथवा भुजिष्या {किसी पुरुष विशेष को सौंपी हुई} दासी के

1. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2. 133-34
2. नारद स्मृति, ऋणादान, 12
3. कात्यायन स्मृति,
   काणे, पी. वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 175
4. मनुस्मृति, 8. 70
5. मनुस्मृति, 7. 125
6. मनुस्मृति, 8. 299-300
7. मनुस्मृति, 8. 416
8. मनुस्मृति, 9. 48-55
9. मनुस्मृति, 9. 179

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साथ संभोग करने वाले व्यक्ति को 50 पण का दंड निर्धारित किया है।[1] इसी प्रकार स्वैरिणी (पुरूष संभोग से जीविका चलाने वाली दासी) से संभोग करने पर 10 पण का दण्ड तथा सामूहिक रूप से होने पर प्रत्येक पुरूष को 24 पण का दण्ड निश्चित किया है।[2]

नारद के वर्गीकरण से स्पष्ट है कि भृत्य या नौकर तथा दास में अंतर था. भृत्य नौकरी करते हुए अपने धन का अधिकारी स्वयं होता था तथा पूर्णरूपेण स्वतंत्र था किंतु दास जो धन अर्जित करता था, उसका अधिकारी उसका स्वामी ही होता था किंतु दास सद्व्यवहार के अधिकारी होते थे. वे स्वामी के परिवार के एक अंग माने जाते थे. दास जीवन पर्यन्त दासता का बोझ उठायें, यह आवश्यक नहीं था. किन्हीं परिस्थितियों में दास अपने स्वामी के प्रतिबंधों या शर्तों को पूर्ण कर स्वतंत्र जीवन व्यतीत कर सकता था. स्वविक्रीत दास के अतिरिक्त अन्य सभी प्रकार के दासों को दासता से मुक्ति प्राप्त हो सकती थी. स्वामी के घर में जन्मा, दान अथवा दाय में प्राप्त दास अपने स्वामी की इच्छा एवं उदारता से मुक्त हो जाता था. यदि दासी को अपने स्वामी से कोई संतानोत्पत्ति हो जाये तो दासी एवं पुत्र दोनों दासत्व से छुटकारा पा लेते हैं.[3] नारद एवं याज्ञवल्क्य के विधान के अनुसार दास यदि अपने स्वामी की जीवन रक्षा करे तो दासता से मुक्ति पा लेता था.[4] इतना ही नहीं पुत्र की भाँति वसीयत में दाय का अधिकारी होता है.[5]

---

1. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2. 290
2. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2. 291
3. कात्यायन स्मृति, 723,
   काणे, पी. वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 174
4. नारद स्मृति, 5. 38, याज्ञवल्क्य स्मृति, 2. 182
5. नारद स्मृति, 5. 38
   काणे, पी. वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 174

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्यूत दास, ऋण दास और अकाल पीड़ित दास देय चुका देने पर मुक्त हो सकते थे. यह देय स्वयं अथवा सँबंधी हितैषी दे सकता था. दण्डदास भी अपने स्थान पर किसी दूसरे को देकर अपनी मुक्ति प्राप्त कर सकते थे.

दासता से मुक्ति की अत्यन्त साधारण तथा प्रतीकात्मक विधि नारद स्मृति में दी गई है. दास अपने कन्धे पर एक घड़ा रखकर स्वामी के सामने आता था और स्वामी उस घड़े को उसके कन्धे से उतार कर भूमि पर पटक देता था. कन्धे पर घड़े को ढोना उसकी दासता को और स्वामी द्वारा उसका पटका जाना, उसकी स्वतंत्रता का प्रतीक था. तदन्तर स्वामी उसके सिर पर अन्न और पुष्पयुक्त जल छिड़क कर जन समूह की उपस्थिति में उसकी मुक्ति की घोषणा करता था![1] इस प्रकार दास अपने दासत्व से मुक्ति पा लेता था. बलात् बंदी बनाये गये दास और क्रीत दास को यदि स्वामी मुक्त करना न चाहे तो राजा अपने अधिकार से उसे मुक्त कर सकता था.

अत: स्पष्ट है कि गुप्तकाल में दास प्रथा पूर्णरूप से प्रचलित थी, किंतु वे अच्छी स्थिति में थे तथा मनुष्योचित् सद्व्यवहार के पात्र एवँ स्वतँत्र होने के अधिकारी थे.

सती प्रथा :

भारत वर्ष में विधवाओं का सती हो जाना एक धर्म था. विधवाओं का सती होना, अर्थात् पति की चिता पर जलकर भस्म हो जाना केवल ब्राम्हण धर्म में ही नहीं पाया गया है, प्रत्युत यह

---

1. नारद स्मृति, 5.25-43
   गुप्त, परमेश्वरी लाल, गुप्त साम्राज्य, 1970, पृष्ठ 439

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रथा मानव समाज की प्राचीनतम् धार्मिक धारणाओं एवं अंध विश्वास पूर्ण कृत्यों में समाविष्ट रही है. सती होने की प्रथा प्राचीन यूनानियों, जर्मनों, स्लावों एवं अन्य जातियों में भी पाई गई है किंतु इसका प्रचलन बहुधा राजघरानों एवं भद्र लोगों तक ही सीमित रहा है.[1]

वैदिक काल में सती प्रथा के प्रचलन के स्पष्ट संकेत नहीं मिलते किन्तु ऋग्वेद[2] की एक ऋचा से निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि संभवत: अत्यंत प्राचीन काल में सती प्रथा का प्रचलन था और इस ऋचा के रचनाकाल तक मात्र प्रतीकात्मक क्रिया रह गई थी. वैदिक आर्यों में सती प्रथा के निषेध का कारण नितान्त व्यवहारिक प्रतीत होता है. अपने को सामरिक दृष्टि से अधिक सशक्त करने के लिए तथा वंश विस्तार के लिए उन्होंने प्रजनन कार्य में समर्थ विधवाओं को मृत्यु की विभीषिका से निकाल कर नव जीवन के प्रकाश में खड़ा किया तथा उन्हें पुन: समृद्ध एवं संतानयुक्त जीवन व्यतीत करने की सुविधा दी.[3]

गुप्तकाल में सती प्रथा का सर्वथा अभाव नहीं था. इस काल के स्मृति ग्रंथ सती प्रथा के प्रचलन को प्रमाणित करते हैं.

---

1. काणे, पी. वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 349
   डाई फ्रौ, पृष्ठ 56, 82-83.
   श्रैडर, प्री हिस्टारिक एण्टीक्वीटिज आफ आर्यन पीपुल, 1890, पृष्ठ 391.
   वेस्टरमार्क, ओरिजन एण्ड डेवलपमेंट आफ मॉरल आइडियाज, 1906, जिल्द 1, पृष्ठ 472-76
2. ऋग्वेद, 10.18.8
3. अल्तेकर, पोजीशन ऑफ वुमन इन हिन्दू सिविलिजेशन, पृष्ठ 118
4.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मनु[1] सतीप्रथा के विषय में मौन हैं क्योंकि उनके अनुसार विधवा को पति की मृत्यु के बाद ब्रम्हचर्य का पालन करना चाहिए. इसी प्रकार याज्ञवल्क्य ने भी सती प्रथा के विषय में अपने विचार व्यक्त नहीं किए हैं.

विष्णु स्मृति[2] एवँ बृहस्पति स्मृति[3] ने विधवा के जीवन के 2 मार्ग-----ब्रम्हचारिणी रहना या सती होना बताये हैं उनके अनुसार "स्त्री अर्द्धांगिनी होने के कारण पति की चिता पर जल सकती है अथवा शुद्ध जीवन व्यतीत कर सकती है". पाराशर ने भी सती प्रथा की प्रशँसा करते हुए उसके प्रतिफल के बारे में कहा कि जो स्त्री अपने स्वामी का अनुसरण करती है वह साढ़े तीन करोड़ वर्ष तक स्वर्ग में निवास करती है तथा पति का उद्धार करके उसके साथ ही आनँदित होती है.[4] साथ ही ब्रम्हचर्य व्रत में लीन विधवा की प्रशँसा भी की है : जो विधवा ब्रम्हचर्य व्रत में परायण हुई, अपना जीवन व्यतीत करती थी, वह ब्रम्हचारी के अनुरूप साढ़े तीन करोड़ वर्ष तक स्वर्ग को प्राप्त करती थी.[5]

विष्णुधर्मसूत्र ने सती होना विधवा की इच्छा पर निर्भर बताया है. उनके अनुसार विधवा ब्रम्हचर्य व्रत का पालन करे अथवा पति के साथ चिता रोहण करे.[6] इसका निर्णय स्वयँ उसे ही करना होता था. समाज द्वारा सती होना एक बाध्यता

---

1. मनुस्मृति, 5. 157-58
2. विष्णु स्मृति, 35. 14
3. बृहस्पति स्मृति, 25. 11
4. पाराशर स्मृति, 4. 32, 33
5. पाराशर स्मृति, 4. 31, 32
6. विष्णुधर्मसूत्र, 25. 14

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नहीं थी, आवश्यक नहीं थी. वृहस्पति भी सहगमन (सती) को विकल्प मानते हैं.[1]

पौराणिक समाज में भी सती प्रथा के प्रचलन के उदाहरण मिलते हैं. विष्णुपुराण में श्रीकृष्ण की मृत्यु के पश्चात् रूक्मणि इत्यादि रानियों द्वारा अग्निप्रवेश का वर्णन है.[2] रेवती ने भी बलराम के शरीर का आश्लेष कर, उसके अँगस्पर्श से शीतल हुई अग्नि की शरण ली थी.[3] काशिराज की कन्या ने अपने पति को पुनर्जन्म में भी प्राप्त करने के लिए चिता पर उसका (पति का) साथ दिया था.[4] वशिष्ट के शाप से नृप सौदास ने माँस भक्षण में प्रवृत होकर एक ब्राम्हण को खा लिया, उस ब्राम्हण की स्त्री ने अपने पति के अनुगमनार्थ चितारोहण किया था.[5] भावी अपमान से रक्षार्थ रेणुका ने सती होने का निर्णय लिया था.[6]

गुप्तकालीन सँस्कृत साहित्य में भी सती प्रथा के प्रचलन का वर्णन है. कालिदास ने रघुवँशम्[7] में कुमुदती के सती होने का उल्लेख किया है. मृच्छकटिकम् में धूता सती होने को तैयार दिखाई देती है. वात्स्यायन ने भी अपने कामसूत्र में सती का वर्णन किया है.

प्राचीन भारत के अनेक अभिलेखों में सती होने केउदाहरण प्राप्त होते हैं. गुप्तकाल में भी सती प्रथा के प्रचलन के ऐतिहासिक

1. वृहस्पति स्मृति, 25. 11
2. विष्णुपुराण, 5. 38. 2
3. विष्णुपुराण, 5. 38. 3
4. विष्णुपुराण, 3. 18. 92
5. विष्णुपुराण, 4. 4. 66
6. ब्रम्हाण्ड पुराण, 3. 30. 35-38
7. रघुवँशम्, 17. 6. 7
8. कामसूत्र, 6. 3. 53

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रमाण मिलते हैं. सर्वाधिक, प्राचीन अभिलेख एरण (सागर, मध्य प्रदेश) से प्राप्त गोपराज का मरणोपरांत लिखित प्रस्तर स्तंभ लेख है. इसमें सेनापति गोपराज की मृत्यु के पश्चात् उसकी पत्नी द्वारा सती होने का उल्लेख है. उसका वर्णन "भक्तानुरक्ता च प्रिया च कान्ता" कह कर किया गया है. अर्थात् उसकी भक्ति भावयुक्ता अनुरूक्ता प्रिया तथा सुन्दरी पत्नी पूर्ण घनिष्टतापूर्वक चिता पर (गोपराज की) अनुगामिनी बनी. इस प्रकार वह एक पवित्र स्त्री के नाम से प्रख्यात हुई.[1] मानदेव से संबद्ध, नेपाल अभिलेख सन् 705 का ऐसा ही अभिलेख है जिसमें धर्मदेव की विधवा तथा मानदेव की माता अपने पुत्र मानदेव को शासन भार संभालने को कहती हैं ताकि वह स्वयँ अपने मृत पति का दूसरे लोक में अनुगमन कर सके.[2] कनिंघम के अनुसार एरण में अन्य कई सती स्तम्भ हैं किंतु वे पर्याप्त बाद की तिथि के हैं.[3]

पति की मृत्यु पर विधवा के जल जाने को "सहमरण" या "सहगमन" या "अन्वारोहण" या "सती" (जब विधवा मृत पति की चिता पर चढ़कर शव के साथ जल जाती है) कहा जाता है किंतु "अनुमरण" तब होता है जब पति और कहीं मर जाता है तथा जला दिया जाता है और उसकी भस्म के साथ या बिना किसी चिन्ह के उसकी विधवा जलकर मर जाती है.[4]

---

1. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3, संख्या 20. 12-ख गोपराज का मरणोपरांत लिखित एरण प्रस्तर स्तंभ लेख, पृष्ठ 114
2. इण्डियन एन्टीक्वेरी, जिल्द 9, पृष्ठ 164-65
   नेपाल अभिलेख, संख्या 1,
   इण्डियन एन्टीक्वेरी, जिल्द 14, पृष्ठ 344, 350
3. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3, पृष्ठ 113-14, पाद टिप्पणी नंबर 2.
4. काणे, पी. वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, 1980, पृष्ठ 349
   अपरार्क, पृष्ठ 111, मदनपारिजात, पृष्ठ 198

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुमारसंभवम् में कामदेव के भस्म हो जाने पर उसकी पत्नी रति अग्नि प्रवेश करना चाहती है किंतु स्वर्गिक स्वर उसे ऐसा करने से रोकते हैं.[1] गाथासप्तशती में भी "अनुमरण" करने वाली एक नारी का उल्लेख है.[2] वराहमिहिर ने भी अपनी बृहतसंहिता में पति के मरने पर अग्नि प्रवेश करने वाली विधवाओं की प्रशंसा की है.[3] वात्स्यायन के कामसूत्र[4] में भी "अनुमरण" का उल्लेख है किंतु चकलदार के अनुसार यह "सहमरण" ही है.[5] हर्ष के पिता प्रभाकरवर्धन को मरता देख उसकी माता यशोमती के अग्नि प्रवेश करने का उल्लेख बाण ने हर्षचरित[6] में किया है, किंतु यह सती होने का उदाहरण नहीं कहा जा सकता क्योंकि यशोमति ने पति की मृत्यु के पूर्व ही स्वयं को अग्नि में जला दिया. बाण के अनुसार राज्यश्री स्वेच्छा से सती होने को तैयार थी तथा हर्ष ने भी विन्ध्यकेतु की स्त्री के सती होने का वर्णन किया है.[7] कवि बाण ने हर्षचरित में "अनुमरण" का आलँकारिक रूप से उल्लेख किया है तथा कादम्बरी में "अनुमरण" की कड़े शब्दों में निंदा की है.[8]

ऐतिहासिक कालों में सती प्रथा के प्रचलन के पीछे कोई पौरोहितक या धार्मिक दबाव नहीं था न ही अनिच्छुक नारियाँ

---

1. कुमारसंभवम्, 4. 34
2. गाथा सप्तशती, 7. 32
3. बृहतसंहिता, 74. 16
4. कामसूत्र, 6. 3. 53
5. चकलदार, सोशल लाइफ इन एंश्येंट इंडिया, पृष्ठ 184
   उपाध्याय, वासुदेव, गुप्त साम्राज्य का इतिहास, भाग 2, 1952 पृष्ठ246
6. हर्षचरित, अंक 5
7. उपाध्याय, वासुदेव, गुप्त साम्राज्य का इतिहास, भाग 2, 1952, पृष्ठ 247
8. काणे, पी. बी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 349
   कादम्बरी, पूर्वभाग.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐसा करने के लिए बाध्य थी. इसके विकास के पीछे मनोवैज्ञानिक धारणा थी. पहले यह प्रथा केवल राजकुलों एवँ भद्र लोगों तक ही सीमित थी, क्योंकि प्राचीन काल में विजित राजाओं एवँ शूरों की पत्नियों की स्थिति बड़ी ही दयनीय होती थी, जीते हुए लोग विजित लोगों को पत्नियों से ही बदला चुकाते थे. उन्हें बँदी बनाकर ले जाते थे और उनके साथ दासियों जैसा व्यवहार करते थे. मनु[1] ने सैनिकों की युद्ध में प्राप्त वस्तुओं के साथ स्त्रियों को भी पकड़ लेने की आज्ञा दी है. प्रभाकरवर्धन की स्त्री यशोमती अपने पुत्र से हर्ष से वर्णन करती है कि विजित राजाओं की पत्नियाँ उसको पंखा झला करती हैं.[2] क्षत्रियों से यह प्रथा ब्राम्हणों में भी पहुंच गई. स्वाभाविक ही है कि इन यातनाओं के बदले पतिव्रता स्त्री "सती" होना या "अनुमरण" करना ही उचित समझती थी. यद्यपि स्मृतिकारों ने ब्राम्हणियों के लिए मात्र "अन्वारोहण" की अनुमति दी थी "अनुगमन" की नहीं, फिर भी कालान्तर में इसे सतियों के लिए मिलने वाले पुरूस्कारों पुण्यों एवँ धार्मिक आधार प्रदान कर मजबूत एवँ अनिवार्य कर दिया गया.

लेकिन कुछ ऐसी भी परिस्थितियाँ होती थीं जिनमें सहमरण निषेध था. कामदेव के भस्म हो जाने पर सती होने की इच्छुक रति को स्वर्गिक स्वर {भगवान की वाणी} के आदेश पर इस विचार को त्यागना पड़ता था.[3] इसी प्रकार का वर्णन कालिदास के <u>कुमारसँभवम्</u> में भी मिलता है.[4] राजा बाहु की

1. <u>मनुस्मृति</u>, 7.96
2. <u>हर्षचरित</u>, अँक 5,
3. <u>मत्स्य पुराण</u>, 154.274
4. <u>कुमारसँभवम्</u>, 4.34-35

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की गर्भवती महिषी को और्व मुनि के आदेश से सती होने के अपने विचार को त्यागना पड़ा था।[1] वे पत्नियाँ, जिनके बच्चे छोटे छोटे हों, जो गर्भवती हों, जो अभी युवा न हुई हों, और जो रजस्वला हों, वे पति की चिता पर नहीं चढ़ती. बृहस्पति के अनुसार उस पत्नी को जो पति की मृत्यु के समय रजस्वला रहती थी स्नान करने के चौथे दिन जल जाने की अनुमति थी.[2]

उपरोक्त प्रमाण, गुप्तकाल में सती प्रथा के अस्तित्व को स्वीकारने के लिए पर्याप्त हैं.

नियोग प्रथा:

नियोग का अर्थ है-----किसी नियुक्त पुरूष के सम्भोग द्वारा पुत्रोत्पत्ति के लिए पत्नी या विधवा की नियुक्ति. इस प्रथा के उद्गम एवँ उपयोग के विषय में विविध मतमतान्तर हैं.[3] वैदिक साहित्य में पारिभाषिक शब्द के रूप में नियोग का वर्णन नहीं मिलता, न ही इस प्रथा से सँबंधित कोई नियम, फिर भी वैदिक समाज में नियोग प्रथा का प्रचलन सँदिग्ध नहीं {असंदिग्ध} है. वैसे पति के भाई से विधवा का विवाह तथा उससे संतानोत्पत्ति एक अति विस्तृत प्रथा रही है.[4] ऋग्वेद की एक ऋचा देवर से पुनर्विवाह अथवा नियोग की ओर संकेत करती है किंतु उससे ऐसा प्रमाणित नहीं होता.[5] अथर्ववेद की एक ऋचा में नियोग प्रथा

1. विष्णु पुराण, 4.3.33 वायु पुराण, 88.132
   ब्रह्माण्ड पुराण, 3.63.131
2. काणे, पी.बी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, 1980, पृष्ठ 352
3. काणे, पी.बी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 338
4. काणे, पी.बी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 341
   वेस्टरमार्क, हिस्ट्री ऑफ ह्यूमन मैरिज, 1921, जिल्द 3, पृष्ठ 206-220
5. ऋग्वेद, 10.40.2

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के प्रचलन का वर्णन है.[1] धर्मसूत्रों में इस प्रथा के प्रचलन को समर्थन देते हुए आलोचना के घेरे में भी रखा गया है.[2] इनके अनुसार पतिविहीन नारी यदि पुत्र की अभिलाषा रखे तो अपने देवर द्वारा प्राप्त कर सकती है किंतु उसे गुरूजनों से आज्ञा ले लेनी चाहिए और संभोग केवल ऋतुकाल में ही करना चाहिए. वह सपिण्ड, सगोत्र, सप्रवर या अपनी जाति वाले से ही (जब देवर न हो तो) पुत्र प्राप्त कर सकती है. कुछ लोगों के मत से यह प्रथा केवल देवर से ही संयुक्त है. वह दो से अधिक पुत्र (इस प्रथा द्वारा) नहीं प्राप्त कर सकती.[3]

मनु के अनुसार पुत्रहीन विधवा अपने देवर या पति के सपिण्ड से पुत्र उत्पन्न कर सकती है. नियुक्त पुरूष को अँधेरे मेंमें ही विधवा के पास जाना चाहिए, उसके शरीर पर घृत का लेप होना चाहिए और उसे एक ही (दो नहीं) पुत्र उत्पन्न करना चाहिए, किंतु कुछ लोगों के मत से दो पुत्र उत्पन्न करने चाहिए तथा पुत्र प्राप्ति के पश्चात् विधवा तथा पुत्र उत्पन्न करने वाले में गुरू स्नुषा का परस्पर वर्ताव ब होना चाहिए.[4] स्मृतिकार याज्ञवल्क्य[5] तथा नारद[6] का भी यही मत है. इतना ही नहीं नारद के ने पति के जीवित रहते हुए भी पत्नी को नियोग की अनुमति दी है.[7]

---

1. अथर्ववेद, 18. 3. 1-4
2. गौतमधर्मसूत्र, 18. 4-8, वशिष्टधर्मसूत्र, 17. 56-61
   बौधायनधर्मसूत्र, 2. 2. 9, आपस्तम्बधर्मसूत्र, 2. 10. 27
3. गौतम धर्मसूत्र, 18. 4-8
4. मनुस्मृति, 9. 59-63
5. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1. 68-69
6. नारद स्मृति, स्त्रीपुंस, 80-83
7. नारद स्मृति, 12. 18

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किंतु याज्ञवल्क्य एवं नारद के ही समकालीन वृहस्पति[1] तो नियोग के पक्ष में बिल्कुल भी नहीं थे. उनके अनुसार "अपुत्रा विधवा" भी स्वर्ग की अधिकारिणी है तथा वे नियोग की प्रथा को कलियुग में वर्जित मानते हैं.[2]

मनु ने नियोग प्रथा को नियम विरूद्ध एवँ अनैतिक ठहराते हुए इसकी भर्त्सना की है उन्होंने राजा वेन को नियोग प्रथा का प्रथम सँचालक मानते हुए वर्ण संकरता के जनक की निंदा की है. उनके अनुसारभद्र एवँ विज्ञ लोग नियोग की निंदा करते हैं, किंतु कुछ लोग अज्ञानतावश इसे अपनाते हैं.[3] वे मात्र वाग्दत्ता विधवा को ही देवर से नियोग करने की अनुमति देते हैं.[4] तथा विधि विपरीत नियोग करने वाला पापी एवं पतित होता है.[5] वृहस्पति ने लिखा है——"मनु ने प्रथम नियोग का वर्णन करके इसे निषिद्ध किया है, इससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में लोगों में तपोबल एवँ ज्ञान था, अतः वे नियमों का पालन तथैव कर सकते थे किंतु द्वापर एवँ कलियुगों में लोगों में शक्ति एवँ बल का ह्रास हो गया है अतः वे नियोग के नियमों का पालन करने में असमर्थ हैं".[6]

नियोग द्वारा उत्पन्न पुत्र "क्षेत्रज" एवँ उसकी माता को "क्षेत्र" की संज्ञा दी गई है. इसी प्रकार उस विधवा का

---

1. वृहस्पति स्मृति, स्मृतिचन्द्रिका, व्यवहारकांड, 24. 10, पेज595
2. वृहस्पति स्मृति, स्मृतिचन्द्रिका, व्यवहार कांड, 24. 12-14 पृष्ठ 595
3. मनुस्मृति, 9. 64-68
4. मनुस्मृति, 9. 69-70
5. मनुस्मृति, 9. 60
6. वृहस्पतिस्मृति,
   काणे, पी. वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 340

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पति "क्षेत्री" या "क्षेत्रिक" (जिसकी वह पत्नी या विधवा होती है) तथा पुत्रोत्पत्ति के लिए नियुक्त पुरूष बीजी (जो बीज बोता है) या "नियोगी" (अर्थात् जो नियुक्त हो) कहलाता है.[1] पाराशर स्मृति के अनुसार पति के जीवित रहने पर अन्य से जो पुत्र उत्पन्न होता है वह "कुण्ड" कहलाता है और पति के मर जाने पर परपुरूष से जो पुत्र उत्पन्न होता है वह "गोलक" कहलाता है. इसके अतिरिक्त "क्षेत्रज" पुत्र का भी नाम बताया है.[2] विष्णुधर्मसूत्र[3] ने अप्रत्यक्ष रूप से नियोग प्रथा को स्वीकारते हुए उत्पन्न पुत्र को "क्षेत्रज" की संज्ञा दी है.

लेकिन इस प्रथा की निंदा करते हुए भी मनु[4] ने अक्षेत्रज पुत्र के लिए उत्तराधिकार एवं रिक्थ के विभाजन के नियमों में व्यवस्था रखी है. वे क्षेत्रज पुत्रों को दाय का उत्तराधिकारी मानते हैं लेकिन वास्तविक पुत्र नहीं. इतना ही नहीं औरस पुत्र को छोड़कर किसी अन्य पुत्र से आध्यात्मिक लाभ नहीं होता है.

नियोग से उत्पन्न पुत्र किसका है ? इस विषय पर धर्मशास्त्रियों में मतैक्य नहीं है किंतु 3 विभिन्न मत स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं :

1. प्रथम मत के अनुसार पुत्र जनक का होता था किंतु इस मत से नियोग की उपयोगिता ही निरर्थक सिद्ध हो जाती है. मनु इस मत के समर्थक हैं.[5]

---

1. गौतमधर्मसूत्र, 28.32 मनुस्मृति, 9.32-33 एवं 53
2. पाराशर स्मृति, 4.22-24
3. विष्णुधर्मसूत्र, 15.3
4. मनुस्मृति, 9.120, 121, 1.145
5. मनुस्मृति, 9.181

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

2. द्वितीय मत के अनुसार यदि विधवा के गुरूजनों एवँ नियुक्त पुरूष में यह तय पाया हो कि पुत्र पति का होगा तो पुत्र पति का ही माना जावेगा.

3. तृतीय मत यह था कि पुत्र दोनों का अर्थात् जनक एवँ विधवा के स्वामी का होता है. यह मत नारद[1], याज्ञवल्क्य[2], एवँ मनु[3] का है.[4]

<u>नियोग की अनिवार्य दशायें:</u>

1. जीवित या मृत पति पुत्रहीन होना चाहिए.
2. कुल के गुरूजनों द्वारा ही निर्णीत पद्धति से पति के लिए पुत्र उत्पन्न करने के लिए पत्नी को नियोजित करना चाहिए.
3. नियोजित पुरूष को पति का भाई [देवर], सपिण्ड या पति का सगोत्र होना चाहिए.
4. नियोजित पुरूष के शरीर पर घृत या तेल का लेप लगा रहना चाहिए, उसे न तो बोलना चाहिए, न चुम्बन करना चाहिए और न स्त्री के साथ किसी प्रकार की रति क्रीड़ा में संयुक्त होना चाहिए.
5. नियोजित पुरूष एवँ नियोजित विधवा में कामुकता का पूर्ण अभाव एवँ कर्तव्य ज्ञान का भार रहना चाहिए.
6. यह संबंध केवल एक पुत्र होने तक [अन्य मतों से दो पुत्र उत्पन्न होने तक] रहता है.
7. नियुक्त विधवा को अपेक्षाकृत युवा होना चाहिए, उसे बूढ़ी या बन्ध्या [बाँझ], अतीत प्रजनन शक्ति, बीमार, इच्छाहीन,

1. <u>नारद स्मृति</u>, स्त्रीपुंस, 58
2. <u>याज्ञवल्क्य स्मृति</u>, 2.127
3. <u>मनुस्मृति</u>, 9.53
4. काणे, पी.वी., <u>धर्मशास्त्र का इतिहास</u>, भाग 1, पृष्ठ 341

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

या गर्भवती नहीं होना चाहिए. एवँ,

9. एक पुत्र की उत्पत्ति के उपरांत दोनों को एक दूसरे से अर्थात् नियुक्त पुरूष को श्वसुर सा एवँ नियुक्त विधवा या स्त्री को वधू सा व्यवहार करना चाहिए.[1]

स्मृतियों से यह स्पष्ट है कि बिना गुरूजनों द्वारा नियुक्ति के या अन्य उपर्युक्त दशाओं के न रहने (यदि पति को पुत्र हो) पर यदि देवर अपनी भाभी से सँभोग करे तो वह बलात्कार का अपराधी (अगम्यागामी) कहा जावेगा.[2] इस प्रकार के सँभोग से उत्पन्न पुत्र जारज (कुलटोत्पन्न) कहा जायगा तथा सम्पत्ति का अधिकारी नहीं होगा.[3] और वह उत्पन्न करने वाले (जनक) का पुत्र कहा जायगा. नारद के मत से यदि कोई विधवा या पुरूष नियोग के नियमों के प्रतिकूल जाय तो राजा द्वारा उन दोनों को दण्ड मिलना चाहिए, नहीं तो गड़बड़ी उत्पन्न हो जायगी. इन सब नियंत्रणों से स्पष्ट है कि धर्मसूत्रकाल में भी नियोग उतना सरल नहीं था और यह प्रथा उतनी प्रचलित नहीं थी.[4]

नियोग की प्रथा प्राचीन थी और उसके कई कारण थे, किंतु वे सभी अज्ञात एवँ रहस्यात्मक हैं, केवल एक ही सत्यता स्पष्ट है----वैदिक काल से ही पुत्रोत्पत्ति पर बहुत ध्यान दिया गया है.[5]

---

1. <u>मनुस्मृति</u>, 9.62
2. <u>मनुस्मृति</u>, 9.58, 63, 143, 144
   <u>नारद स्मृति</u>, स्त्रीपुंस, 85-86
3. <u>नारद स्मृति</u>, स्त्रीपुंस, 84-85
4. काणे, पी.वी., <u>धर्मशास्त्र का इतिहास</u>, भाग 1, पृष्ठ 339
5. काणे, पी.वी., <u>धर्मशास्त्र का इतिहास</u>, भाग 1, पृष्ठ 341

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नियोग प्रथा अति अतीव प्राचीन प्रथा का अवशेष मात्र था, जो क्रमशः विलीन होता हुआ ईसा की आरम्भिक शताब्दियों में भारत में सदा के लिए वर्जित हो गया. गुप्तकालीन साहित्य, अभिलेखों {धर्मशास्त्रों को छोड़कर} में नियोग प्रथा के प्रचलन का एक भी प्रमाण नहीं मिलता ह. इसी प्रकार सिक्कों में भी इसका कोई प्रमाण नहीं है. धर्मशास्त्रीय वर्णन से कह सकते हैं कि यह विद्यमान थी किंतु व्यावहारिक रूप से कदापि नहीं.

<u>स्त्री संग्रहण:</u>

गुप्तकालीन पारिवारिक संरचना के अनुसार पत्नी से आशा की जाती थी कि वह पति के प्रति एक निष्ठ रहे किंतु व्यावहारिक रूप से कदापि ऐसा नहीं था. गुप्तकालीन समाज "परस्त्री" एवँ "परपुरूष" संबंधों से भलीभाँति परिचित था. <u>कामसूत्र</u> तथा <u>बृहत्संहिता</u> में इस प्रकार के विवाहित स्त्रियों के प्रेमियों से अवैध संबंध के विषय अनेक वर्णन मिलते हैं.[1] स्मृतियों में भी इस संग्रहण के विषय में विधान मिलते हैं.

बृहस्पति स्मृति के अनुसार यह पापमूल संग्रहण तीन प्रकार का होता ह-----बल से, धोखे से तथा कामपिपासा से संभोग करना.[2] बल द्वारा संभोग करने पर बहुत कड़ा दण्ड मिलता था. बृहस्पति के अनुसार समान जातीय से साहस पूर्वक

---

1. मजुमदार, आर. सी. {संपादक} <u>क्लैसिकल एज</u>, 1984, पृष्ठ 632
2. अपरार्क, पृष्ठ 854, <u>स्मृतिचंद्रिका</u>, 2, पृष्ठ 8
   काणे, <u>धर्मशास्त्र का इतिहास</u>, भाग 2, पृष्ठ 830

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संभोग करने पर सम्पूर्ण सम्पत्ति छीन ली जानी चाहिए. लिंग एवँ अण्डकोष काट लिये जाने चाहिए, गदहे पर चढ़ाकर घुमाना चाहिए, किंतु यदि संभोग की हुई स्त्री व्यभिचारी से हीन जाति की हो तो उपर्युक्त दण्ड का आधा लगता है, किंतु यदि स्त्री की जाति पुरूष की जाति से उच्च हो तो पुरूष को मृत्यु दण्ड मिलता है और उसकी सम्पूर्ण संपत्ति छीन ली जाती है. कात्यायन के अनुसार बलात्कार करने पर मृत्युदण्ड मिलता है, क्योंकि यह उचित आचरण के विरूद्ध है.[1]

जब धोखे से सँभोग किया जाता है तो सम्पूर्ण संपत्ति छीन ली जाती है, माथे पर स्त्री के गुप्तांग का दाग लगा दिया जाता है और व्यभिचारी को बस्ती के बाहर कर दिया जाता है किंतु यहाँ भी जाति संबंधी छूट एवँ अधिकता वर्णित है.[2]

बलात्कार एवँ धोखे से संयुक्त नारी को दण्ड नहीं मिलता था उसे केवल कृच्छ या पराक नामक प्रायश्चित (व्रत) करना पड़ता था. जब तक वह प्रायश्चित से पवित्र नहीं हो जाती थी उसे घर में सुरक्षा के भीतर रहना पड़ता था, श्रृंगार बनाव नहीं करना होता था, पृथिवी पर सोना पड़ता था तथा केवल जीवन निर्वाह के लिए भोजन मिलता था.

---

1. कात्यायन स्मृति, 830
2. काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 2, पृष्ठ 830
   बृहस्पति स्मृति, स्मृतिचन्द्रिका, 2, पृष्ठ 320
   कात्यायन स्मृति, स्मृतिचन्द्रिका, 2, पृष्ठ 320

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रायश्चित के उपरांत वह अपनी पूर्व स्थिति प्राप्त कर लेती थी. बृहस्पति एवं याज्ञवल्क्य स्मृति के मत से एक दूसरे की सहमति से व्यभिचार करने पर पुरूष को अपनी ही जाति की नारी के साथ ऐसा करने पर अधिकतम दण्ड, अपने से हीन जाति के साथ ऐसा करने पर उसका आधा दण्ड देना पड़ता था, किंतु अपने से उच्च जाति वाली नारी के साथ ऐसा करने पर मृत्यु दण्ड मिलता था और नारी के कान आदि काट लिए जाते थे. कुछ स्मृतिकारों ने नाक, कान इत्यादि अँगविच्छेद करने का विरोध किया है. कात्यायन के अनुसार एक सामान्य नियम यह था कि सभी प्रकार के अपराधों में जो दण्ड पुरूष को मिलता है उसका आधा ही नारी को मिलना चाहिए, यदि पुरूष को मृत्यु दण्ड मिले तो वहाँ नारी का अंगविच्छेद ही पर्याप्त है.

नारदस्मृति के अनुसार निम्नलिखित नारियों से संभोग करना पाप है तथा ऐसा पाप करने पर शिश्न कर्तन से कम दण्ड नहीं मिलना चाहिए : विमाता, मौसी, सास, चाची, मामी, फूफी, मित्रपत्नी, शिष्यपत्नी, बहिन, बहिन की सखी, वधू, पुत्री, गुरूपत्नी, सगोत्रा, शरणागता, रानी, प्रव्रजिता, धात्री, साध्वी तथा उच्च जाति की स्त्री[1]. तथा याज्ञवल्क्य[2] तथा मत्स्य पुराण[3] में अंतिम तीन में इस प्रकार के अपराध के लिए शिश्नकर्तन एवं प्रायश्चित स्वरूप प्राणदण्ड की व्यवस्था दी हुई है और स्त्री के लिए (यदि उसकी सहमति हो तो) मृत्यु दण्ड का विधान है.

---

1. नारद स्मृति, 16.73-75
2. याज्ञवल्क्य स्मृति, 3.231-233
3. मत्स्य पुराण, 227.139-141

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

याज्ञवल्क्य[1] ने प्रव्रजिता गमन पर केवल 24 पणों का दण्ड लगाया है इसके विपरीत नारद[2] एवं मत्स्यपुराण[3] ने इसे अत्यन्त महान अपराध माना है. वेश्या की इच्छा के विरूद्ध संभोग करने पर याज्ञवल्क्य[4] 14 पणों का दण्ड देने का कहते हैं. अप्राकृतिक व्यभिचार के अपराधी को याज्ञवल्क्य[5] एवं नारद[6] क्रमशः 24 तथा 500 पणों के दण्ड की व्यवस्था करते हैं.

याज्ञवल्क्य[7] एवं नारद[8] के अनुसार यदि कोई पुरूष अपनी ही जाति की अविवाहित नारी के साथ संभोग करे तो उसे राजा द्वारा दण्ड नहीं मिलना चाहिए, प्रत्युत उसे आभूषण आदि के साथ उस नारी से सम्मानपूर्वक विवाह करने की छूट दी जानी चाहिए. व्यभिचारिणी पत्नी के दण्ड के विषय में नारद[9] के विचार याज्ञवल्क्य से ही मिलती है. उनके अनुसार उस स्त्री के बाल काट दिए जाएँ, जमीन पर सुलाया जाय, निकृष्ट भोजन एवं फटे वस्त्र दिये जाएँ और बुहारने का काम

---

1. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2.293
2. नारद स्मृति, 15.74
3. मत्स्यपुराण, 227.141
4. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2.291
5. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2.289 एवं 293
6. नारद स्मृति, 15.76
7. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2.288
8. नारद स्मृति, 15.72
9. नारद स्मृति, 12.91

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिया जाय. याज्ञवल्क्य[1] एवं नारद[2] ने किसी के घर में या बाहर रहने वाली दासी [भुजिष्यादासी] के साथ संभोग करना अपराध माना है. याज्ञवल्क्य के अनुसार ऐसे अपराधी पर 50 पर्ण का दण्ड लगाया जाना चाहिए.

---

1. <u>याज्ञवल्क्य स्मृति</u>, 2. 290
2. <u>नारद स्मृति</u>, 15. 79

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय : 5

• गुप्तकाल में प्रचलित विवाहों के विविध प्रकार.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

<u>विवाह:</u>

विवाह संस्कार को सर्वोत्कृष्ट महत्ता प्रदान की गई है. "उद्वाह", "परिणय", या "परिणयन", "विवाह", "उपयम" एवं "पाणिग्रहण" इत्यादि विवाह संबंधी शब्द विवाह संस्कार के ही पर्यायवाची शब्द हैं जिनका शास्त्रों में प्रयोग हुआ है और विवाह संस्कार के उत्सव के कतिपय कर्मों को इनमें समेट लिया है.[1]

<u>ऋग्वेद</u> में विवाह का उद्देश्य था गृहस्थ होकर देवों के लिए यज्ञ करना तथा सन्तानोत्पत्ति करना.[2] पति ने पत्नी के गर्भ से

---

1. काणे, पी. बी., <u>धर्मशास्त्र का इतिहास</u>, भाग 1, 1980, पृष्ठ 268
2. <u>ऋग्वेद</u>, 10.85.36, 5.3.2, 5.28.3, 3.53.4

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुत्र के रूप में ही जन्म लिया, इस कारण ऐतरेय ब्राम्हण[1] में स्त्री को "जाया" कहा गया है. शतपथ ब्राम्हण[2] के अनुसार पत्नी पति की आधी {अर्द्धांगिनी} है, अत: जब तक व्यक्ति विवाह नहीं करता, जब तक सन्तानोत्पत्ति नहीं करता, तब तक वह पूर्ण नहीं है. आपस्तम्ब धर्मसूत्र ने विवाह के 2 प्रमुख उदेश्य बताये हैं:

1. पत्नी पति को धार्मिक कृत्यों के योग्य बनाती है, तथा
2. वह पुत्र या पुत्रों की माता होती है और पुत्र ही नरक से रक्षा करते हैं.[3]

मनु ने पत्नी पर पुत्रोत्पत्ति, धार्मिक कृत्य, सेवा, सर्वोत्तम आनंद {परमानंद}, अपने तथा अपने पूर्वजों के लिए स्वर्ग की प्राप्ति निर्भर मानी है.[4] अत: स्पष्ट है कि धर्म, सम्पत्ति, प्रजा एवं रति-----ये तीन विवाह संबंधी प्रमुख उदेश्य स्मृतियों में माने गए हैं. याज्ञवल्क्य स्मृति[5] में भी इन्हीं उदेश्यों को दोहराया गया है:

> "समाज का आधार कुटुम्ब एवं कुटुम्ब का आधार विवाह होता था. इतना ही नहीं वरन् सभी सामाजिक संबंधों का मूल भी विवाह ही था. गुप्तकाल का प्रधान संस्कार विवाह ही था. महा कवि कालिदास ने भी विवाह के पूर्व स्थापित उदेश्यों का अनुकरण किया. गृहस्थाश्रम एवं विवाह की महत्ता को स्वीकारते हुए वे गृह

---

1. ऐतरेय ब्राम्हण, 33. 1
2. शतपथ ब्राम्हण, 5. 2. 1. 10
   वृहस्पति स्मृति, {अपरार्क द्वारा उद्धृत, पृष्ठ 740}
3. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 2. 5. 11. 12
4. मनुस्मृति, 9. 28
5. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1. 78

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्थाश्रम को सब आश्रमों में श्रेष्ठ मानते हैं।[1] तथा बिना विवाह के धार्मिक कार्यों को करने की अनुमति नहीं देते।[2] धार्मिक कार्यों में पत्नी की अनिवार्यता "क्रियाणां खलु धर्म्याणां सत्पत्न्यो मूल कारणम्"[3] तथा "संरोपिते प्यात्मनि धर्म पत्नी त्यक्त्या मया नाम कुल प्रतिष्ठा"[4] से स्पष्ट है.

कवि ने विवाह का दूसरा उद्देश्य-----वंश प्रतिष्ठा, मानते हुए पुत्र को वंश की प्रतिष्ठा कहा है।[5] पुत्र ही वैदिक विधि से तर्पण करने का अधिकारी,[6] वंश तथा कीर्ति को चलाने वाला होता था।[7] रघुवंशी राजा भोग विलास के लिए नहीं, अपितु पुत्र प्राप्ति के उद्देश्य से ही विवाह करते थे।[8] क्योंकि पितरों के ऋण से मुक्ति पाने में पुत्र ही सहायक होता था।[9]

विवाह संस्कार के उद्देश्यों एवं महत्व को देखते हुए भी गुप्त काल में पुत्रियों को विवाह एक अनिवार्य बंधन नहीं था. योग्य वर मिलने पर ही विवाह संभव होता था, अन्यथा वह कन्या आजन्म अविवाहित पिता के पास रहती थी. दुष्यन्त द्वारा यह पूछे जाने

---

1. रघुवंशम्, 5.10
2. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अंक 1, पृष्ठ 21
3. कुमारसंभवम्, 6.13
4. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 6.24
5. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अंक 7, पृष्ठ 147
6. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अंक 6.25
   रघुवंशम्, 1.65-72
7. रघुवंशम्, 2.64
   रघुवंशम्, 3.27
8. रघुवंशम्, 1.7, 1.25
9. रघुवंशम्, 1.72
   रघुवंशम्, 10.2

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर कि "यह {शकुन्तला} आजन्म हिरणियों के साथ खेलती रहेगी अथवा विवाह होने तक ही", इसका तपस्विनी वेश रहेगा"[1] ? प्रियंवदा उत्तर देती है : "योग्य वर मिल जाने पर पिता {गुरू} इसका विवाह कर देंगे".[2] स्मृतिकार मनु ने भी इस बात का समर्थन करते हुए कहा है:

> "योग्य वर न मिले तो आजन्म कन्या पिता के पास रहे. किसी भी अवस्था में अयोग्य वर के हाथ पिता को कन्या नहीं सौंपनी चाहिए".[3]

<u>वर का चुनाव:</u>

अच्छे वर वधू के क्या लक्षण होना चाहिए ? इस विषय में धर्मग्रन्थों एवं संस्कृत साहित्य में विस्तृत विवरण प्राप्त होता है, जिससे स्पष्ट है कि वर अच्छे कुल का, सत चरित्र, शुभ गुण, ज्ञान एवं सुंदर स्वास्थ्य का होना चाहिए.[4] <u>अभिज्ञानशाकुन्तलम्</u>[5] में भी अच्छे वर के गुणों का वर्णन है. मनु ने अच्छे कुल को सर्वोपरि स्थान देते हुए दस प्रकार के कुलों से संबंध जोड़ने को मना किया है. उनके अनुसार जहाँ संस्कार न किये जाते हों, जहाँ पुत्रोत्पत्ति न होती हो, जहाँ वेदाध्ययन न होता हो, जिसके सदस्यों के शरीर पर केश अधिक मात्रा में हों, जिसमें लोग बवासीर, क्षय रोग, अजीर्ण, मिर्गी या गलित या शुष्क कुष्ठ रोग से पीड़ित हों.[6] कात्यायन के अनुसार वर के दोष----पागलपन, पाप {अपराध} कुष्ठता, नपुंसकता, स्वगोत्रता, अँधापन, बहिरापन, अपस्मार {मिर्गी} इत्यादि

1. <u>अभिज्ञानशाकुन्तलम्</u>, 1.25
2. <u>अभिज्ञानशाकुन्तलम्</u>, अँक 1, पृष्ठ 21
3. <u>मनुस्मृति</u>, 9.89-90
4. <u>आपस्तम्ब गृह्यसूत्र</u>, 3.20
5. <u>अभिज्ञानशाकुन्तलम्</u>, अँक 4
6. <u>मनुस्मृति</u>, 4.244 एवं 3.6.7
   <u>मनुस्मृति</u>, 2.238, 3.63-65

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कात्यायन की तालिका पर एवँ कन्या दोनों पक्षों के लिए समान हैं।[1] नारदस्मृति का भी यही मत है।[2]

विवाह के लिए कन्या का चुनाव करते समय जिन बातों का महत्व है उनमें कुल, रोग इत्यादि महत्वपूर्ण हैं।[3] कात्यायन ने कन्या के रूप, शील, चरित्र, स्वास्थ्य और परिवार को महत्व दिया है।[4] मनु[5], वात्स्यायन एवँ याज्ञवल्क्य[6] ने भी शुभ लक्षणों वाली कन्या से विवाह करने को कहा। उनके अनुसार लक्षण बाह्य (शारीरिक) एवँ अभ्यन्तर-----2 प्रकार के होते हैं। अच्छे कुल की कन्या को पत्नी बनाने का उल्लेख हमें यशोधर्मन् तथा विष्णुवर्धन के मँदसौर स्तम्भ लेख में मिलता है। अच्छे कुल में जन्मी पत्नी का ऐसा वर्णन मिलता है। और भी अन्य अभिलेखों में पत्नी के गुणों की चर्चा है, निश्चित अच्छी पत्नी के गुण एक अच्छी कन्या के भी उत्तम लक्षण हैं। पवित्रता[7] स्वामी के प्रति सत्यरूपेण, पतिव्रता, उत्कृष्टगुणों से तपस्या करने वाली[8], भक्ति भाव युक्ता, अनुरक्ता, प्रिया तथा सुंदरी पत्नी[9] तथा बुद्धिमान स्त्री[10] इत्यादि उपरोक्त गुणों से युक्त पत्नी का

---

1. कात्यायन स्मृति, स्मृति चन्द्रिका, 1, पृष्ठ 59
2. नारद स्मृति, स्त्रीपुंसयोग, 37
3. विष्णुधर्मसूत्र, 24.11 कामसूत्र, 3.1.1
4. कात्यायन स्मृति, स्मृतिचन्द्रिका, पृष्ठ 59
5. मनुस्मृति, 3.4
6. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.52, कामसूत्र, 3.1.2
7. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3, संख्या 35.22 यशोधर्मन तथा विष्णुवर्धन का मँदसौर स्तंभ लेख, पृष्ठ 190
8. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3, संख्या 42.28, पृष्ठ 255
9. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3, 1974, संख्या 20.12 रव गोपराज का मरणोपरांत लिखित एरण प्रस्तर स्तंभ लेख, पृष्ठ 112
10. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3, 1974, संख्या 18.11 कुमारगुप्त तथा बन्धुवर्मन का मंदसौर प्रस्तर अभिलेख, पृष्ठ 105

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वर्णन यह सिद्ध करता है कि कन्या का चयन करते समय इन गुणों का होना बांछनीय था तथा वही एक उत्तम कन्या तथा भविष्य में अच्छी पत्नी बन सकती थी.

मनुस्मृति एवँ विष्णुधर्मसूत्र के अनुसार निर्दोष अँगों वाली, हँस या गज की भाँति चलने वाली, जिसके शरीर के [सिर या अन्य अँगों पर] बाल छोटे हों, जिसके दाँत छोटे छोटे हों, जिसका शरीर कोमल हो, उससे विवाह करना चाहिए.[1] सौंदर्य स्त्री जाति का सर्वाधिक आकर्षक गुण है अत: कन्या के उपेक्षित गुणों में उसके रूप सम्पन्ना होने का वर्णन कामसूत्र[2] एवँ याज्ञवल्क्य स्मृति[3] में किया गया है.

विवाह के लिए आदर्श कन्या वही है जो अनन्यपूर्व अथवा अदत्ता हो, अर्थात् पहले किसी से उसका विवाह अथवा वाग्दान न हुआ हो.[4] याज्ञवल्क्य[5] एवँ नारद[6] कन्या का अक्षत योनि होना अनिवार्य मानते हैं. कन्या का विवाह स्थिर करते समय इस बात पर बल दिया जाता है कि कन्या वर से यवीयसी [कम उम्र की] हो. यह मत याज्ञवल्क्य[7] का है. कामसूत्र[8] के अनुसार कन्या वर

---

1. मनुस्मृति, 3.10
   विष्णुधर्मसूत्र, 24.12-16
2. कामसूत्र, 3.1.2
3. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.53
4. कामसूत्र, 3.1.11
5. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.52
6. नारद स्मृति, 12.36
7. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.52
8. कामसूत्र, 3.1.2

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से तीन वर्ष छोटी होना चाहिए. कन्या के अपेक्षित गुणों में उसका शील सम्पन्नता होने का उल्लेख कामसूत्र[1] में है. कामसूत्र का अनुरोध है कि कन्या के नामाक्षर अशुभ सूचक एवं अप्रिय न हों.[2]

कवि कालिदास भी बाह्य सौंदर्य के पुजारी थे किंतु वे भी अनन्य सौंदर्य के साथ ही कन्या की पवित्रता को उतना ही महत्त्व देते हैं. बिना सूँघा हुआ फूल, नखों से अछूते पत्ते, बिना विधा हुआ रत्न, बिना चखा हुआ नया मधु और बिना भोगा हुआ पुण्यों का फल इत्यादि उक्तियाँ इस अछूते सौंदर्य की महत्ता को प्रमाणित करती हैं.[3] कवि कालिदास ने योग्य एवं सफल पत्नी की परिभाषा "गृहणी सचिव: सखीमिथ: प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ" कह कर की है अर्थात् पत्नी गृहकार्य में दक्ष, सुँदरी, सम्मति देने वाली मित्र एवं कलाविद होनी चाहिए.[4] स्वाभाविक ही ये गुण कन्या में होना अत्यावश्यक थे. अत: कालिदास ने धर्म, अर्थ और काम इन तीनों में जो सहचरी है, ऐसी कन्या विवाह की दृष्टि से अति उत्तम मानी है.

मनुस्मृति[5] एवं विष्णुधर्मसूत्र[6] में उन लक्षणों का वर्णन है जिनके रहते उस कन्या से विवाह नहीं करना चाहिए : पिंगल बालों वाली, अतिरिक्त अँगों वाली (यथा छ: अँगुलियों वाली), टूटे फूटे अँगों वाली, बातूनी, पीली आँखों वाली कन्याओं से विवाह नहीं करना चाहिए. इसी प्रकार विष्णु पुराण के अनुसार कन्या के अधर या चिबुक पर बाल नहीं होने चाहिए, उसका स्वर कौए की

1. कामसूत्र, 3. 1. 2
2. कामसूत्र, 3. 1. 10
3. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 2. 10
4. रघुवंशम्, 8. 67
5. मनुस्मृति, 3. 8
6. विष्णुधर्मसूत्र, 24. 12-16

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भाँति कर्कश नहीं होना चाहिए, उसके घुटनों एवं पावों पर बाल नहीं होना चाहिए, हँसने पर उसके गालों में गड्ढे नहीं पड़ने चाहिए, उसका कद न तो बहुत छोटा हो और न बहुत लम्बा होना चाहिए।[1] मनु का कहना है कि विवाहित होने वाली कन्या का नाम चान्द्र नक्षत्र वाला यथा----रेवती, आर्द्रा, आदि वृक्षों या नदियों वाला नहीं होना चाहिए, उसका नाम म्लेच्छ, पर्वत, पक्षी, सर्प, दासी आदि का नाम नहीं होना चाहिए।[2]

कामसूत्र के मत से घर से बाहर इधर उधर घूमने वाली तथा अधिक सोने वाली कन्या से विवाह नहीं करना चाहिए।[3] कामसूत्र[4], मनुस्मृति[5] एवं नारदस्मृति[6] कन्या स्वास्थ्य पर अत्याधिक बल देते हैं। याज्ञवल्क्य तो आरोग्यता पर इतना बल देते हैं कि यदि उत्तम कुल वाली कन्या भी रोगग्रस्त हो तो वह विवाह के योग्य नहीं है।[7] यदि कन्या का स्कन्ध भाग झुका हो, यदि वह पुरूष की आकृति की हो, देखने में भद्दी लगे, उसका भाल बहुत बड़ा एवं आगे को निकला हो तो ऐसी स्थिति में उस कन्या को स्वीकार नहीं करना चाहिए। यह विचार वात्स्यायन[8] के हैं तथा कन्या के दाँत, नख, बाल, कान, आँखें और स्तन इत्यादि शरीर के अँग न बहुत छोटे हों और न अत्यधिक बड़े और

---

1. विष्णु पुराण, 3. 10. 18-22
2. मनुस्मृति, 3. 9 कामसूत्र, 3. 1. 12
3. कामसूत्र, 3. 1. 10
4. कामसूत्र, 3. 1. 2
5. मनुस्मृति, 3. 8
6. नारद स्मृति, 12. 36
7. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1. 54
8. कामसूत्र, 3. 1. 11

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

न इतना अभाव ही हो।[1] प्रायः सभी स्मृतियाँ अधिकांगी एवँ हीनांगी से विवाह निषेध करती हैं।[2] नारद के अनुसार यदि कन्या विकलांग हो अथवा उसमें कोई दोष हो तो उससे विवाह नहीं करना चाहिए।[3] कामसूत्र[4] के मत से उस कन्या से जिसके नाम के अँत में "र" या "ल" हो यथा----गौरी, कमला, आदि से विवाह नहीं करना चाहिए। यही मत नारद स्मृति का भी है।[5] मनु[6] एवँ याज्ञवल्क्य[7] के अनुसार मातृहीन कन्या से विवाह नहीं करना चाहिए।

इसके अतिरिक्त सपिण्ड, सगोत्र एवँ सप्रवर कन्या से विवाह नहीं करना चाहिए। इस मत को मानने वाले विष्णुधर्मसूत्र[8] याज्ञवल्क्य[9], मनु[10] एवँ नारद[11] हैं।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि कन्या अनन्यपूर्वा, अदत्ता, अक्षता, कुलवती, वर से यवीयसी, शील सम्पन्ना एवँ बुद्धिमती, स्वस्थ्य, शुभनामा एवँ सुलक्षण सम्पन्ना होनी चाहिए। प्रश्न यह उठता है कि ऐसी लड़की सुगमता से प्राप्त नहीं होती, क्या इन

---

1. कामसूत्र, 3.1.2
2. मनुस्मृति, 3.10
3. नारद स्मृति, 12.36
4. कामसूत्र, 3.1.13
5. नारद स्मृति, स्त्रीपुंसयोग, 36
6. मनुस्मृति, 3.11
7. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.53
8. विष्णुधर्मसूत्र, 24.9-10
9. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.52-53
10. मनुस्मृति, 3.5
11. नारद स्मृति, स्त्रीपुंस, 7

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुणों के अभाव में कन्या अविवाहित ही रह जायेंगी. सबसे बड़ी बात यह है कि हर दृष्टि से कन्या वर को पसँद आनी चाहिए. इस विषय में वात्स्यायन का मत है कि वही कन्या योग्य है जिससे विवाह करके पुरूष अपने को धन्य समझे, तथा जिससे विवाह करने पर मित्रगण निंदा न करें।[1]

विवाह की अवस्था का वर्णन करते समय एक बात अवश्य ही याद रखना अनिवार्य है कि विभिन्न कालों में, भिन्न भिन्न प्रांतों एवँ भिन्न भिन्न जातियों में विवाह अवस्था पृथक पृथक मानी जाती रही है.

ऋग्वेद में विवाहावस्था के विषय में कोई स्पष्ट निर्देश प्राप्त नहीं होता, किन्तु कन्यायें अपेक्षाकृत बड़ी अवस्था प्राप्त होने पर ही विवाहित होती थीं. विवाह की अवस्था के विषय में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि ऋग्वेद में कन्यायें किसी भी अवस्था में (युवा होने के पूर्व या उपराँत) विवाहित हो सकती थीं और कुछ आजीवन अविवाहित रहती थीं. गृह्यसूत्रों एवँ धर्मसूत्रों के अनुशीलन से स्पष्ट है कि लड़कियाँ युवावस्था के बिल्कुल पास पहुँच जाने या उसके प्रारँभ होने के उपराँत ही विवाहित हो जाती थीं।[2]

अब गुप्तकाल में विवाह की अवस्था क्या थी उसका विस्तृत वर्णन करेंगे. पुरूषों का विवाह ब्रम्हचर्य की समाप्ति पर, याने 25 वर्ष की अवस्था प्राप्त करने के बाद ही होता था. किंतु स्त्रियों का विवाहावस्था के विषय में किसी भी निश्चित

---

1. कामसूत्र, 3.1.3
2. काणे, पी.वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 273

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धारणा का अभाव है. विष्णु पुराण के अनुसार वर की आयु वधू से तिगुनी होना चाहिए.[1] इसका स्पष्ट अर्थ है कि कन्या की आयु 8-9 वर्ष ही होना चाहिए, जब उसका विवाह हो. किंतु याज्ञवल्क्य[2] तथा नारद[3] जैसे स्मृतिकारों का मत है कि कन्या का विवाह रजस्वला होने के पूर्व हो जाना चाहिए, अर्थात् स्मृतिकारों ने विवाह की आयु 12-13 वर्ष ही निर्धारित की है. किंतु यह धर्मशास्त्रीय एवं पौराणिक अवस्था, जन साधारण के विचारों के विपरीत थी. कामसूत्र से संकेत मिलता है कि कन्या का विवाह रजस्वला होने के पूर्व अथवा पश्चात् कभी भी हो सकता था. यह व्यावहारिक रूप में जनता में प्रचलित भी था. स्मृतिकार के स्त्री संग्रहण संबंधी नियमों से स्पष्ट है कि वे रजस्वला होने के तीन वर्ष के भीतर विवाह करने की अनिवार्यता महसूस करते थे अर्थात् उनके अनुसार लड़कियाँ 17-18 वर्ष की आयु तक ही अविवाहित रह सकती थीं.

वात्स्यायन के अनुसार वर वधू में कम से कम 3 वर्ष का अंतर होना चाहिए.[4] अर्थात् वर वधू की उम्र 25-22 वर्ष तक हो सकती है. वह 22 वर्ष की उम्र तक अविवाहित रह सकती थी.

गुप्तकालीन संस्कृत साहित्य में कवि एवं नाटककारों ने अपनी नायिकायें पर्याप्त प्रौढ़ रूप में चित्रित की हैं.[5] स्वयं

1. विष्णु पुराण, 3.10.16
2. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.64
3. नारद स्मृति, स्त्रीपुंस, 12.26-27
4. कामसूत्र, 3.1.2
5. काणे, पी.वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 276-77

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कालिदास ने अपनी सभी नायिकाओं को पूर्णरूपेण युवती दिखाया है. इंदुमति द्वारा अपनी पसंद का वर चुनना, शिव के लिए पार्वती द्वारा तपस्या करना इत्यादि. इंदुमति, पार्वती एवं शकुन्तला इत्यादि नायिकायें पूर्ण युवती एवं उपभोगक्षमा रूप में कालिदास ने प्रस्तुत की हैं.[1] वात्स्यायन ने तो पूर्ण युवती के विवाह को ही उचित माना है.[2] शकुन्तला एवं इन्दुमति का विवाह एवं गुप्तकालीन सिक्के पर अंकित कुमारदेवी के चित्र से इस बात की पुष्टि होती है.[3] याज्ञवल्क्य स्मृति में भी युवती के विवाह न करने वाले अभिभावक की निंदा की गई है.[4]

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि गुप्तकाल में कन्या के विवाह की अवस्था के विषय में जो भी धारणा रही हो, किंतु विवाह सामान्यतया रजस्वला होने के पूर्व नहीं होता था. उसके पश्चात् कम से कम 15-16 वर्ष की उम्र में ही विवाह होता होगा.

अब विवाह संस्कार का विस्तृत वर्णन करेंगे. विवाह संबंधी कृत्यों में ऋग्वेद में वर्णित सूर्या सोम विवाह का अंश महत्वपूर्ण है.[5] वैदिक एवं गृह्यसूत्रों के वर्णन से स्पष्ट है कि विवाह संस्कार के 3 भाग थे. कुछ कृत्य आरंभिक कहे जा सकते हैं, उनके उपरांत कुछ ऐसे कृत्य हैं जिन्हें हम संस्कार का सार

---

1. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 3.6 कुमारसंभवम्, 1.38-40
   मालविकाग्निमित्रम्, 2.3
2. विगतयौवनायाः पूर्व संस्तुतायाः,
   --कामसूत्र
3. एलेन, गुप्त क्वायन्स, प्लेट नं. 1
   उपाध्याय, वासुदेव, गुप्त साम्राज्य का इतिहास, भाग 2, 1952, पृष्ठ 245
4. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.64
5. ऋग्वेद, 10.85

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तत्व कह सकते हैं, यथा पाणिग्रहण, होम, अग्नि प्रदक्षिणा एवँ सप्तपदी तथा कुछ कृत्य ऐसे हैं जो उक्त मुख्य कृत्यों के प्रतिफल मात्र हैं, यथा ध्रुव तारा, अरून्धती आदि का दर्शन. मुख्य कृत्य सभी सूत्रकारों द्वारा वर्णित हैं किंतु आरँभिक एवँ अँत वालों के विस्तार में पर्याप्त भेद है।[1] विवाह सँस्कार के तीन भाग-----

1. <u>विवाह के पूर्व की प्रारँभिक क्रियायें:</u> इसके अन्तर्गत वर वधू के गुणों की परीक्षा, वर प्रेषण एवँ वाग्दान आते हैं. वाग्दान के पश्चात् ही विवाह निश्चित कहलाता है. स्वयँ विवाह में गले में माला डालना वाग्दान का पर्याय है. वाग्दान के पश्चात् अन्य माँगलिक क्रियायें-----मण्डप करण, नान्दीश्राद्ध एवँ पुण्याह वाचन, वधूगृहगमन, मधुपर्क, स्नापक, परिधापन एवँ सन्नहन, समज्जन, प्रतिसरबन्ध, वधू वर निष्क्रमण, परस्पर समीक्षण, कन्या दान तथा अग्नि स्थापन एवँ होम इत्यादि सम्पन्न होती है. उपरोक्त माँगलिक क्रियायें सभी गृहसूत्रों में एक सी ही मिलती हैं.[2]

2. <u>मुख्य या मूल विवाह सँस्कार:</u> मुख्य विवाह सँस्कार के अँतर्गत पाणिग्रहण, लाजहोम, अग्निपरिणयन, अश्मारोहण, सप्तपदी, मूर्धाभिषेक सूर्योदीक्षण, हृदयस्पर्श, प्रेक्षकानुमन्त्रण, दक्षिणादान इत्यादि आते हैं. सभी सूत्रकारों ने विवाह के मुख्य सँस्कार की विधियों का वर्णन किया है, किंतु इनका क्रम एक सा नहीं है.

3. <u>विवाह के पश्चात् की माँगलिक क्रियायें एवँ लोकाचार:</u> गृह प्रवेश के पश्चात् गृह प्रवेशीय होम, ध्रुवतारा दर्शन एवँ अरून्धती दर्शन, आग्येय स्थालीपाक, त्रिरात्रव्रत, चतुर्थीकर्म, सीमन्तपूजन,

---

1. काणे, पी. बी., <u>धर्मशास्त्र का इतिहास</u>, भाग 1, पृष्ठ 302
2. काणे, पी. बी., <u>धर्मशास्त्र का इतिहास</u>, भाग 1, पृष्ठ 303-4

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हर गौरी पूजा, इन्द्राणी पूजा, तैल हरिद्रारोपण, आर्द्राक्षता रोपण, मँगलसूत्र बन्धन, उत्तरीय प्रांत बन्धन, शरिणीदान, देवकोत्थापन एवँ मण्डपोद्वासन आदि क्रियायें सम्पादित की जाती हैं.

उपरोक्त विवाह विधि का वर्णन श्री काणे के अनुसार वर्णित है.[1]

उपरोक्त विवाह विधि का वर्णन हमें गुप्तकालीन स्मृतियों एवँ अभिलेखों तथा मुद्राओं में प्राप्त नहीं होता. मात्र कालिदास ने अपनी कृतियों में अवश्य वर्णन किया है. अब कालिदास द्वारा वर्णित विवाह विधि का वर्णन करेंगे.

<u>कालिदास द्वारा वर्णित विवाह सँस्कार:</u>

1. <u>विवाह के पूर्व की प्रारँभिक क्रियायें:</u>

इसमें वर वधू की गुण परीक्षा, कन्या के पिता के पास विवाह का प्रस्ताव भेजना, कन्या की याचना करना, तत्पश्चात् वाग्दान होता है.[2] वाग्दान होने का उल्लेख हमें गुप्तकाल में मिलता है. ध्रुवदेवी रामगुप्त की वाग्दत्ता पत्नी थी. विवाह का प्रस्ताव लेकर जाने वाली कभी कभी स्त्रियाँ भी होती थीं. वाग्दान के पश्चात् विवाह संबंधी क्रियायें-----मँडपकरण, वधूगृह-गमन, मधुपर्क, स्नापक, परिधापन, प्रतिसरबन्ध, वधूवर निष्क्रमण सम्पादित होती थीं. इनका वर्णन गृह्यसूत्रों एवँ धर्मसूत्रों के अनुसार ही कालिदास ने किया है. इनका विस्तृत विवरण स्वयंवर एवँ प्राजापत्य विवाह में वर्णन किया जावेगा.

---

1. काणे, पी.वी., <u>धर्मशास्त्र का इतिहास</u>, भाग 1, पृष्ठ 303-6
2. <u>कुमारसँभवम्</u>, 6. 29

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

2. मूल विवाह सँस्कार:

इसमें कन्यादान, अग्निस्थापन होम, पाणिग्रहण, लाजहोम, अग्निपिरणयन, अश्मारोहण, सप्तपदी, मूर्धाभिषेक आदि आते हैं.

3. विवाह के पश्चात् की माँगलिक क्रियायें:

कौतुक गृह लोकाचार- इसमें ध्रुवारून्धती दर्शन, इन्द्राणी पूजा, आर्द्राक्षतरोपण, तत्पश्चात् कुछ अभिनयादि से वर वधू का विनोद होता था. इसके पश्चात् कौतुकागार में वर कन्या, रात्रि शयन के लिए पहुँचा दिए जाते थे.

मनुस्मृति[1] के अनुसार सप्तपदी विधिपूर्ण होने पर ही विवाह पूर्ण माना जाएगा, अन्यथा नहीं.

विवाह के प्रकार:

गृह्यसूत्रों, धर्मसूत्रों एवँ स्मृतियों के काल से ही विवाह 8 प्रकार के कहे गए हैं:[2]

1. ब्राम्ह,
2. दैव,
3. आर्ष,
4. प्राजापत्य,
5. असुर,
6. गान्धर्व,
7. राक्षस,
8. पैशाच.

सँभवत: उपरोक्त आठों प्रकार के विवाह गुप्तकाल में प्रचलित रहे हों. किंतु प्रथम चार प्रकार के विवाहों को उत्तम

1. मनुस्मृति, 8.227
2. काणे, पी.वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 296
   मनुस्मृति, 3.21 याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.58
   नारद स्मृति, 38-39 विष्णुधर्म सूत्र, 24.18-19

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समझा जाता था और प्रधानता भी दी जाती थी.[1] अब हम विवाह के प्रत्येक प्रकार का विस्तृत वर्णन करेंगे. मनुस्मृति[2] के अनुसार विवाह के आठ प्रकारों का वर्णन प्रस्तुत है:

1. ब्राम्ह विवाह:

जिस विवाह में बहुमूल्य अलँकारों एवँ परिधानों से सुसज्जित, रत्नों से मँडित कन्या वेद पँडित एवँ सुचरित्र व्यक्ति को निमँत्रित कर {पिता द्वारा} दी जाती है, उसे "ब्राम्ह-विवाह" कहते हैं. लगता है इस विवाह का उद्देश्य अपनी पुत्री को पति के समान विद्वान {विदुषी} बनाना, विद्वान सँतति पैदा होना तथा उससे माता पिता की सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि था.

2. दैव विवाह:

जब पिता अलँकृत एवँ सुसज्जित कन्या किसी पुरोहित को {जो यज्ञ करता, कराता है} यज्ञ करते समय दे, तो उस विवाह को "दैव विवाह" कहा जाता है. इस प्रकार कन्या भेंट कर पिता अहोभाग्य मानता था.

3. आर्ष विवाह:

यदि एक जोड़ा पशु {एक गाय एक बैल} या दो जोड़ा पशु लेकर {केवल नियम के पालन हेतु, न कि कन्या के विक्रय के रूप में} कन्या दी जाए तो इसे "आर्ष विवाह" कहते हैं. गुप्त सम्राटों के सभी विवाह आर्ष प्रकार के थे.[3]

---

1. उपाध्याय, वासुदेव, गुप्त साम्राज्य का इतिहास, भाग 2, पृष्ठ 245
2. मनुस्मृति, 3.27-34
3. उपाध्याय, वासुदेव, गुप्त साम्राज्य का इतिहास, भाग 2, पृष्ठ 245

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

4. प्राजापत्य विवाह:

जब पिता वर और कन्या को "तुम दोनों साथ ही साथ धार्मिक कृत्य करना" यह कहकर तथा वर को मधुपर्क आदि से सम्मानित कर कन्यादान करता है तो उसे "प्राजापत्य विवाह" कहा जाता है. याज्ञवल्क्य ने इसे "काय" की संज्ञा दी है, क्योंकि ब्राम्हण ग्रंथों में "क" का अर्थ "प्रजापति" होता है. वात्स्यायन ने माता पिता और अभिभावकों द्वारा ठहराये गये विवाह का अनुमोदन किया है. प्राजापत्य विवाह में अनुलोम, प्रतिलोम तथा सवर्ण इन तीनों का ही रूप के विवाहों की सँभावना थी. अत: अनुमानत: प्राजापत्य विवाह का प्रचलन गुप्तकाल में विशेष रूप से होगा. कालिदास ने कुमारसँभवम् में पार्वती महादेव का विवाह भी इसी रीति से सम्पन्न हुआ, वर्णन किया है.[1]

5. आसुर विवाह:

जब वर अपनी शक्ति के अनुरूप कन्यापक्ष वालों तथा कन्या को धन दे देता है, तब इस प्रकार अपनी इच्छा के अनुकूल पिता द्वारा दत्त कन्या के विवाह को "आसुर विवाह" कहते हैं. इस प्रकार के विवाहों का प्रचलन गुप्तकाल में था. आसुर विवाह का संकेत कालिदास ने रघुवँशम् में "दुहितृ शुल्क" कहकर किया है.[2] तथा हरणम् नाम दिया है. गुप्तकालीन अभिलेखों में भी "आसुर विवाह" के प्रमाण उपमान स्वरूप मिलते हैं. समुद्रगुप्त के एरण प्रस्तर अभिलेख में "दत्त शुल्क" का उल्लेख हुआ है.[3] इसी प्रकार चन्द्रगुप्त द्वितीय के उदयगिरि गुहाभिलेख में उन्हें अपने

---

1. कुमारसँभवम्.
2. रघुवँशम्, 11. 38
3. फ्लीट, भारतीय अभिलेख सँग्रह, भाग 3, सँख्या 2. 2-क समुद्रगुप्त का एरण प्रस्तर अभिलेख, पृष्ठ 25

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शक्ति रूपी क्रय मूल्य से पृथ्वी का क्रय करते वर्णित किया गया है।[1] {अवक्रय-क्रीता}.

6. गान्धर्व विवाह:

वर एवँ कन्या की परस्पर सम्मति से जो प्रेम की भावना के उद्रेक का प्रतिफल हो तथा सम्भोग जिसका उद्देश्य हो, उस विवाह को "गान्धर्व विवाह" कहा जाता है. गुप्तकाल में गान्धर्व विवाह अस्तित्व में था. कवि कालिदास अभिज्ञानशाकुंतलम में शकुन्तला एवँ दुष्यन्त के गान्धर्व विवाह का उल्लेख किया है. महर्षि कण्व द्वारा भी इस विवाह को स्वीकृति भी प्राप्त हुई है. उर्वशी एवँ पुरूरवा का विवाह भी इसी वर्ग में रखा जा सकता है. वात्स्यायन के अनुसार अग्नि को साक्षी बनाकर किया गया गाँधर्व विवाह बुरा नहीं माना जाता था. उनका विचार है कि गाँधर्व विवाह में कभी भी विवाह विच्छेद नहीं हो सकता.[2] अभिलेखों में गाँधर्व विवाह का वर्णन नहीं मिलता फिर भी हम कह सकते हैं कि साहित्यिक प्रमाण इस विवाह के प्रचलन को प्रमाणित करते हैं. यह प्रथा राजकुलों में अत्यधिक प्रचलित थी.

7. राक्षस विवाह:

संबंधियों को मारकर, घायल कर घर द्वार तोड़फोड़कर जब रोती बिलखती हुई कन्या को बलवश छीन लिया जाता है तो इस प्रकार से प्राप्त कन्या के संबंध को "राक्षस विवाह" कहा जाता है. वात्स्यायन का कहना है कि यदि मनचाही पत्नी सहज भाव

---

1. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3, संख्या 6. 4-क
   चन्द्रगुप्त द्वितीय का उदयगिरि गुहाभिलेख, पृष्ठ 44
2. चकलदार, सोशल लाइफ इन एंशेंट इंडिया, पृष्ठ 138

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भाव से प्राप्त न हो तो वह छल कपट द्वारा बलात् भी प्राप्त की जा सकती है. इस प्रकार वे राक्षस विवाह का भी अनुमोदन करते हैं.

8. <u>पैशाच विवाह:</u>

जब कोई व्यक्ति चुपके से किसी सोई हुई, उन्मत्त या अचेत कन्या से संभोग करता है तो इसे निकृष्ट एवं महापातकी कार्य कहा जाता है और इसे "पैशाच विवाह" कहते हैं.

इसके अतिरिक्त कालिदास ने 2 प्रकार के विवाहों की ओर संकेत किया है:

1. कभी कभी शक्तिशाली राजा से डरकर दूसरे राजा अपनी कन्या उसे विवाह के रूप में दे देते थे. कालिदास के समय में अवश्य ही ऐसी घटनायें घटित होती थीं. कुश एवं कुकुदती का का विवाह ऐसा ही विवाह प्रतीत होता है.[1] समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि समुद्रगुप्त ने अपने साम्राज्य का विस्तार जिन नीतियों के अनुसार किया उसमें "कन्योपायन दान" भी एक प्रमुख नीति है. इसमें विजित या भयभीत राजा अपनी पुत्रियों को भेंट स्वरूप लाकर राजा (समुद्रगुप्त) के साथ विवाह कर देता था.[2] इस प्रकार समुद्रगुप्त कन्याओं का उपहार लेकर उनसे विवाह करता था तथा गुप्तकाल में "कन्योपायनदान" यह भी एक प्रकार का विवाह प्रचलित था.

2. कभी कभी घमंडी राजा दूसरे राजा की नवपरिणीता को बलात् छीनकर उसे अपनी पत्नी बना लेते थे.[3] कालिदास ने

---

1. <u>रघुवंशम्</u>.
2. फ्लीट, <u>भारतीय अभिलेख संग्रह</u>, भाग 3, संख्या 1.1
   समुद्रगुप्त का इलाहाबाद मरणोपरांत लिखित प्रस्तर स्तंभ लेख, 17
   पृष्ठ 17.
3. <u>रघुवंशम्</u>, 7.31

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रघुवंशम् में इसका वर्णन किया है.

स्मृतियों में विविध वर्णों के लिए इन आठ प्रकारों की उपयुक्तता के विषय में विभिन्न मत मिलते हैं. मनु, नारद इत्यादि सभी ने प्रथम चार अर्थात्, ब्राम्ह, दैव, आर्ष एवं प्राजापत्य को स्वीकृत किया {प्रशस्त एवं धर्म्य} है.[1] सभी ने ब्राम्ह विवाह को सर्वश्रेष्ठ तथा क्रम से बाद वाले को उत्तमतर कहा है तथा पैशाच विवाह को निकृष्टतम् कहा है. एक मत के अनुसार प्रथम चार {ब्राम्ह, दैव, आर्ष, प्राजापत्य} ब्राम्हणों के लिए उपयुक्त हैं.[2] दूसरे मत से प्रथम छः {ब्राम्ह, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, असुर, गान्धर्व} ब्राम्हणों के लिए, अंतिम चार क्षत्रियों के लिए, गांधर्व, असुर, पैशाच, वैश्यों एवं शूद्रों के लिए हैं.[3] तीसरे मत से प्राजापत्य, गान्धर्व एवं असुर सभी वर्णों के लिए तथा पैशाच एवं आसुर किसी वर्णन के लिए नहीं हैं. किन्तु आगे चलकर मनु[4] ने आसुर को वैश्यों एवं शूद्रों के लिए मान्य ठहराया है. मनु[5] का एक मत और है कि गान्धर्व एवं राक्षस क्षत्रियों के उपयुक्त {धर्म्य} है, दोनों का मिश्रण {यथा-जहाँ कन्या वर से प्रेम करे, किंतु उसे माता पिता या अभिभावक न चाहें तथा अवरोध उपस्थित करें और प्रेमी लड़ाई लड़कर उठा ले जाय} भी क्षत्रियों के लिए ठीक है.

---

1. मनुस्मृति, 3.24,
   नारद स्मृति, स्त्रीपुंस, 44
2. मनुस्मृति, 3.14
3. मनुस्मृति, 3.23
4. मनुस्मृति, 3.24
5. मनुस्मृति, 3.26

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नारद के अनुसार गान्धर्व सभी वर्णों में पाया जाता है.[1] वात्स्यायन ने भी प्रारंभ में ब्राम्ह विवाह को सर्वश्रेष्ठ माना है, किंतु अंत में उसने अपने विषय के प्रति सत्य होते हुए गाँधर्व विवाह को ही सर्वश्रेष्ठ माना है.[2]

<u>स्वयँवर विवाह:</u>

गुप्तकाल में स्वयँवर प्रथा विद्यमान थी. कालिदास ने अपने <u>रघुवँशम्</u> में अज इँदुमति तथा राम सीता के स्वयँवर का बड़ा मनोहारी एवँ विस्तृत वर्णन किया है.[3] इन रघुवँशी राजाओं का विवाह स्वयँवर द्वारा ही हुआ था. गुप्तकालीन अभिलेखों में आलँकारिक रूप से लक्ष्मी द्वारा राजाओं का वरण करने का वर्णन है. स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ शिलालेख[4] में भाग्य एवँ श्री की देवी लक्ष्मी द्वारा स्कँदगुप्त को वरण किये जाने का वर्णन (लक्ष्मी: स्वयं यं वरयाँच कार) है. ऐसा ही वर्णन बुधगुप्त के एरण प्रस्तर स्तँभ लेख में है, जिसमें मातृविष्णु का वरण राजलक्ष्मी ने (स्वयं वरेव राजलक्ष्म्याधिगतेन) स्वेच्छा किया.[5] इसी प्रकार का वर्णन तोरमाण के एरण से प्राप्त प्रस्तर वराह अभिलेख में धन्यविष्णु के लिए कहा गया : जैसे विधातृ की इच्छा से कोई कुमारी कन्या उसे पति के रूप में वरण कर रही हो इस प्रकार राजलक्ष्मी (विवाह की इच्छा से) (स्वयंवरेव राजलक्ष्म्याधिगतस्य) आई.[6] इससे स्पष्ट है कि गुप्तकाल में भी राजकुल की कुमारियों को पति निर्वाचन की

1. <u>नारद स्मृति</u>, स्त्रीपुंस, 40
2. <u>कामसूत्र</u>, 3.5.28
3. <u>रघुवँशम्</u>,
4. फ्लीट, <u>भारतीय अभिलेख सँग्रह</u>, भाग 3, सँख्या 14.8 स्कँदगुप्त का जूनागढ़ शिलालेख, पृष्ठ 77
5. फ्लीट, <u>भारतीय अभिलेख सँग्रह</u>, भाग 3, सँख्या 19.12-क बुधगुप्त का एरण प्रस्तर स्तम्भ, पृष्ठ 110
6. फ्लीट, <u>भारतीय अभिलेख सँग्रह</u>, भाग 3, सँख्या 36.23-क तोरमाण का एरण से प्राप्त प्रस्तर वराह अभिलेख, पृष्ठ 195

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्वतँत्रता थी. स्मृतियों के अनुसार पिता अथवा परिवार के अन्य सदस्य कन्यादान के अधिकारी हैं किंतु यदि परिवार की ओर से इस कर्तव्य का निर्वाह नहीं हुआ तो कन्या रजोदर्शन के तीन वर्ष बाद स्वयं अपना पति चुन सकती है. मनु[1] एवं याज्ञवल्क्य[2] का यही मत है किंतु स्वयं वर ढूँढने वाली कन्या माता, पिता, भाई द्वारा प्रदत्त अलँकारों को साथ न ले जावे.[3] नारद ने कन्या की स्वतँत्रता पर यह प्रतिबँध लगाया है कि उसे राजा से अनुमति लेनी चाहिए.[4] स्वयँवर एक प्रकार का गाँधर्व विवाह समझा जा सकता है, उसमें कन्या उपस्थित उम्मीदवारों में से एक पति का चुनाव करती है.[5]

गुप्तकाल में स्वयँवर प्रथा के प्रचलन के विषय में कुछ विद्वान सँदेह करते हैं. उनका कहना है कि अभिलेखों में स्वयँवर का उल्लेख लक्ष्मी के साथ आलँकारिक रूप में हुआ है तथा साहित्य में इसकी चर्चा पूर्ववर्ती राजाओं अथवा वीरों अथवा काल्पनिक नायकों के प्रसँग में हुई है और इसका समसामयिक कोई वास्तविक उदाहरण उपलब्ध नहीं है. यदि इस प्रकार की वस्तुत: उन्हें स्वतँत्रता थी भी तो वह सीमित रही होगी, क्योंकि स्वयँवर के आयोजन सार्वजनिक न होकर वैयक्तिक ही होते थे. अभिभावक जिन लोगों को अपनी पुत्री के योग्य समझते थे उन्हीं को उसमें सम्मिलित होने का आमँत्रण देते थे, और उन्हीं में से किसी एक का वरण कुमारी

---

1. मनुस्मृति, 9.90, 9.61
2. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.64
3. मनुस्मृति, 9.92
4. नारद स्मृति, 12.12
5. काणे, पी.वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 299

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को करना पड़ता था।[1] जो कुछ भी विधानों का संदेह हो किंतु गुप्तकाल में स्वयँवर प्रथा पूर्ण अस्तित्व में थी.

वैसे इस प्रकार का सरल स्वयँवर सभी जातियों की लड़कियों के लिए संभव था, किंतु महाकाव्यों में वर्णित स्वयँवर बड़े विशाल पैमाने पर होते थे जो केवल कुलों में ही संभव थे.[2] स्वयंवर की प्रथा क्षत्रियों में तो 12 वीं शताब्दी तक प्रचलित रही.[3]

<u>बाल विवाह:</u>

गुप्तकाल में बाल विवाह का प्रचलन था या नहीं, यदि था तो किस सीमा तक, इससे स्पष्ट प्रमाण हमें प्राप्त नहीं होते. प्राचीनकाल में ब्राम्हणों की 20 वर्ष की आयु विवाह के लिए एक सामान्य अवस्था मानी जानी चाहिए.[4] मनु[5] के अनुसार 30 वर्ष का पुरूष 12 वर्ष की लड़की से या 24 वर्ष का पुरूष 8 वर्ष की लड़की से विवाह कर सकता है. इसी के आधार पर <u>विष्णुपुराण</u>[6] ने कन्या एवँ वर की विवाह अवस्थाओं का अनुपात 1:3 रखा है.

मनु[7] के अनुसार एक युवती भले ही आजीवन अविवाहित रह जाए किंतु सद्गुणविहीन व्यक्ति से विवाहित न हो. किंतु याज्ञवल्क्य[8] एवँ नारद[9] के अनुसार अविवाहित भी न रहे क्योंकि

---

1. गुप्त, परमेश्वरी लाल, <u>गुप्त साम्राज्य</u>, 1970, पृष्ठ 431
   मजूमदार, रामचौधी एवँ अल्तेकर, <u>वाकाटक गुप्त एज</u>, पृष्ठ 351, पाद टिप्पणी, 1.
2. काणे, पी. वी., <u>धर्मशास्त्र का इतिहास</u>, भाग 1, पृष्ठ 300
3. अल्तेकर, ए. एस., <u>पोजीशन ऑफ वीमेन इन हिंदू सिविलिजेशन</u>, 1959, पृष्ठ 66
4. काणे, पी. वी., <u>धर्मशास्त्र का इतिहास</u>, भाग 1, पृष्ठ 272
5. <u>मनुस्मृति</u>, 9.94
6. <u>विष्णुपुराण</u>, 3.10.16
7. <u>मनुस्मृति</u>, 9.89-90
8. <u>याज्ञवल्क्य स्मृति</u>, 1.64
9. <u>नारद स्मृति, स्त्रीपुंस</u> 26-27

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अविवाहित कन्या रहने पर पिता या अभिभावक कन्या के प्रत्येक मासिक धर्म पर गर्भ गिराने के पाप का भागी होता है. इसी कारण कालान्तर में एक नियम सा बन गया कि कन्या का विवाह शीघ्र हो जाना चाहिए, भले ही वर गुणहीन ही क्यों न हो. लगभग ईसापूर्व 600 से ईसा की आरम्भिक शताब्दी तक युवती होने के कुछ मास इधर या उधर विवाह कर देना किसी गड़बड़ी का सूचक नहीं था. किंतु 200 ई. के लगभग युवती होने के पूर्व विवाह कर देना आवश्यक सा हो गया था. इसके कारण संभवत: भिक्षुणियों के नैतिक जीवन में गिरावट तथा कन्याओं में शिक्षा की कमी होने से कन्या निरर्थक तथा अकारण अविवाहित क्यों रहे.[1] चाहे जो भी कारण हो किंतु गुप्तकाल में लड़कियों के विवाह की उम्र की सीमा कम किये जाने की प्रवृत्ति दिखाई देती है.[2]

कुछ धर्मग्रंथों ने अभिभावकों को अनिवार्य रूप से रजस्वला होने के पूर्व विवाह कर देने का आदेश दिया है. किंतु वात्स्यायन एवं कालिदास से साहित्य से स्पष्ट है कि वे कन्या का विवाह पूर्ण युवती होने पर ही करना उचित बताते हैं. कन्या के विवाह के अवस्था के विषय में विस्तृत विवरण "विवाह की अवस्था" परिच्छेद में है किंतु इतना स्पष्ट है कि धर्मशास्त्रों के अनुसार कन्या का विवाह कम आयु में करने का विधान है किंतु गुप्तकाल में बाल विवाह का प्रचलन नहीं था.

श्री काणे का विचार है कि उपरोक्त विवाह संबंधी नियम केवल ब्राम्हणों पर ही लागू होते हैं. गुप्तकालीन कवि एवं नाटक

1. काणे, पी.वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 275
2. मजुमदार, आर.सी., भारतीय जनता का इतिहास और संस्कृति श्रेण्य युग, 1984, पृष्ठ 625

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

-कारों ने अपनी नायिकाओं को पर्याप्त प्रौढ़ रूप में {यौवनावस्था} चित्रित किया है अर्थात् गुप्तकाल में बाल विवाह का प्रचलन होते हुए भी हम कह सकते हैं कि विवाह युवावस्था में ही होते थे.

एक विवाह एवं बहु विवाह:

यद्यपि वैदिक साहित्य के अवगाहन से पता चलता है कि उन दिनों एक पत्नीकता का ही नियम एवं आदर्श था, किंतु बहुपत्नीकता के कतिपय उदाहरण मिल ही जाते हैं।[1] ऋग्वेद[2] की एक ऋचा से स्पष्ट है कि इन्द्र की कई रानियाँ थीं, क्योंकि उसकी रानी शची ने अपनी बहुत सी सौतों को हरा दिया था या मार डाला था तथा इन्द्र एवं अन्य पुरूषों पर एकाधिपत्य स्थापित कर लिया था. शतपथ ब्राम्हण[3] के अनुसार "चार पत्नियाँ सेवा में लगीं हैं-----1. महिषी {अभिषिक्त रानी}, 2. वावाता {चहेती पत्नी}, 3. परिवृक्ता {त्यागी हुई}, एवं 4. पालागली {निम्न जाति की}. महाभारत[4] में श्रीकृष्ण की 16 सहस्त्र पत्नियाँ होने का उल्लेख है.

गुप्तकाल में भी बहुपत्नी प्रथा का प्रचलन था. याज्ञवल्क्य[5] ने भी वर्णक्रम के अनुसार कई विवाह करने का विधान बताया है. मनु[6] ने भी एक से अधिक पत्नियाँ रखने के विषय में विचार व्यक्त

---

1. काणे, पी.वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 312
2. ऋग्वेद, 10. 159
3. शतपथ ब्राम्हण, 13.4.1.9
4. महाभारत, मौसल पर्व, 5.6
5. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.57
6. मनुस्मृति, 3.12-13

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किए हैं. विष्णुधर्मसूत्र[1], याज्ञवल्क्य स्मृति[2] एवँ नारद स्मृति[3] के अनुसार ब्राम्हण की तीन, क्षत्रिय की दो तथा वैश्य एवँ शूद्र की एक पत्नी हो सकती है.

कालिदास ने कई बहुपत्नीक राजाओं का वर्णन किया है. राजा दिलीप की बहुत सी रानियाँ थीं.[4] राजा दशरथ की तीन रानियाँ थीं.[5] फिर दुष्यन्त के रनिवास में भी कई रानियाँ थीं.[6] फिर भी उसने शकुन्तला से गाँधर्व विवाह किया था. राजा अग्निमित्र की इरावती और धारिणी नाम की दो रानियाँ होते हुए भी उसने मालविका से विवाह किया.[7] इसके अतिरिक्त अग्निमित्र की और भी रानियाँ रनिवासों में रहती थीं.[8] काशी नरेश की पुत्री राजा पुरूखा की रानी थी किंतु उसने अपनी प्रेमिका अप्सरा उर्वशी से विवाह भी कर लिया था.[9] कालिदास के काव्य रघुवँशम् के राजा-----अतिथि[10], कुश[11], सुदर्शन[12] एवँ अग्निवर्ण[13] सभी एक से अधिक पत्नियों के पति थे. मृच्छकटिकम् में चारूदत्त

---

1. विष्णुधर्मसूत्र, 24. 1-4
2. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1. 57
3. नारद स्मृति, 12. 5-6
4. रघुवँशम्, 1. 32
5. रघुवँशम्, 10. 54-56
6. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अँक 3, पृष्ठ 51
7. मालकाग्निमित्रम्, 2. 14
8. मालविकाग्निमित्रम्, अँक 5, पृष्ठ 354
9. विक्रमोर्वशीयम्, अँक 5
10. रघुवँशम्, 17. 3
11. रघुवँशम्, 16. 54
12. रघुवँशम्, 18. 53
13. रघुवँशम्, 19. 52

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी एक पत्नी के रहते हुए गणिका वसंत सेना को अपनी पत्नी बना लेता है।[1] अतः स्पष्ट है कि बहुपत्नी प्रथा मात्र धनिक वर्ग या राज परिवार में ही नहीं अपितु साधारण परिवार भी इस प्रथा के प्रभाव में थे.

मनु[2] एवं याज्ञवल्क्य[3] ने उन परिस्थितियों का वर्णन किया है जिनमें पति दूसरा विवाह कर सकता है:

> "यदि पत्नी मदिरा पीती हो, किसी पुराने रोग से पीड़ित हो, धोखेबाज हो, खर्चीली हो, कटुभाषी हो और केवल पुत्रियाँ ही जनती हो तो पति दूसरा विवाह कर सकता है".

गुप्त राजकुल में भी बहुपत्नी प्रथा थी. गुप्त राजा चन्द्रगुप्त द्वितीय की दो रानियाँ थीं-----कुबेरनागा तथा ध्रुवदेवी.[4] कुमारगुप्त तथा बंधुवर्मन के मंदसौर प्रस्तर अभिलेख[5] में भगवान स्मर की दो पत्नियाँ रति और प्रीति का वर्णन है.[6] आदित्यसेन के अफसढ़ प्रस्तर लेख[6] में सपत्नियों की स्थिति में विद्यमान सहज विरोध का वर्णन है. निश्चित ही राजाओं की एक से अधिक पत्नियाँ होती थीं और उन सपत्नियों के बीच सहज विरोध एवं

---

1. मृच्छकटिकम्, अंक 10
2. मनुस्मृति, 5.80
3. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.80
4. उपाध्याय, वासुदेव, गुप्त साम्राज्य का इतिहास, भाग 2, पृष्ठ 245
5. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3, संख्या 18.11 कुमारगुप्त तथा बंधुवर्मन का मंदसौर प्रस्तर अभिलेख, पृष्ठ 104
6. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3, संख्या 42.28 आदित्यसेन के अफसढ़ प्रस्तर लेख, पृष्ठ 255

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ईर्ष्याभाव रहता था. गुप्त वाकाटक अभिलेखों में "महादेवी" एवं "अग्रमहिषी"[1] जैसी पदवियों से स्पष्ट है कि तत्कालीन समाज में द्विभार्या या बहुभार्या पद्धति निश्चित रूप से थी. यह प्रथा राजपरिवारों अथवा धनीवर्ग में निश्चित रूप से थी. कुमार गुप्त के तुमैन अभिलेख[2] में "साध्वीम् इव धर्मपत्नीम्" की उपमा दी गई है. अत: गुप्त समाज में पवित्र चरित्र की प्रथम पत्नी की स्थिति उच्च थी. प्राय: सभी गुप्तकालीन अभिलेखों में महादेवी, देवी, परमदेवी, रानी, भट्टारिका, परमभट्टारिका इत्यादि उपाधियों का उल्लेख है जो एक से अधिक पत्नियों के पद का निर्धारक होगा. देवी, महादेवी, भट्टारिका इत्यादि उपाधियों का वर्णन कालिदास ने भी किया है. इन उपाधियों का विस्तृत विवरण अध्याय 8 में किया जावेगा.

गुप्तकाल में पत्नी के लिए आवश्यक था कि वह पति की आजीवन सेवा करे और उसकी मृत्यु के पश्चात् सतीत्व को अँगीकार करे किंतु पत्नी की मृत्यु होने पर पति को दूसरा विवाह करने की पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की गई है. गुप्तकाल में बहुपत्नीत्व का प्रचलन मात्र राजघरानों तथा धनिकवर्ग में ही नहीं था अपितु सामान्य जनों में भी इस का व्यापक प्रचलन था. धनाढ्य व्यक्ति की नि:संदेह अनेक पत्नियाँ होती थीं जो बाह्य रूप से तो सुखी एवं विलासिता का जीवन जीती थीं किंतु वे आँतरिक रूप से दु:खद जीवन व्यतीत करती थीं. दुष्ट, असँयमी, नि:सँतान और मात्र पुत्रियाँ ही उत्पन्न करने वाली स्त्रियाँ ही प्राय: सौत या सपत्नी

---

1. फ्लीट, <u>भारतीय अभिलेख सँग्रह</u>, भाग 3
2. <u>एपीग्रैफिया इण्डिका</u>, भाग 36, पृष्ठ 117
   कुमारगुप्त का तुमैन अभिलेख.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का सामना करने को मजबूर थी. कभी कभी पति की अस्थिर मति भी सौत आने का कारण होती थी![1]

श्री काणे के अनुसार निम्न कारण ही उनके प्रति सामाजिक दुर्व्यवहार तथा बहुपत्नीकता के लिए उत्तरदायी हैं:

1. पुत्रों की अत्यधिक आध्यात्मिक महत्ता,
2. बाल विवाह एवं उसके फलस्वरूप,
3. स्त्रियों की अशिक्षा,
4. स्त्रियों को अपवित्र मानने की प्रथा का क्रमशः विकास,
5. उन्हें शूद्रों के समकक्ष रखना, तथा
6. स्त्रियों की पुरूषों पर पूर्ण आश्रितता.[2]

<u>एकपत्नीत्व:</u>

बहुपत्नी प्रथा के प्रचलन के बाद भी गुप्तकालीन समाज में "एकपत्नीत्व" को महत्व था. इसके उल्लेख हमें <u>रघुवँशम्</u> एवँ <u>कुमारसँभवम्</u> में मिलते हैं. सीता का त्याग करके, किसी दूसरी स्त्री से विवाह न करने वाले राम की प्रशँसा की गई है. उन्होंने अश्वमेध यज्ञ के समय सीता की सोने की मूर्ति को ही अपने बायें बिठाकर यह धार्मिक कृत्य सम्पादित किया था.[3] इसी प्रकार सती के देहत्याग के बाद महादेव जी ने भी दूसरा विवाह नहीं किया था.[4] <u>कुमारसँभवम्</u> में वर्णन है कि अपने पति की अकेली पत्नी होना गौरव की बात थी.[5]

---

1. <u>कामसूत्र</u>, 3.4.55-56, 4.2.1, 4.4.72-90
2. काणे, पी.वी., <u>धर्मशास्त्र का इतिहास</u>, भाग 1, पृष्ठ 314
3. <u>रघुवँशम्</u>, 15.61
4. <u>कुमारसँभवम्</u>, 1.53
5. <u>कुमारसँभवम्</u>, 1.50

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुप्तकालीन राजाओं में चन्द्रगुप्त द्वितीय को छोड़कर किसी भी अन्य प्रतापी राजा, चन्द्रगुप्त प्रथम, समुद्रगुप्त, स्कंदगुप्त एवं कुमारगुप्त इत्यादि के एक से अधिक पत्नियाँ होने का प्रमाण नहीं मिलता. अत: हम कह सकते हैं कि गुप्तकाल में साधारणत: एक विवाह को ही महत्व था.

उपपत्नी प्रथा:

अपनी विवाहिता पत्नी के जीवित रहते यदि पति दूसरी स्त्री को विवाह किए बिना रख लेता है तो वह उसकी "उपपत्नी" कहलायेगी. "उपपत्नी" का उल्लेख सिर्फ याज्ञवल्क्य ने ही किया है. उनके अनुसार यदि कोई पुरूष दूसरे की अवरूद्धा दासी और भुजिष्या दासी से संभोग करे, तो दासी के गम्य होने पर भी पुरूष को पचास पण दण्ड दे.[1]

उपपत्नी 2 प्रकार की होती हैं:

1. अवरूद्धा उपपत्नी: ऐसी स्त्री जो परिवार में रखी जाती है और किसी अन्य पुरूष से संभोग नहीं कर सकती है.
2. भुजिष्या उपपत्नी: ऐसी स्त्री परिवार से बाहर किसी अन्य जगह पर रखी जाती है और रखने वाले पुरूष से ही संभोग कर सकती है.

बहुभर्तृकता:

वैदिक साहित्य में कहीं भी "बहुभर्तृकता" अथवा "बहुपतिप्रथा" के प्रचलन का स्पष्ट उदाहरण नहीं मिलता. तैत्तिरीय संहिता एवं ऐतरेय ब्राम्हण से स्पष्ट है कि उनके प्रणयन कालों एवं

---

1. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2. 290

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उनके पूर्व बहुभर्तृकता का कहीं नाम नहीं था. उसके अनुसार : "एक यूप में वह दो मेखलाएँ बाँधता है, इसी प्रकार एक पुरूष दो पत्नियाँ प्राप्त करता है, वह दो यूपों के चतुर्दिक एक ही मेखला नहीं बाँधता. इसी प्रकार एक पत्नी दो पति नहीं प्राप्त करती.[1] ऐतरेय ब्राम्हण के मत से : "अत: एक पुरूष की कई पत्नियाँ हैं, किंतु एक पत्नी के एक ही साथ कई पति नहीं हैं".[2] मात्र एक उदाहरण महाभारत में पाँच पाण्डवों की पत्नी द्रौपदी का मिलता है किंतु कुमारिल भट्ट के तंत्रवार्तिक में एक व्याख्या है कि कई द्रौपदियाँ थीं जो एक दूसरी से मिलती जुलती थीं और महाभारत ने उन्हें आलंकारिक रूप से एक ही द्रौपदी के रूप में रख दिया है. वास्तव में पाँच द्रौपदियाँ थीं, जिनमें प्रत्येक प्रत्येक पाण्डव से विवाहित हुई थी.[3]

State Museum Library Lucknow 7226

धर्मसूत्रों एवँ स्मृतियों में "नियोग" तथा "पुनर्विवाह" की व्यवस्था तो की गई है, किंतु नियोग विवाह नहीं है और पुनर्विवाह पति की मृत्यु के बाद ही सँभव है. अत: ये प्रथाएँ बहु पतित्व के उदाहरण नहीं हैं. कौटिल्य के <u>अर्थशास्त्र</u>[4] से इस प्रथा के प्रचलन का सँकेत मिलता है. उनके अनुसार : "एक ही माता से अनेक पिताओं द्वारा उत्पन्न हुए पुत्रों का दायभाग पिता की ओर से ही जाना चाहिए".

बृहस्पति ने बहुभर्तृकता को अनुचित मानते हुए राजा को इसमें हस्तक्षेप नहीं करने का आदेश दिया है. उनका कथन है : "कुछ देशों में एक अत्यन्त घृणास्पद बात यह है कि लोग भाई की

1. <u>तैत्तिरीय सँहिता</u>, 6.6.4.3, 6.5.4.1
2. <u>ऐतरेय ब्राम्हण</u>, 12.11
3. <u>तंत्रवार्तिक</u>, पृष्ठ 209
   काणे, पी.वी., <u>धर्मशास्त्र का इतिहास</u>, भाग 1, पृष्ठ 314-15
4. <u>अर्थशास्त्र</u>, 3.5.13

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मृत्यु के उपरांत उसकी विधवा से विवाह कर लेते हैं, यह भी घृणास्पद है कि एक कन्या पूरे कुटुम्ब को दे दी जाती है. इसी प्रकार फारस (पारसी को) में लोग माता से भी विवाह कर लेते हैं![1]

इसी प्रकार कालिदास के कुमारसंभवम्[2] से स्पष्ट है कि गुप्तकाल में बहुपत्नी प्रथा का प्रचलन तो था किंतु स्त्री का एक ही पति होता था, अर्थात् बहुभर्तृकता नहीं थी. बहुभर्तृकता के दो स्वरूप हैं:

1. मातृपक्षीय:

जब कोई स्त्री किन्हीं दो या अधिक व्यक्तियों से संबंध जोड़ती है, जो एक दूसरे से संबंधित नहीं भी हों और कुल का क्रम स्त्री से ही चलता हो. यह प्रथा मलावार तट के नायर कुलों में पाई जाती थी किंतु अब ऐसी बात नहीं है.

2. भ्रातृपक्षीय:

इसमें एक नारी कई भाइयों की पत्नी हो जाती है. यह प्रथा का प्रचलन भगवानलाल इन्द्र जी के अनुसार अब भी टोंस एवं यमुना के बीच कालसी, कुमायुँ आदि की ओर कई वर्गों के लोग बहुभर्तृकता के अनुगामी हैं और उससे उत्पन्न पुत्र को जीवित ज्येष्ठ भाई से उत्पन्न पुत्र मानते हैं.[3]

अनमेल वृद्ध विवाह:

गुप्तकाल में अनमेल वृद्ध विवाह के प्रचलन का भी संकेत मिलता

---

1. बृहस्पति स्मृति, स्मृति चन्द्रिका, 1, पृष्ठ 10
2. कुमारसंभवम्, 3.7
3. काणे, पी.बी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 315
   पंडित भगवानलाल इन्द्र जी, इंडियन एण्टिक्वेरी, जिल्द 8, पृष्ठ 88

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है. अनमेल वृद्ध विवाह के उदाहरण कालिदास के साहित्य में प्राप्त होते हैं. सामान्यत: पुरूष पूर्ण युवा होने पर ही विवाह करते थे किंतु उन्हें सभी अवस्थाओं में विवाह करने की छूट होती थी. पहले से कई रानियाँ होते हुए भी दुष्यन्त ने शकुन्तला से विवाह किया था. निश्चित ही दुष्यंत प्रौढ़ावस्था में होंगे और उसकी तथा शकुन्तला की आयु में अधिक अँतर होगा क्योंकि तब शकुन्तला यौवनावस्था में अर्थात् 16 वर्ष के लगभग आयु की होगी. इसी प्रकार का उदाहरण <u>मालविकाग्निमित्रम्</u> में आता है. अग्नि मित्र की बड़ी रानी धारिणी के पुत्र वसुमित्र ने युद्ध में जाकर अपनी वीरता से शत्रुओं को भगाया और अश्वमेध के घोड़े शत्रुओं से छीन लिए. अत: निश्चित ही वसुमित्र युवा एवँ अग्निमित्र 45–50 वर्ष की आयु के आसपास होगा. ठीक इसी वक्त पर युवती परंतु कुमारी मालविका का प्रेम राजा अग्निमित्र से होता है और अँत में मालविका तथा अग्निमित्र का विवाह हो जाता है. यह अनमेल वृद्ध विवाह का एक सशक्त प्रमाण है.

<u>विष्णु पुराण</u> ने विवाह की अवस्था निश्चित करते समय वधू एवँ वर की आयु का अनुपात 1:3 रखा है अर्थात् वर की आयु वधू की आयु से तिगुनी होनी चाहिए. वर वधू की आयु का यह अनुपात निश्चित ही अनमेल है.[1] मान लीजिए यदि गुप्तकाल में 16 वर्ष की आयु में कन्या का विवाह होता है तो वर की आयु 48 वर्ष हुई. इस प्रकार एक युवा कन्या का विवाह वृद्ध से हुआ. किंतु वात्स्यायन ने अपने <u>कामसूत्र</u> में वधू की आयु वर से मात्र 3 वर्ष छोटी ही निश्चित की है. इस प्रकार वात्स्यायन ने अनमेल विवाहों का विरोध किया है.

---

1. <u>विष्णुपुराण</u>, 3. 10. 16
2. <u>कामसूत्र</u>, 3. 1. 2

३. [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

१. [illegible]

२. [illegible]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निश्चित ही समुद्रगुप्त की युद्धनीति में कन्योपपायन नीति के अनुसार विजित राजा अपनी कन्यायें समुद्रगुप्त को देते थे. अथवा उससे विवाह कर देते थे. जो कम उम्र की होती होंगी. इस प्रकार अनमेल विवाह राजकुलों में भी होते होंगे.

इन अनमेल वृद्ध विवाहों के कारण क्या हों ? इसका पहला कारण है गुप्तकाल में बहुपत्नीत्व की प्रथा का प्रचलन, एक से अधिक पत्नी एक साथ न रखकर बाद बाद में भी रखते होंगे अतः निश्चित ही कन्या की उम्र कम होगी. दूसरा कारण, राजाओं एवं धनिक वर्ग का रोमांटिक एवं विलासिता से पूर्ण जीवन. अधिक उम्र का पुरूष कम वर्ष की कन्या के रूप सौंदर्य पर मोहित हो उससे विवाह कर लेता था. अँतिम तथा तीसरा कारण वंशवृद्धि के लिए पुत्र प्राप्ति की कामना. पुत्रप्राप्ति के लिए पुरूष किसी भी उम्र में तथा कितने भी विवाह करने का अधिकारी हो जाता था.

<u>विधवा विवाह:</u>

साधारणतः स्त्रियाँ पति की मृत्यु के पश्चात् वैधव्य जीवन व्यतीत करती थीं. स्मृतियों में विधवा स्त्रियों के लिए आत्मसंयम, सतीत्व तथा सादा जीवन व्यतीत करने का विधान बताया गया है. उन्हें आभूषण पहनना, केश सँवारना तथा उबटन इत्यादि लगाना वर्जित था. अतः वे सौंदर्य प्रसाधनों से रहित सात्त्विक जीवन व्यतीत कर सकें, इसलिए स्मृतिकारों ने उन्हें पति की सम्पत्ति में से उत्तराधिकार दिया है.

किंतु इसके साथ ही विधवा के पुनर्विवाह एवं अन्य स्त्रियों के पुनर्विवाह के प्रचलन के भी प्रमाण मिलते हैं. "पुनर्भू" शब्द उस विधवा के लिए प्रयुक्त होता है, जिसने पुनर्विवाह किया है.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नारदस्मृति[1] के अनुसार सात प्रकार की पत्नियाँ होती हैं जो पहले किसी व्यक्ति से विवाहित (परपूर्वा) हो चुकी रहती हैं, उनमें "पुनर्भू" के तीन प्रकार होते हैं और "स्वैरिणी" के चार प्रकार होते हैं:

पुनर्भू:

1. वह, जिसका विवाह में पाणिग्रहण हो चुका हो किंतु समागम न हुआ हो, इसके विषय में विवाह एक बार पुन: होता है.

2. वह स्त्री, जो पहले अपने पति के साथ रहकर उसे छोड़ दे और अन्य भर्ता कर ले किंतु पुन: अपने मौलिक पति के यहाँ चली आये.

3. वह स्त्री, जो अपने पति की मृत्यु के उपरांत उसके संबंधियों द्वारा, देवर के न रहने पर, किसी सपिण्ड को या उसी जाति वाले किसी को दे दी जाए (यह नियोग है, जिसमें कोई धार्मिक कृत्य नहीं किया जाता है).

स्वैरिणी:

1. वह स्त्री, जो पुत्रहीन या पुत्रवती होने पर अपने पति की जीवितावस्था में प्रेमवश किसी अन्य पुरुष के यहाँ चली जाए.

2. वह स्त्री, जो अपने मृतपति के भाइयों तथा अन्य लोगों को न चाहकर किसी अन्य के प्रेम में फँस जाए.

3. वह स्त्री, जो विदेश से आकर या क्रीत होकर भूख प्यास से व्याकुल होकर किसी व्यक्ति की शरण में आकर कह दे---"मैं तुम्हारी हूँ".

4. वह स्त्री, जो किसी अजनबी को देशाचार के कारण अपने गुरुजनों द्वारा सुपुर्द कर दी जाय, किंतु स्वैरिणी हो जाने का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपराध करे जब कि उनके द्वारा या उस स्त्री के द्वारा नियोग के विषय में स्मृतियों के नियम न पालित हों. नारद के अनुसार उपर्युक्त दोनों प्रकारों में सभी क्रमानुसार निकृष्ट कहे जाते हैं.

किंतु याज्ञवल्क्य[1] ने विस्तृत विभाजन न देते हुए "पुनर्भू" को दो भागों में विभाजित किया है :

1. वह, जिसका पति से अभी समागम न हुआ हो,
2. वह, जो समागम कर चुकी हो, इन दोनों का का विवाह पुनः होता है. {पुनर्भू वह है, जो पुनः संस्कृता हो}.

याज्ञवल्क्य के अनुसार स्वैरिणी वह है जो अपने विवाहित पति को छोड़कर किसी अन्य पुरूष के प्रेम में फँसकर उसी के साथ रहती है.

गुप्तकाल में विधवा एवँ अन्य स्त्रियों के पुनर्विवाह के प्रचलन के प्रमाण मिलते हैं किंतु यह बहुप्रचलित प्रथा न थी. वात्स्यायन ने अपने <u>कामसूत्र</u> में कहा है कि विधवा स्त्री चाहे तो अपना पुनर्विवाह भी कर सकती है.[2] <u>नारद स्मृति</u>[3], <u>पाराशर स्मृति</u>,[4] एवँ <u>अग्नि पुराण</u>[5] में उन पाँच विशिष्ट अवस्थाओं का वर्णन है, जिसमें स्त्रियों को पुनर्विवाह करने की अनुमति प्रदान की गई है : "पाँच विपत्तियों में स्त्रियों के लिए द्वितीय पति आज्ञापित है, जब पति नष्ट हो जाय {उसके विषय में कुछ सुनाई न पड़े}, मर जाए, संन्यासी हो जाए, नपुँसक हो या पतित हो". किंतु नारद के

---

1. <u>याज्ञवल्क्य स्मृति</u>, 1.67
2. <u>कामसूत्र</u>, 39
3. <u>नारद स्मृति</u>, <u>स्त्रीपुंस</u>, 12.97
4. <u>पाराशर स्मृति</u>, 4.30
5. <u>अग्नि पुराण</u>, 154, 5-6

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुसार इस प्रकार का विवाह देवर या संबंधी के साथ ही उचित है।[1] अमरकोश में पुनर्विवाह के अर्थ में केवल पुनर्भू शब्द का ही नही वरन् पुनर्भू पत्नी वाले द्विज पति के लिए विशेष शब्द और उसके पर्याय का भी उल्लेख है. कात्यायन ने वयस्क एवं उन संतान रहते हुए दूसरा पति करने वाली स्त्रियों का उल्लेख किया है. साथ ही दायभाग एवं उत्तराधिकार के अन्तर्गत उन्होंने ऐसी स्त्री के पुत्र के दाय पर भी विचार किया है जिसने पति को नपुंसक होने के कारण त्याग दिया हो.[2]

मनुस्मृति[3] में वर्णित द्वादश पुत्रों में "पुनर्भू पुत्र" का उल्लेख है. संभवत: "पुनर्भू पुत्र" विधवा स्त्री के द्वितीय पति से पुनर्विवाह के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ पुत्र होगा. याज्ञवल्क्य ने पुनर्भू और स्वैरिणी स्त्री का अर्थ स्पष्ट करते हुए पुनर्भू को दायाद तथा बान्धव की श्रेणी में रखा है.[4]

विधवा के पुनर्विवाह का प्राचीनतम ऐतिहासिक उदाहरण गुप्तकालीन नरेश रामगुप्त की रानी ध्रुवदेवी का है. राजा राम गुप्त की मृत्यु के पश्चात् उसके छोटे भाई चन्द्रगुप्त द्वितीय ने, उसकी विधवा ध्रुवदेवी से विवाह कर लिया. इस प्रकार यह ध्रुवदेवी का विधवा विवाह अथवा पुनर्विवाह हुआ. यह एक ऐतिहासिक तत्य है जो प्रमाणित है. हर्षचरित में भी इसका उल्लेख है.[5] अत: स्पष्ट है कि गुप्तकाल में विधवा स्त्री अपने

---

1. नारद स्मृति, 12.50
2. गुप्त, परमेश्वरी लाल, गुप्त साम्राज्य, पृष्ठ 436
3. मनुस्मृति, 9.175-76
4. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.67
   उपाध्याय, वासुदेव, गुप्त साम्राज्य का इतिहास, पृष्ठ 246
5. उपाध्याय, वासुदेव, गुप्त साम्राज्य का इतिहास, पृष्ठ 245-46
   हर्षचरित,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देवर से पुनर्विवाह कर सकती थी तथा इस प्रकार के विवाह के फलस्वरूप वह समाज में बहिष्कृत नहीं होती थी. वात्स्यायन के कामसूत्र से प्रतीत होता है कि पुनर्भू पत्नियों को विवाहिता पत्नी के समान सामाजिक स्थिति प्राप्त न थी. उनकी स्थिति को उन्होंने कुमारी और सुरैतिन (रखैल) तथा देवी और गणिका के बीच बतायी है किंतु इस तथ्य में उतनी सत्यता नहीं है गुप्तकाल में द्वितीय पति से उत्पन्न पुत्र को समाज में स्थान प्राप्त था. प्रमाणित है कि ध्रुवदेवी की स्थिति किसी विवाहित पत्नी से कम प्रतीत नहीं होती और उससे उत्पन्न पुत्र (चन्द्रगुप्त द्वितीय तथा ध्रुवदेवी से) राज्य का उत्तराधिकारी भी बना था.

अत: विधवा विवाह गुप्तकाल में निकृष्ट नहीं समझा जाता था किंतु इस प्रकार के विवाह को सामाजिक प्रोत्साहन भी प्राप्त नहीं था.

कामसूत्र[1] से प्रतीत होता है कि विधवाओं का विधिवत् पुनर्विवाह नहीं होता था. वे स्वैच्छित पुरुष के साथ दाम्पत्य जीवन व्यतीत कर सकती थीं और समाज उसे मान्य करता था. मनु ने विधवा के पुनर्विवाह का घोर विरोध करते हुए भी पुनर्विवाह में मंत्रों के प्रयोग का विरोध नहीं किया है[2] तथा उस कन्या के विवाह संस्कार की बात उठायी है जिसका कि अभी समागम न हुआ हो, या जो अपनी युवावस्था का पति छोड़कर अन्य के साथ रहकर पुन: अपने वास्तविक पति के यहाँ आ गई हो.[3] साथ ही गर्भवती कन्या के संस्कार की बात चलाई है.[4] याज्ञवल्क्य ने भी पुनर्विवाह

1. कामसूत्र, 4.2
2. मनुस्मृति, 4.162
3. मनुस्मृति, 9.176
4. मनुस्मृति, 9.172-73

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के सँस्कार का (पौनर्भव सँस्कार) उल्लेख किया है.[1] याज्ञवल्क्य[2] एवँ मनु[3] ने श्राद्ध में न बुलाये जाने वाले ब्राम्हणों में पौनर्भव (पुनर्भू के पुत्र) को भी गिना है.

प्रोषितभर्तृका:

जिस पत्नी का पति बहुत वर्षों के लिए बाहर (विदेश) गया हो, उस पत्नी के लिए स्मृतियों ने कुछ नियम बनाये हैं. नारदस्मृति[4] ने आदेश दिया है कि "यदि पति विदेश गया हो तो ब्राम्हण पत्नी को आठ वर्षों तक जोहना हा चाहिए, किंतु केवल चार वर्षों तक जोहना चाहिए जबकि उसे बच्चा न उत्पन्न हुआ हो, उसके उपराँत (8 या 4 वर्षों के उपराँत) वह दूसरा विवाह कर सकती है, क्षत्रिय पत्नी छः वर्ष तथा संतानहीन होने पर तीन वर्ष, वैश्य पत्नी चार वर्ष तथा संतानहीन होने की अवस्था में दो वर्ष तक इँतजार करे. शूद्रा की पत्नी के लिए प्रतीक्षा की कोई निश्चित अवधि नहीं दी गई है. यदि बीच में पति के जीवित होने का समाचार मिले तो उपर्युक्त अवधि दुगनी कर दे, प्रजापति का मत यह है कि यदि पति का कोई पता न तो दूसरा पति करने में कोई पाप नहीं है. मनु[5] ने पति के परदेश गमन पर स्त्री के कर्तव्यों का उल्लेख करते हुए कहा है : यदि पुरूष धार्मिक कर्तव्य को लेकर विदेश गया हो तो पत्नी को आठ वर्षों तक, यदि ज्ञान या यश की प्राप्ति के लिए गया हो तो छः वर्षों तक, यदि प्रेम के वश होकर (दूसरी स्त्री के फेर में) गया

1. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.167
2. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.222
3. मनु स्मृति, 3.155
4. नारद स्मृति, स्त्रीपुंस, 13.98-101
5. मनु स्मृति, 9.76

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हो तो तीन वर्षों तक जोहना चाहिए. किंतु उपर्युक्त अवधियों के उपरांत पत्नी को क्या करना चाहिए, इस संबंध में मनु मौन हैं. याज्ञवल्क्य[1] एवं बृहस्पति[2] ने प्रोषितभर्तृका के कर्तव्यों में सौंदर्यप्रसाधनों, मनोरंजन के साधनों, सार्वजनिक प्रदर्शनों, उत्सवों, किसी के घर जाना तथा माँस, मदिरापान से दूर रहने का विधान किया है किंतु प्रोषितभर्तृका के विवाह सँबंधी मामले में मौन रखा है.

<u>अनुलोम एवँ प्रतिलोम विवाह:</u>

प्राचीन काल में प्राय: सवर्ण विवाह करने का विधान था. किंतु चारों वर्णों में पारस्परिक विवाह निर्विघ्न रूप से संपादित होते थे. किंतु इस अन्तर्वर्ण विवाह के दो भेद अवश्य हो गए थे :

1. अनुलोम,
2. प्रतिलोम.

वर्णव्यवस्था एवं इन अन्तर्वर्ण विवाहों का विस्तृत वर्णन <u>अध्याय 4 : वर्णव्यवस्था</u> में किया गया है.

उच्च वर्ण के पुरूष द्वारा अपने वर्ण के अतिरिक्त अपने वर्ण से भिन्न वर्ण की किसी स्त्री से विवाह करना "अनुलोम विवाह" कहलाता है.[3] इसके विपरीत उच्च वर्ग की स्त्री द्वारा निम्न वर्ण के पुरूष के साथ विवाह "प्रतिलोम विवाह" कहलाता था. अनुलोम विवाह धर्म सम्मत था, किंतु प्रतिलोम विवाह समाज में हेय दृष्टि से देखा जाता था तथा इस प्रकार के विवाहों को कोई मान्यता प्राप्त नहीं थी.

---

1. <u>याज्ञवल्क्य स्मृति,</u> 1.84
2. <u>बृहस्पति स्मृति,</u> 24.9
3. <u>याज्ञवल्क्य स्मृति,</u>

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुलोम एवँ प्रतिलोम विवाहों के प्रति उपरोक्त धर्म शास्त्रीय दृष्टिकोण होते हुए भी व्यावहारिक रूप से ये विवाह समाज में प्रचलित थे तथा राज परिवारों में निर्विघ्न रूप से सम्पादित होते थे. इसके प्रचलन का उदाहरण गुप्तवँश में ही देखने को मिलता है. अतः अभिलेखीय साक्ष्य का वर्णन पहले करेंगे. प्रभावती गुप्त के अभिलेख से पता चलता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री प्रभावती गुप्त का विवाह वाकाटक नरेश रूद्रसेन द्वितीय से हुआ था.[1] गुप्त वैश्य एवँ वाकाटक ब्राम्हण थे. इस प्रकार यह गुप्त वाकाटक विवाह सँबंध अनुलोम विवाह का उदाहरण है. हस्तिभोज के घटोत्कच अभिलेख से पता चलता है कि वाकाटक राजा देवसेन के मँत्रि हस्तिभोज के वँशज सोम नामक ब्राम्हण ने ब्राम्हण एवँ क्षत्रिय कुल में उत्पन्न कन्याओं से विवाह किया था.[2] यशोधर्मन तथा विष्णुवर्धन के मँदसौर स्तंभ लेख के अनुसार ब्राम्हण रविकीर्ति की भानुगुप्ता नाम की साध्वी क्षत्रिय थी.[3] इसी प्रकार प्रतिहारवंश के संस्थापक ब्राम्हण राजा हरिश्चंद्र

---

1. एपीग्रैफिया इण्डिका, 15, पृष्ठ 41
   आर्केलाजिकल सर्वे ऑफ वेस्टर्न इण्डिया, जिल्द 3, पृष्ठ 140
   जर्नल ऑफ प्रोसीडिंग्स एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, 20 (न. सी), पृष्ठ 58
2. आर्केलाजिकल सर्वे ऑफ वेस्टर्न इण्डिका, जिल्द 4, पृष्ठ 140
   वाकाटक महाराज देवसेन के मंत्री हस्तिभोज का घटोत्कच गुहा अभिलेख. इस का उल्लेख
   फ्लीट ने भारतीय अभिलेख सँग्रह, भाग 3, पृष्ठ 186 पर भी किया है.
3. फ्लीट, भारतीय अभिलेख सँग्रह, भाग 3, संख्या 35.22
   यशोधर्मन तथा विष्णुधर्मन का मँदसौर स्तंभ लेख, मालववर्ष 589 पृष्ठ 190-91.
   सेलेक्ट इंसक्रिप्शन्स, भाग 1, पृष्ठ 412-17

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की एक ब्राम्हण तथा दूसरी क्षत्रिय पत्नियाँ थीं. अतः गुप्तकाल में अनुलोम विवाह प्रचलित थे.

इसी प्रकार प्रतिलोम विवाह के उदाहरण भी गुप्त राज कुल में ही मिलते हैं. चन्द्रगुप्त द्वितीय का विवाह नाग कन्या कुबेरनागा के साथ हुआ था.[1] तथा नाग क्षत्रिय थे. इस प्रकार यह वैश्य-क्षत्रिय प्रतिलोम विवाह था. तालगुण्डा अभिलेख से स्पष्ट है कि ब्राम्हण कदंब वंश के काकुस्थवर्मन ने अपनी कन्याओं का विवाह गुप्त राजकुल एवँ श्रेष्ठी परिवारों में किया था. इसका उल्लेख ब्राम्हण कुटुम्बों ने निःसंकोच तथा सगर्व किया है.[2] इस प्रकार यह वैश्य ब्राम्हण विवाह प्रतिलोम विवाह का उदाहरण है. चन्द्रगुप्त प्रथम का विवाह लिच्छवि कन्या कुमारदेवी से हुआ था. लिच्छवि क्षत्रिय तथा गुप्त वैश्य थे.

गुप्तकालीन साहित्य से प्रमाणित है कि राजकुल के अतिरिक्त सामान्य नागरिकों में भी अनुलोम एवँ प्रतिलोम विवाह प्रचलित थे. इतना ही नहीं लोग गणिका पुत्रियों एवँ गणिका की दासियों से निःसंकोच विवाह किया करते थे. शूद्रक के नाटक <u>मृच्छकटिकम्</u> में ब्राम्हण चारूदत्त द्वारा गणिका वसंतसेना से और ब्राम्हण शार्विलक द्वारा वसंतसेना की दासी से विवाह करने का वर्णन है.

स्मृतियों में प्रतिलोम विवाह की कड़ी निंदा की गई है, फिर भी इस प्रकार के विवाहों का अभाव नहीं था और उससे उत्पन्न पुत्रों के नामों के विषय में प्रायः यह माना जाता है कि

---

1. गुप्त, परमेश्वरी लाल, <u>गुप्त साम्राज्य</u>, 1970, पृष्ठ 42।
2. <u>एपीग्रैफिया इण्डिका</u>, भाग 8, जिल्द 3।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्राम्हणी की संतान सूत (क्षत्रिय पिता), वैदेह या वैदेहक (वैश्य पिता) और चाण्डाल (शूद्र पिता) कहलाती है. क्षत्रिया की संतान मागध (वैश्य पिता) और क्षात्र या क्षत्तार (शूद्र पिता) तथा वैश्या की संतान आयोगव (शूद्र पिता) कहलाती है।[1]

इस प्रकार अभिलेखों से प्रमाणित है कि अन्तर्जातीय विवाह पद्धति की निरंतरता गुप्तकाल में तथा उसके उपरांत भी रही.

---

1. मनुस्मृति, 10. 30
   याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.94
   नारद स्मृति, 12. 109-113

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय : 6

• गुप्तकाल में स्त्रियों के विधिक स्वत्व.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुप्तकाल में नारी की सामाजिक स्थिति अति महत्वपूर्ण थी. इसके निर्धारक तत्वों अर्थात् नारियों को प्राप्त विधिक स्वत्वों का विस्तृत वर्णन करना अत्यावश्यक है. यह स्पष्ट है कि स्त्रियों की पारिवारिक एवं व्यक्तिगत सम्पत्ति में भेद था. व्यक्तिगत सम्पत्ति "स्त्रीधन" कहलाती थी, जिसे उपयोग करने का उन्हें पूरा अधिकार होता था किंतु पारिवारिक सम्पत्ति पर उन्हें कोई अधिकार प्राप्त न था. पत्नी के स्त्रीधन का वर्णन समुद्रगुप्त के एरण प्रस्तर अभिलेख में मिलता है।[1] निश्चित ही समुद्रगुप्त की पत्नी दत्तदेवी स्त्री धन की स्वामिनी होने के साथ ही भारी परिमाण में हाथी, अश्व एवं धनधान्य की स्वामिनी थी जो उसकी व्यक्तिगत सम्पत्ति थी, तथा

---

1. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3, संख्या 2. 2 ७5
समुद्रगुप्त का एरण प्रस्तर अभिलेख, पृष्ठ 25-26

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिस पर उसका एकाधिकार था.

"स्त्रीधन" की स्वामिनी होने के अतिरिक्त भी गृहस्वामिनी को अन्य विधिक स्वत्व प्राप्त थे, जैसे साम्पत्तिक, दान पुण्य विषयक दत्तक, प्रशासनिक एवँ अन्य अधिकार. क्या स्त्रियाँ दायाधिकार की भी अधिकारिणी होती थीं. इन विषयों पर विस्तृत वर्णन इस अध्याय में करेंगे.

स्त्रीधन :

गुप्तकालीन समाज में स्त्रियों को उच्च एवँ सम्माननीय स्थान प्राप्त था. अन्य अधिकारों के साथ ही स्त्रियों को साम्पत्तिक अधिकार भी प्राप्त थे किंतु पारिवारिक एवँ व्यक्तिगत सम्पत्ति में अंतर था. उन्हें पारिवारिक सम्पत्ति पर कोई अधिकार न था न ही पति की अनुमति के बिना वह उसे खर्च कर सकती थी. "स्त्रीधन" उसकी व्यक्तिगत सम्पत्ति होती थी जिस पर उसका एकाधिकार होता था, जिसके उपयोग एवँ उपभोग की उन्हें पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त थी.

स्मृतियों में स्त्रीधन का प्रयोग उसके व्युत्पत्तीय अर्थ में स्त्री की समस्त सम्पत्ति के लिए नहीं किया गया, बल्कि "स्त्री को कुछ खास अवसरों पर जीवन के विभिन्न चरणों में दी गई कुछ खास किस्म की सम्पत्ति" के पारिभाषिक अर्थ में किया गया है. स्त्रीधन के संबंध में स्मृति कानून के पूर्ण विकास का श्रेय कात्यायन को है.[1]

1. मजुमदार, रमेशचन्द्र, श्रेण्य युग, अनुवादक शिवदान सिंह चौहान प्रथम हिंदी संस्करण, 1984, पृष्ठ 414
काणे, पी.वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 2, पृष्ठ 938

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कात्यायन ने स्त्रीधन का विस्तारपूर्वक वर्णन करते हुए स्त्रीधन के छः प्रकारों का वर्णन किया है:

1. अध्यग्नि - विवाह के समय अग्नि के समक्ष जो दिया जाता है उसे बुद्धिमान लोग अध्यग्नि स्त्रीधन कहते हैं.
2. अध्यावहनिक - पति के घर जाते समय जो कुछ स्त्री पिता के घर से पाती है उसे "अध्यावहनिक स्त्रीधन" कहा जाता है.
3. प्रीतिदत्त- श्वसुर या सास द्वारा स्नेह से जो कुछ दिया जाता है और श्रेष्ठ जनों को वंदन करते समय उनके द्वारा जो कुछ प्राप्त होता है उसे "प्रीतिदत्त स्त्रीधन" कहा जाता है.
4. शुल्क- वह "शुल्क" स्त्रीधन कहलाता है जो बरतनों, भारवाही पशुओं, दुधारू पशुओं, आभूषणों एवँ दासों के मूल्य के रूप में प्राप्त होता है.
5. अन्वाधेय- विवाहोपरांत पतिकुल एवँ पितृकुल के बन्धुजनों से जो कुछ प्राप्त होता है वह "अन्वाधेय स्त्रीधन" कहलाता है. कात्यायन द्वारा प्रस्तुत "अध्यग्नि" एवँ "अध्यावहनिक" की परिभाषाओं में वे भेंटें भी सम्मिलित हैं जो विवाह के समय आगन्तुकों द्वारा प्रदत्त की जाती हैं.
6. सौदायिक- वह सौदायिक स्त्रीधन कहा जाता है जो विवाहित स्त्री या कुमारी को अपने पिता या पति के घर में मिल जाता है या भाई से या माता पिता से प्राप्त होता है.[1]

नारद, मनु एवँ याज्ञवल्क्य ने स्त्रीधन को निम्नलिखित छः प्रकार का बताया है :

1. विवाह के उपलक्ष्य में, 2. पतिगृह जाते समय,
3. प्रेम में मिला धन, 4.5.6. माता पिता एवँ भाई से प्राप्त धन.[2]

---

1. काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 2, पृ० 939
2. मनुस्मृति, 9.194
   याज्ञवल्क्य स्मृति, 2.143-44
   नारद स्मृति, दायभाग 8

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्मृतियों के अध्ययन से स्पष्ट है कि स्त्रीधन एक प्रकार का ऐसा धन है जिसमें पहले छः प्रकार की सम्पत्ति की गणना होती थी और आगे चलकर वह नौ प्रकार का हो गया तथा कात्यायन के समय में उसमें सभी प्रकार की (चल या अचल) सम्पत्ति सम्मिलित हो गई, जिसे कोई स्त्री कुमारी अवस्था में या विवाहित होते समय या विवाह के उपरांत अपने माता पिता या कुल या माता पिता के संबंधीयों या पति एवं उसके कुल से (पति द्वारा प्रदत्त अचल सम्पत्ति को छोड़कर) प्राप्त करती है. किंतु वह धन जिसे स्त्री विवाहोपरांत स्वयं (अपने परिश्रम से) अर्जित करती है या बाहरी लोगों से प्राप्त करती है स्त्रीधन नहीं कहलाता. उपर्युक्त विवेचन स्त्रीधन के पारिभाषिक अर्थ से संबंध रखती है.[1]

स्त्रीधन क्या है इसके अतिरिक्त स्त्रीधन पर स्त्री का आधिपत्य एवं स्त्रीधन का उत्तराधिकार ये भी महत्वपूर्ण विषय हैं. अब इन विषयों का विस्तृत वर्णन करेंगे.

प्राचीन काल में स्त्रीधन का मात्र महत्व ही नहीं था अपितु प्रत्येक स्त्री का स्त्रीधन होना अनिवार्य भी था. यदि उसे पति से या श्वसुर से स्त्रीधन नहीं मिला है तो इस स्थिति में वह दायाधिकार में, पति से पुत्रों के समान ही अंश पाने की अधिकारिणी होती थी.[2] याज्ञवल्क्य के अनुसार स्त्री के रहते हुए यदि पति दूसरा विवाह करे तो उस स्थिति में पत्नी को स्त्रीधन देवे.[3]

स्त्रीधन के शाब्दिक अर्थ से तो यही प्रकट होता है कि स्त्रीधन पर स्त्री का पूर्ण अधिकार होता है. वे इसे अपनी इच्छानुसार उपयोग

---

1. काणे, पी.बी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 2, पृष्ठ 940
2. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2.215
3. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2.148

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपयोग भी कर सकती हैं, कोई दूसरा नहीं. मनु ने स्त्रीधन का उपयोग करने वाले बान्धवों (पति या पति के पिता आदि) को नरक प्राप्ति का पाप बताया है.[1] स्त्रीधन पर स्त्री के अधिकार के निर्धारक 3 तत्व हैं:

1. सम्पत्ति प्राप्त करने का उद्गम,
2. प्राप्ति के समय उसकी स्थिति (कुमारी, अविवाहित, सधवा अथवा विधवा), तथा
3. वह सम्प्रदाय जिसके अनुसार उस पर स्मृति शासन होता है.

कात्यायन एवं नारद के इस विषय पर प्रामाणिक तथ्य प्रस्तुत हैं.[2] कात्यायन के अनुसार:

> "सौदायिक धन की प्राप्ति पर घोषित किया गया है कि स्त्रियाँ उस पर स्वतंत्र अधिकार रखती हैं, क्योंकि वह उनके संबंधियों द्वारा इसलिए दिया गया है कि वे दुर्दशा को न प्राप्त हो सकें. ऐसा घोषित है कि विक्रय या दान में सौदायिक संपत्ति पर स्त्रियों का पूर्ण अधिकार है, इतना ही नहीं, सौदायिक अचल सम्पत्ति पर भी उनका अधिकार है. विधवा हो जाने पर वे पति द्वारा दी गई चल भेंटों को मनोनुकूल खर्च कर सकती हैं, किंतु उन्हें जीवित रहते हुए उसकी रक्षा करनी चाहिए या वे कुल के लिए व्यय कर सकती हैं किंतु किसी पति या पुत्र और पिता या भाइयों को किसी स्त्री के स्त्रीधन को व्यय करने या विघटित करने का अधिकार नहीं है".[2]

---

1. <u>मनुस्मृति</u>, 3.52
2. काणे, पी.वी., <u>धर्मशास्त्र का इतिहास</u>, भाग 2, पृष्ठ 942
   <u>कात्यायन स्मृति</u>, 905-7,911

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इससे स्पष्ट है कि कुमारी हिन्दू स्त्री सभी प्रकार के स्त्रीधन का उपयोग मनोनुकूल कर सकती है. विधवा स्त्री पति द्वारा प्रदत्त अचल सम्पत्ति को छोड़कर सभी प्रकार के स्त्रीधन का लेनदेन कर सकती है, किंतु सधवा स्त्री केवल सौदायिक (पति को छोड़कर अन्य लोगों से प्राप्त दान) को ही मनोनुकूल स्वेच्छा से व्यय कर सकती है.

कुछ परिस्थितियों में पति को सौदायिक स्त्रीधन पर भी अधिकार प्राप्त हैं. याज्ञवल्क्य के अनुसार वे परिस्थितियाँ निम्न प्रकार हैं : "दुर्भिक्ष, धर्म कार्य, व्याधि में या बन्दी (ऋणदाता, राजा या शत्रु द्वारा) बनाये जाने पर पति यदि स्त्रीधन का व्यय करे तो उसे लौटाने के लिए उसे बाध्य नहीं किया जा सकता."[1] कात्यायन का भी यही मत है.[2] याज्ञवल्क्य[3] एवँ विष्णु[4] ने पति एवँ पत्नी की सम्पत्तियों को पृथक पृथक मानते हुए कहा है : पति के ऋण पत्नि को नहीं बाँध सकते और न पत्नी के ऋण पति को बाँध सकते हैं, ऐसा एक सामान्य नियम है. किंतु याज्ञवल्क्य[5] एवँ मनु[6] ने इस अवस्था में कुछ छूट भी दी है.

स्त्रीधन को यदि पति, पुत्र, माता एवँ भाई बलवश ले लें या उनका किसी प्रकार उपयोग कर लें तो उन्हें ब्याज के साथ, उसे लौटाना पड़ता है. केवल दुःखप्रद परिस्थितियों आदि में ही उसका

---

1. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2. 147
2. कात्यायन स्मृति, 914
3. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2. 46
4. विष्णु स्मृति, 6. 31-32
5. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2. 147
6. मनु स्मृति, 8. 29

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपयोग हो सकता है. कात्यायन ने एक विशेष नियम दिया है कि "यदि किसी की दो पत्नियाँ हों और उनमें एक उपेक्षित हो तो उसको उसका स्त्रीधन लौटा देना पड़ता है, राजा को चाहिए कि वह ऐसा करने में उसकी सहायता करे, भले ही उसने ﴾उपेक्षित पत्नी﴿ अपने पति को प्रेमवश वह धन दे दिया हो".[1]

कात्यायन ने एक और विशेष नियम दिया है : "यदि पति स्त्रीधन देने की प्रतिज्ञा कर ले तो उसकी मृत्यु के उपरांत उसके पुत्र ﴾अपने पुत्र या विमाता पुत्र﴿ को उसे ऋण के रूप में चुकाना चाहिए, किंतु ऐसा तभी होता है जब कि विधवा पति के कुल में ही रहे और अपने मैके में न जाए".[2]

स्त्रीधन के उत्तराधिकारी:

स्त्रीधन के उत्तराधिकारियों के प्रश्न पर धर्मशास्त्री एक मत नहीं हैं, किंतु सभी यह स्वीकारते हैं कि स्त्रीधन का उत्तराधिकारी सर्वप्रथम कन्यायें ही होना चाहिए तथा उन्हें पुत्रों की अपेक्षा वरीयता मिलनी चाहिए. स्त्रीधन के उत्तराधिकार की भिन्नता स्त्री के विवाहित या अविवाहित होने, अननुमोदित या अनुमोदित विवाह प्रथा से विवाहित होने तथा स्त्रीधन के प्रकार या व्यवहार शाखा पर अवलंबित है.[3]

मनु ने माता के निजीधन की अधिकारिणी कन्या को ही माना है. उनके अनुसार : "माता का धन उसकी अविवाहित पुत्री का होता है".[4] किंतु साथ ही पुत्री के अतिरिक्त उसमें पुत्रों तथा

1. कात्यायन स्मृति, 908
2. कात्यायन स्मृति, पृ० 916
3. काणे, पी.वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 2, पृ० 943
4. मनु स्मृति, 9.131

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्नेहाकुल उन पुत्रियों की पुत्रियों का भी अँश स्वीकारा है.[1] मनु के अनुसार स्त्री के छः प्रकार के स्त्रीधन, अन्वाधेय स्त्रीधन, पति प्रदत्त स्नेह दान, पति के रहते पत्नी के मर जाने पर सँतानों (पुत्र अथवा पुत्रियों) को मिलने चाहिए.[2]

मनु ने विवाह के प्रकार पर आधारित उत्तराधिकारियों का विधान प्रस्तुत किया है. उनके अनुसार "जब स्त्री ब्राम्ह, दैव, आर्ष, प्राजापत्य एवँ गँधर्व नामक विवाह प्रकारों से विवाहित होती है और सँतानहीन मर जाती है तो स्त्रीधन पति को मिल जाता है, किंतु यदि उसका विवाह आसुर या अन्य दो विवाह प्रथाओं के अनुसार होता है तो सँतानहीन होने पर उसका धन उसके माता पिता को मिल जाता है.[3] किंतु याज्ञवल्क्य के अनुसार कन्यायें ही माता का धन पाती हैं और उनके अभाव में पुत्रों का अधिकार होता है.[4] याज्ञवल्क्य ने आगे कहा है कि स्त्रीधन कन्याओं को मिलता है किंतु यदि स्त्री सँतानहीन मर जाती है तो स्त्रीधन पति को मिल जाता है (यदि विवाह ब्राम्ह, दैव, आर्ष, प्राजापत्य नामक विवाह प्रथा से हुआ हो), किंतु अन्य चार प्रकार के विवाहों वाली स्त्री के मर जाने पर उसका धन माता पिता को प्राप्त हो जाता है.[5] <u>नारद स्मृति</u> में भी यही वर्णन मिलता है.[6]

किन्तु नारद ने यह भी कहा है कि माता का धन कन्याओं में बाँटना चाहिए और उनके अभाव में उनकी सँतानों को मिलना

---

1. मनुस्मृति, 9.192-93
2. मनुस्मृति, 9.195
3. मनुस्मृति, 9.196-97
4. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2.117
5. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2.144-45
6. नारद स्मृति, 13.9 (दायभाग)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चाहिए।[1] बृहस्पति स्मृति के अनुसार "स्त्रीधन संतानों को मिलता है, किंतु कुमारी कन्याओं को वरीयता मिलती है, विवाहित कन्याओं को स्नेह के रूप में थोड़ा सा मिलता है:[2]

कात्यायन ने स्त्रीधन के उत्तराधिकार के विषय में विस्तृत वर्णन करते हुए लिखा है : "सधवा बहिनों को भाइयों के साथ स्त्रीधन का भाग लेना चाहिए, यही स्त्रीधन एवं विभाजन के विषय में कानून है. पुत्रियों के अभाव में पुत्रों को स्त्रीधन मिलता है: सम्बन्धीयों द्वारा प्रदत्त उनके {संबंधियों के} अभाव में पति को मिलता है. जो कुछ अचल सम्पत्ति माता पिता द्वारा पुत्री को दी जाती है वह उसकी मृत्यु के उपरांत संतान के अभाव में भाई को ही जाती है. आसुर से लेकर आगे के विवाहों वाली स्त्री को माता पिता द्वारा जो कुछ प्राप्त होता है वह उसके संतानहीन होने पर माता पिता को मिल जाता है.[3]

स्त्रीधन के उत्तराधिकार के विषय में संभवतः कात्यायन ने निम्नलिखित बातें कही हैं :

1. कुमारी कन्या को वरीयता मिलती है,
2. यदि कोई कुमारी कन्या न हो तो विवाहित सधवा कन्यायें अपने भाइयों के साथ साथ भाग पाती हैं,
3. यदि पुत्र न हों या विवाहित सधवा पुत्रियाँ न हों तो विधवा पुत्रियों को स्त्रीधन मिलता है,
4. पितृपक्ष एवं मातृपक्ष के संबंधियों द्वारा प्रदत्त स्त्रीधन उन्हीं को प्राप्त होता है और उनके अभाव में पति पाता है,
5. संतानहीन होने पर माता पिता द्वारा प्रदत्त अचल सम्पत्ति भाई

---

1. नारद स्मृति, 13.2 {दायभाग}
2. बृहस्पति स्मृति,
   काणे, पी. वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 2, पृष्ठ 944
3. कात्यायन स्मृति, 912-920

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को प्राप्त होती है,

6. आसुर, राक्षस एवं पैशाच विवाहों वाली स्त्री को संतानहीन होने पर स्त्रीधन माता पिता को प्राप्त हो जाता है।[1]

विवाहिता पत्नी के साम्पत्तिक अधिकार:

विवाहिता पत्नी को स्त्रीधन के अतिरिक्त गृह सम्पत्ति में कौन सा अधिकार प्राप्त था. अब हम इसके विषय में वर्णन करेंगे. वैदिक काल में पत्नी को गृह स्वामिनी के रूप में गृह सम्पत्ति में कोई भी अधिकार प्राप्त नहीं था.[2] धर्मशास्त्रीय साहित्य में इस विषय में मतभेद है. बौधायन[3] ने पत्नी को गृह सम्पत्ति में कोई अधिकार नहीं दिया, इसके विपरीत आपस्तम्ब[4] ने पत्नी को पति के बराबर ही माना है. कौटिल्य[5] पत्नी को तो क्या, विधवा तक को गृह सम्पत्ति में कोई अधिकार नहीं देते.

स्मृतिकार मनु ने स्त्री को पति की आज्ञा के बिना उसकी सम्पत्ति व्यय करने का अधिकार नहीं दिया है, क्योंकि पत्नी की अपनी सम्पत्ति नहीं होती है.[6] मनु के विपरीत याज्ञवल्क्य ने पैतृक सम्पत्ति में पत्नी को हिस्सेदार बनाते हुए अपनी उदारता का परिचय दिया है. उनके अनुसार-----"यदि पिता अपनी इच्छा से सभी पुत्रों को समान अंश देता है तो उसे पत्नियों को भी समान भाग देना चाहिए, जिन्हें पति से या श्वसुर से स्त्रीधन नहीं मिला है".[7]

1. काणे, पी. वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 2, पृष्ठ 944
2. शतपथ ब्राम्हण, 4. 4. 2. 13, ऋग्वेद, 1. 70. 5
3. बौधायन, 2. 2. 47
4. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 2. 6. 16-20
5. अर्थशास्त्र, 13. 1
6. मनुस्मृति, 8. 416, 9. 199
7. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2. 115

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधिविन्ना पत्नी के साम्पत्तिक अधिकारों का वर्णन करते हुए याज्ञवल्क्य कहते हैं-----"यदि एक स्त्री के रहते दूसरा विवाह करे तो उस पहली स्त्री {अधिविन्ना} को यदि उसे स्त्रीधन न मिला हो तो दूसरे विवाह में व्यय किए गए धन के बराबर अधिवेदनिक धन देवे, किंतु यदि उसे स्त्रीधन मिला हो तो दूसरे विवाह के व्यय का आधा धन देना ही विहित है.[1] साथ ही यह भी कहा है कि यदि आज्ञाकारिणी, कुशल, वीरपुत्रों की जननी और मधुरभाषिणी पत्नी का परित्याग करें अर्थात् अधिवेदन का कोई उचित कारण न हो तो अधिवेत्ता को, अधिविन्ना पत्नी को अपनी सम्पत्ति का तृतीयांश देना चाहिए.[2] इस प्रकार पारिवारिक सम्पत्ति में तो स्त्रियों का कोई अधिकार न था किंतु इसके अतिरिक्त उनकी अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति "स्त्रीधन" होती थी, जिस पर उनका एकाधिकार होता था तथा जिसे वे अपनी इच्छानुसार उपयोग करने के लिए स्वतंत्र होती थीं, किंतु स्वतंत्ररूप से पारिवारिक सम्पत्ति का व्यय नहीं कर सकती थीं.[3]

<u>माता के साम्पत्तिक अधिकार :</u>

माता के रूप में स्त्री पैतृक सम्पत्ति में कब अधिकारिणी होती है. सामान्यत: पुत्रवती विधवा या तो पति के दाय में से कुछ भी पाने की अधिकारिणी नहीं होती थी अथवा वह पुत्र के साथ ही समान अंश की अधिकारिणी होती थी. इसके अतिरिक्त किन्हीं परिस्थितियों में माता ही पुत्र की सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी होती थी.

---

1. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2. 148
2. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1. 76
3. मनु स्मृति, 9. 194

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्मृतियों में इसके क्रम में भिन्नता दिखलाई देती है.

सँतानहीन पुत्र की मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी के लिए माता अथवा पिता की वरीयता के विषय में याज्ञवल्क्य मौन हैं, किंतु विष्णु धर्मसूत्र[1] में इस वरीयता में पिता को माता के पूर्व रखा है. मनु[2] ने माता पिता की वरीयता का वर्णन निश्चयात्मक रूप से नहीं किया है. वे सँतानहीन पुत्र का प्रथम उत्तराधिकारी माता को बताते हुए पिता और भाई को भी उत्तराधिकारी मानते हैं. कात्यायन[3] ने पहले पत्नी, पुत्री, पिता और उनके अभाव में माता को उत्तराधिकारी बताया है. बृहस्पति के मतानुसार-----"जब पुत्र बिना पत्नी एवँ पुत्र के मर जाता है तो उसकी माता उसका उत्तराधिकार पाती है."[4]

विधवा के साम्पत्तिक (पैतृक सम्पत्ति में) अधिकार:

गुप्तकाल का सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन कात्यायन द्वारा स्त्रियों के साम्पत्तिक अधिकार को मान्यता प्रदान करना था. उत्तराधिकार में विधवा को अपने पुत्रहीन पति की सम्पत्ति का अधिकार देने की दिशा में यह उल्लेखनीय विकास हुआ. किसी भी पृथक सम्पत्ति के विषय में पुरूष सँतान के अतिरिक्त अन्य उत्तराधिकारियों में प्रथम स्थान विधवा पत्नी को प्राप्त होता है. यह उत्तराधिकार का अधिकार उसे कई शताब्दियों के सँघर्ष के उपराँत ही प्राप्त हो सका है.[5] विधवा का यह उत्तराधिकार उसके पुत्रहीन अथवा पुत्रवती होने

---

1. विष्णुधर्मसूत्र, 17.4-16
2. मनुस्मृति, 9.217, 9.185
3. कात्यायन स्मृति, 927
4. बृहस्पति स्मृति, 25.63
5. काणे, पी.वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 2, पृष्ठ 906

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर निर्भर करता है.

मनु[1] एवं नारद[2] ने पुत्रहीन विधवा को किसी भी स्थिति में रिक्थाधिकारी नहीं माना है. उसे केवल भोजन, वस्त्र की व्यवस्था थी तथा उसकी सम्पत्ति का अधिकारी राजा होता था. कालिदास का भी यही मत है.[3] किंतु याज्ञवल्क्य[4] एवं विष्णु[5] ने ही सर्वप्रथम इस बात की स्वीकृति दी कि पुत्रहीन व्यक्ति की विधवा उसकी सबसे प्रमुख उत्तराधिकारी होगी. इनको प्रमाण मानकर बृहस्पति एवं कात्यायन ने पुत्रहीन व्यक्ति की मृत्यु के तुरंत बाद उसकी विधवा को सारी सम्पत्ति की अधिकारिणी स्वीकार किया है. उसके पश्चात् यह उत्तराधिकार क्रमशः बेटियों, पिता, माता, भाई और भाई के बेटों को मिलता है.[6]

किंतु मनु एवं नारद के अनुसार-----"पति की मृत्यु के पश्चात् यदि उसके पुत्र पैतृक सम्पत्ति का विभाजन करें, तो उसे (विधवा माता को) एक पुत्र के बराबर सम्पत्ति देवें".[7]

बृहस्पति के अनुसार-----"जब पति अलग हो तो उसकी विधवा को चल एवं अचल सम्पत्ति के अतिरिक्त सभी प्रकार की सम्पत्ति अर्थात्

---

1. काणे, पी.वी., _धर्मशास्त्र का इतिहास,_ भाग 2, पृष्ठ 906
2. _नारद स्मृति,_ 13.26
3. _अभिज्ञानशाकुन्तलम्,_ अंक 6, पृष्ठ 121
4. _याज्ञवल्क्य स्मृति,_ 2.135
5. _विष्णुधर्मसूत्र,_ 17.3
6. _बृहस्पति स्मृति,_ 25.47-49
   _कात्यायन स्मृति,_ 921,926
   काणे, पी.वी., _धर्मशास्त्र का इतिहास,_ भाग 2, पृष्ठ 907
7. _मनुस्मृति,_ 2.122
   _नारद स्मृति,_ 13.12

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आधि {धरोहर} आदि प्राप्त हो जाती है।[1] कात्यायन ने विधवा के अधिकारों की सीमाओं को व्यक्त करते हुए कहा है---- "विधवा मृत्युपर्यन्त पति की सम्पत्ति {के अधिकार} का उपभोग कर सकती है, किंतु उसकी {विधवा की} मृत्यु के उपरांत पति के वंशज ही उत्तराधिकारी होंगे, किंतु उस विधवा को सम्पत्ति को दान, विक्रय एवं बंधक रखने का अधिकार प्राप्त नहीं होता।[2]

उपरोक्त बातों से स्पष्ट है कि विधवा को पति की संपत्ति के उपभोग का अधिकार मृत्युपर्यंत प्राप्त था, किंतु वह अचल संपत्ति का दान, विक्रय एवं बंधक कार्य तब तक नहीं कर सकती जब तक कि उसके बाद के उस सम्पत्ति के उत्तराधिकारी ऐसा करने को न कहें, किन्तु धार्मिक एवं दान के कार्यों में या उसमें जिसमें उसके पति का पारलौकिक कल्याण निहित है, वह सम्पत्ति के व्यय में बड़े बड़े अधिकार रखती थी।[3]

अत: कानूनी अधिकारों के विस्तृत वर्णन से स्पष्ट है कि गुप्त कालीन समाज ने स्त्रियों को उच्च स्थिति एवं सम्मान देते हुए दायाधिकार भी प्रदान किये थे।

<u>कन्याओं के दायाधिकार:</u>

जब तक मृत स्वामी की विधवा जीवित रहती है, कन्यायें रिक्थाधिकार नहीं पातीं. गौतम, बौधायन एवं वशिष्ट ने कन्याओं को उत्तराधिकारियों में नहीं गिना है।[4] आपस्तम्ब उसे वैकल्पिक

1. काणे, पी.बी., <u>धर्मशास्त्र का इतिहास</u>, भाग 2, पृष्ठ 909-10
2. काणे, पी.बी., <u>धर्मशास्त्र का इतिहास</u>, भाग 2, पृष्ठ 924-25
3. काणे, पी.बी., <u>धर्मशास्त्र का इतिहास</u>, भाग 2, पृष्ठ 910
4. काणे, पी.बी., <u>धर्मशास्त्र का इतिहास</u>, भाग 2, पृष्ठ 912

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रूप में ही उत्तराधिकारी स्वीकृत करते हैं।[1] मनु के अनुसार "व्यक्ति का पुत्र उसकी आत्मा के समान है, उसकी पुत्री उसके पुत्र के बराबर है, ऐसी स्थिति में जब तक वह मृत व्यक्ति की आत्मा के रूप में जीवित है तब तक मृतक की सम्पत्ति अन्य को कैसे प्राप्त हो सकती है।[2] किंतु दूसरे संदर्भ से स्पष्ट है कि यह "पुत्रिका" (पुत्र के रूप में नियुक्त कन्या) के लिए लिखा गया है।[3] धीरे धीरे पुत्री को पुत्र के रूप में नियुक्त करना बँद सा हो गया, अत: विधवा के उपराँत पुत्रहीन व्यक्ति की कन्या को उत्तराधिकारी समझा जाने लगा।[4]

याज्ञवल्क्य तथा विष्णु ने विधवा के उपराँत पुत्री को उत्तराधिकारी माना है।[5] नारद का विचार है कि पिता के मरने पर उसकी पैतृक सम्पत्ति पुत्र तथा माता के मरने पर उसकी सम्पत्ति उसकी पुत्रियाँ (माता की) बाँट लें।[6] यही मत याज्ञवल्क्य का भी है।[7] बृहस्पति के अनुसार-----"पत्नी को पति की "धनहरी" (धन पाने वाली) कहा गया है, उसके अभाव में पुत्री का अधिकार होता, कन्या पुत्र के समान पिता के शरीर से ही उत्पन्न होती है, अत: उसके रहते उसके पिता की सम्पत्ति अन्य व्यक्ति कैसे पा सकता है।"[7] किंतु इन्होंने कन्याओं में उत्तराधिकार के मामले में कोई अँतर के विषय में नहीं बताया।

---

1. आपस्तम्ब, 2.6.143
2. मनुस्मृति, 9.130
3. मनुस्मृति, 9.128-29
4. काणे, पी.बी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 2, पृष्ठ 912
5. काणे, पी.बी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 2, पृष्ठ 912
6. नारद स्मृति, 13.2
7. याज्ञवल्क्य स्मृति, व्यवहाराध्याय, 117
8. बृहस्पति स्मृति, 25.55-56
   याज्ञवल्क्य स्मृति, 2.135-36
   मनुस्मृति, 9.217

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यद्यपि कन्याओं का पैतृक सम्पत्ति पर कोई अधिकार न था, फिर भी अविवाहित कन्याओं के भविष्य में विवाह के लिए दाय विभाजन में उनका ध्यान रखा गया. कात्यायन ने अविवाहित कन्या को विवाहित कन्या की अपेक्षा वरीयता दी है.[1] मनु[2] एवं याज्ञवल्क्य[3] ने भाइयों को आदेश दिया है कि "सभी भाई अपने भाग से चतुर्थांश देकर अविवाहित कन्याओं का विवाह करें".

नारद का विचार है कि यदि पिता अपने जीवनकाल में ही अपनी सम्पत्ति का विभाजन करें, तो अविवाहित कन्याओं को एक भाग मिलना चाहिए.[4] और यदि पिता के मरण के बाद सम्पत्ति का विभाजन हो तो मृत पिता के धन से अविवाहित कन्या का विवाह तक भरण पोषण किया जाय, विवाह के पश्चात् पति करेगा ही.[5] <u>विष्णुस्मृति</u>[6] तथा <u>बृहस्पति स्मृति</u>[7] के अनुसार किसी व्यक्ति के देहान्त के बाद पत्नियाँ और अविवाहित कन्यायें पुत्रों के साथ दाय भाग की अधिकारिणी हैं.

अतः स्मृतियों ने कन्याओं में कुमारियों को वरीयता दी है, अर्थात् वे कन्यायें जो अभी अक्षत योनि हैं.

<u>अभ्रातृका कन्या के अधिकार:</u>

अभ्रातृका कन्या को पैतृक सम्पत्ति की अधिकारिणी मानने में

---

1. <u>कात्यायन स्मृति,</u> 926
2. <u>मनुस्मृति,</u> 9. 118
3. <u>याज्ञवल्क्य स्मृति,</u> 2. 124 (व्यवहाराध्याय)
4. <u>नारद स्मृति,</u> 13. 13
5. <u>नारद स्मृति,</u> 13. 27
6. <u>विष्णु स्मृति,</u> 18. 34-35
7. <u>बृहस्पतिस्मृति,</u> 25. 64

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धर्मशास्त्रियों में कुछ मतभेद रहा है. आपस्तम्ब धर्मसूत्र[1] ने सपिंडों के अभाव में पुत्री को ऐच्छिक रूप से उत्तराधिकारिणी बताया है. कौटिल्य[2] ने दायभाग पर अभ्रातृका कन्या का अधिकार मात्र स्वर्ण आभूषणों एवं नकद धन पर ही बताया है किंतु विष्णुधर्मसूत्र[3], नारद स्मृति[4] तथा बृहस्पति स्मृति[5] ने अभ्रातृका कन्या के उत्तराधिकार का वर्णन करते हुए कहा है-----"यदि अभ्रातृका कन्या के माता पिता दोनों की मृत्यु हो जाए तो वह पैतृक सम्पत्ति की अधिकारिणी होती है".

स्त्रियों के दत्तक से संबंधित विधिक स्वत्व:

स्त्रियों के साम्पत्तिक एवं दायाधिकार से संबंधित विधिक स्वत्व के समान ही दत्तक से संबंधिक विधिक स्वत्व भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं. धर्मशास्त्रों द्वारा स्वीकृत पुत्रों में दत्तक पुत्र का भी महत्वपूर्ण स्थान है.[6] हम यहाँ दत्तक पुत्र लेने या देने से संबंधित स्त्रियों के विधिक स्वत्वों का विवेचन करेंगे.

दत्तक के विषय में वशिष्ट धर्मसूत्र ने अपने विचार व्यक्त किए हैं, उनके अनुसार "शुक्र (बीज) एवं शोणित से उत्पन्न व्यक्ति अपने जन्म के लिए माता एवं पिता का ऋणी होता है, अत: उसके माता एवं पिता को उसे दे देने, बेचने या त्यागने का अधिकार है, किंतु

---

1. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 2.6.15.4
2. अर्थशास्त्र, तृतीय अधिकरण, अध्याय 5
3. विष्णुधर्मसूत्र, 17.5
4. नारद स्मृति, 13.50
5. बृहस्पति स्मृति, 25.55-57
6. मनुस्मृति, 9.168
   याज्ञवल्क्य स्मृति, 2.130
   विष्णु स्मृति, 15.18-19

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बिना पति की आज्ञा के किसी स्त्री को किसी अन्य का पुत्र न तो स्वीकारा करना चाहिए और न अपने पुत्र को देना चाहिए।[1]

गुप्तकाल में पुत्र दत्तक में लेने की प्रथा विद्यमान थी, वास्तव में पिता ही पुत्रीकरण की इस प्रक्रिया में अपना पुत्र देने का मुख्य अधिकारी है. वह पुत्र की माता की सहमति के बिना भी ऐसा कर सकता है. किंतु पति की आज्ञा के बिना कोई माता अपने पुत्र को दत्तक नहीं दे सकती. जब तक पिता जीवित एवँ मति देने के योग्य है तब तक माता पुत्रदान नहीं कर सकती.

मनु एवँ याज्ञवल्क्य के अनुसार "यदि पिता मर गया हो या संन्यासी हो गया हो या अपनी मति देने के लिए अयोग्य हो तो, केवल माता ही पुत्र को दत्तक रूप में दे सकती है, किंतु यदि पिता स्पष्ट या अस्पष्ट रूप से ऐसा करने को मना कर दे तो वह दत्तक देने में असमर्थ मानी जाती है.[2] इसी प्रकार व्यक्ति की मृत्यु के उपरांत केवल उसकी पत्नी ही पुत्र दत्तक ले सकती है किंतु विधवा के अधिकारों के विषय में मतैक्य नहीं है.[3]

<u>स्त्रियों के दानपुण्य विषयक अधिकार:</u>

गुप्तकालीन समाज में गृहस्वामिनी को दानपुण्य विषयक कौन कौन से अधिकार प्राप्त थे, इसका वर्णन अनिवार्य है क्योंकि दानपुण्य विषय अधिकार प्राप्ति से स्पष्ट होता है कि गृहस्वामिनी के रूप में

---

1. <u>वशिष्ट धर्मसूत्र</u>, 17. 28-29
2. काणे, <u>धर्मशास्त्र का इतिहास</u>, भाग 2, पृष्ठ 893
   <u>मनुस्मृति</u>, 1. 168
   <u>याज्ञवल्क्य स्मृति</u>, 2. 130
3. काणे, पी. वी., <u>धर्मशास्त्र का इतिहास</u>, भाग 2, पृष्ठ 893

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नारी की स्थिति उच्च थी. आदर्श पत्नी को गृहस्वामिनी के रूप में पति की अनुज्ञा के बिना किसी को दान नहीं देना चाहिए. वात्स्यायन[1] ने ऐसा आदेश दिया है. स्मृतिकार मनु[2] का भी यही विचार है. इससे स्पष्ट होता है कि पत्नी दान कर सकती थी किंतु पति की आज्ञा से ही. गुप्तकालीन अभिलेखों से स्पष्ट है कि गृहस्वामिनी अपने पुण्य की वृद्धि हेतु, अपने माता पिता के पुण्य की वृद्धि हेतु अथवा सभी प्राणिमात्र के द्वारा परमज्ञान के लाभ हेतु धार्मिक दान अथवा पुण्य करने के लिए स्वतंत्र थी.

चन्द्रगुप्त द्वितीय के गढ़वा प्रस्तर अभिलेख[3] में पाटलिपुत्र की गृहस्थ पत्नी द्वारा स्वयं अपने पुण्य में वृद्धि के उद्देश्य से सदा चलने वाले भिक्षागृह को 10 दीनारें दान करने का उल्लेख है. इसी प्रकार साँची प्रस्तर लेख[4] में उपासक सनसिद्ध की पत्नी उपासिका हरिस्वामिनी द्वारा अपने माता पिता के लिए विश्व के चारों कोनों से काकनादबोट ‖साँची‖ के पवित्र बिहार में समूहित श्रद्धालुओं के संघ के प्रति बारह दीनारों का अक्षय-नीवी दान देने का वर्णन है जिससे इन दीनारों से प्राप्त ब्याज द्वारा संघ में प्रविष्ट एक भिक्षु को प्रतिदिन भोजन दिया जाय. मथुरा स्थित कंकाली टीला में प्राप्त जैन मूर्ति पर अंकित लेख से पता चलता है कि भट्टिभव की पुत्री और <u>गृहमित्रपति</u> की पत्नी सामाध्या ने उस मूर्ति को, जिस पर यह लेख अंकित है, प्रतिष्ठित किया[5] धनेश्वर

---

1. <u>कामसूत्र</u>, 4. 1. 1-55
2. <u>मनुस्मृति</u>, 8. 416, 9. 199
3. फ्लीट, <u>भारतीय अभिलेख संग्रह</u>, भाग 3 , संख्या 7.4 ख
   चन्द्रगुप्त द्वितीय का गढ़वा प्रस्तर अभिलेख, पृष्ठ 49
4. फ्लीट, <u>भारतीय अभिलेख संग्रह</u>, भाग 3 , संख्या 62.38 ख
   साँची प्रस्तर लेख, पृष्ठ 329-30
5. <u>एपीग्रैफिया इण्डिका</u>, जिल्द 2, पृष्ठ 210

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खेड़ा (जिला बाँदा, उ.प्र., ग्राम इच्छावर) से प्राप्त काँस्य मूर्ति पर अँकित दानोल्लेख से पता चलता है कि गुप्त वंशोदित श्रीहरिराज नामक शासक की राज्ञी महादेवी ने उस काँस्य मूर्ति को प्रतिष्ठित किया।[1] बुधगुप्त के समय के पहाड़पुर ताम्रलेख में ब्राम्हण दम्पत्ति नाथशर्मा और उसकी भार्या रामी द्वारा निर्ग्रन्थ अथवा जैन बिहार में भगवान अर्हत् की पूजा के निमित्त दान देने का उल्लेख है।[2]

मथुरा प्रस्तर प्रतिमा लेख वर्ष 230 से पता चलता है कि शाक्य भिक्षुणी जयभट्टा द्वारा प्रतिमा का समुचित धार्मिक दान सभी प्राणियों द्वारा परम ज्ञान के लाभ के लिए किया गया तथा इसमें निहित पुण्य भी सभी प्राणियों के परम ज्ञान के लाभ के लिए हो।[3] इसी प्रकार मथुरा प्रस्तर प्रतिमा लेख वर्ष 135[4] पर अँकित लेख से स्पष्ट है कि विहारस्वामिनी द्वारा माता पिता तथा सभी प्राणियों द्वारा परम ज्ञान की प्राप्ति के लिए देवता का उपयुक्त धर्मदान अथवा उस प्रतिमा का दान है।

अजन्ता की 17 वीं गुफा में चित्रित चित्र माता और पुत्र का है जो भगवान बुद्ध को कुछ भिक्षा दे रही है। इस चित्र से स्त्रियों की दान देने की सहज प्रवृत्ति का पता लगता है।

---

1. जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसायटी ऑफ बँगाल, कलकत्ता, जिल्द 44, पृष्ठ 159
   एपीग्रैफिया इण्डिका, जिल्द 33, पृष्ठ 97
2. फ्लीट, कार्पस इन्सक्रिप्शनम् इण्डिकेरम्, भाग 3, पृष्ठ 31
3. फ्लीट, भारतीय अभिलेख सँग्रह, भाग 3, संख्या 70. 406
   मथुरा प्रस्तर प्रतिमा लेख, वर्ष 230, पृष्ठ 350
4. फ्लीट, भारतीय अभिलेख सँग्रह, भाग 3, संख्या 63. 395
   मथुरा प्रस्तर प्रतिमा लेख, वर्ष 135, पृष्ठ 332

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्त्रियों के धार्मिक स्थापत्य के अधिकार:

गृहस्वामिनी के रूप में स्त्रियों का स्थापत्य में योगदान भी विशेष महत्व का तथा सराहनीय रहा है. समुद्रगुप्त के एरण प्रस्तर अभिलेख से पता चलता है कि समुद्रगुप्त की पत्नी दत्तदेवी ने स्वभोग नगर ऐरिकिण या एरण को बसाया था।[1] आदित्यसेन के अफसड़ प्रस्तर लेख से स्पष्ट होता है कि आदित्य सेन की माता महादेवी श्रीमति ने देवलोक के घर के सदृश्य धार्मिक विद्यालय अथवा मठ का निर्माण करवाया तथा आदित्यसेन की प्रिय पत्नी रानी श्री कोण देवी द्वारा उत्कृष्ट तपस्या के सम्पादन में एक अद्भुत सरोवर खुदवाया गया।[2] इसी प्रकार आदित्यसेन के मंदार पहाड़ी से प्राप्त शिलालेख[3] में उसकी प्रिय पत्नी, परमभट्टारिका, रानी महादेवी श्री कोणदेवी द्वारा सरोवर के कार्य को सम्पन्न करने का उल्लेख है.

मात्र पत्नियाँ ही नहीं पुत्रियाँ भी स्थापत्य में योगदान देती रही हैं. राजघाट से प्राप्त बुधगुप्त कालीन स्तंभलेख में पार्वरिक निवासिनी साभाटि और मारविष की पुत्री दामस्वामिनी द्वारा उस स्तंभ को स्थापित किए जाने का उल्लेख है।[4]

---

1. फ्लीट, भारतीय अभिलेख सँग्रह, भाग 3, संख्या 2, 2० समुद्रगुप्त का एरण प्रस्तर अभिलेख, पृष्ठ 26
2. फ्लीट, भारतीय अभिलेख सँग्रह, भाग 3, संख्या 42, 28 आदित्यसेन का अफसड़ प्रस्तर लेख, पृष्ठ 255-56
3. फ्लीट, भारतीय अभिलेख सँग्रह, भाग 3, संख्या 44 - 45 आदित्यसेन का मंदार पहाड़ी से प्राप्त शिलालेख, पृष्ठ 262
4. जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसायटी ऑफ बँगाल, कलकत्ता, जिल्द 15, पृष्ठ 5

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अत: गुप्तकाल में स्त्रियों को गृहस्वामिनी के रूप में स्वतंत्रता थी कि वे धार्मिक योगदान, दान, स्थापत्य तथा सार्वजनिक हित के कार्यों अर्थात् लोकहितकारी कार्यों में अपना योगदान दें. चाहे वह गृहस्वामिनी के रूप में या रानी के रूप में या भिक्षुणी या बिहारस्वामिनी के रूप में हो.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय : 7

• गुप्तकालीन नारी एवं तत्कालीन धर्म.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऋग्वेद में विवाह का उद्देश्य था-----गृहस्थ होकर देवों के लिए यज्ञ करना तथा संतानोत्पत्ति करना।[1] तथा पत्नी ही पति को धार्मिक कृत्यों के योग्य बनाती है. आपस्तम्ब धर्मसूत्र[2] का यह मत है. वैदिक काल में विवाह का यह आदर्श था.

विवाह का यही वैदिक उद्देश्य गुप्तकाल में भी प्रचलित था. मनु[3] एवं याज्ञवल्क्य[4] ने भी क्रमशः धर्मानुष्ठानों का संपादन एवं

1. काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 268
   ऋग्वेद, 10.85.36, 5.3.2, 5.28.3, 3.53.4.
2. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 2.5.11-12
3. मनुस्मृति, 9.28
4. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.78

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एवं अग्निहोत्रादि यज्ञों द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति ही विवाह के उद्देश्य बताये हैं. कालिदास के ग्रंथों में दाम्पत्य जीवन का विलासमय पक्ष धार्मिक एवं सामाजिक पक्ष से कहीं प्रबल और व्यापक है, फिर भी स्त्रियों की धार्मिक आवश्यकता एवं योगदान का वर्णन किया है. उनके अनुसार पत्नी "धर्मपत्नी" एवं "सच्ची सहधर्मचारिणी" थी. किसी भी प्रकार की धार्मिक क्रियायें पत्नी की अनुपस्थिति में सम्पन्न नहीं हो सकतीं थीं.[1] सीता का परित्याग करने के पश्चात् अश्वमेध यज्ञ करते समय राम ने सीता की "हिरण्यमयी" मूर्ति को ही अपने बाँए बैठाया था.[2]

ऋग्वैदिक काल में पत्नी भी पति के समकक्ष यज्ञाधिकार की अधिकारिणी थी. धर्मशास्त्रों ने भी पति पत्नी को सम्मिलित रूप से धर्मानुष्ठान सम्पन्न करने का अधिकार दिया है. किंतु शूद्रा अथवा असवर्ण पत्नी को यहअधिकार प्राप्त नहीं था. मनु[3] ने धर्मानुष्ठानों का सम्पन्न होना पत्नी पर निर्भर बताया है अर्थात् दोनों ही धर्मानुष्ठान करते हैं किंतु सिर्फ सवर्णा पत्नी ही पति के साथधार्मिक कार्यों में भाग लेने की अधिकारी हो सकती थी. मनुस्मृति[4] तथा याज्ञवल्क्यस्मृति[5] दोनों का यही मत है. यदि अनेक सवर्णा पत्नियाँ हों, तो ज्येष्ठा पत्नी को को ही वरीयता मिलनी चाहिए.[6] स्मृतिकार याज्ञवल्क्य[7] ने "अग्निहोम संस्कार" के लिए पत्नी का होना अनिवार्य बताया है.

---

1. _कुमारसंभवम्_, 6.13, 7.83, 8.51
2. _रघुवंशम्_, 14.87
3. _मनुस्मृति_, 9.28, 9.96
4. _मनुस्मृति_, 9.96
5. _याज्ञवल्क्य स्मृति_, 1.88
6. _याज्ञवल्क्य स्मृति_, 1.88
7. _याज्ञवल्क्य स्मृति_, 1.89

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुप्तकाल में पत्नी पति के साथ यज्ञाधिकार पाती थी, इतना ही नहीं धार्मिक कृत्यों में उनकी उपस्थिति अनिवार्य थी. समुद्रगुप्त तथा कुमारगुप्त की अश्वमेध प्रकार मुद्राओं से यह स्पष्ट है कि अश्वमेध यज्ञ में रानी (पत्नी), राजा (पति) के साथ भाग लेती थी. समुद्रगुप्त की अश्वमेध मुद्रा के पृष्ठभाग पर रानी दत्तदेवी खड़ी हैं जिसके कन्धे पर चवँर विराजमान है और वह यज्ञीय अश्व के समीप परिचारिका की तरह दिखालई पड़ती है.

समुद्रगुप्त के इस अश्वमेध प्रकार की मुद्राओं[1] में पृष्ठभाग पर दाहिने कन्धे पर अवलम्बित चँवर पकड़े राजमहिषी अँकित हैं. उनके बायें हाथ में बाँई ओर लटका कपड़े का टुकड़ा या तौलिया दिखलाई पड़ता है. रानी का कर्तव्य था कि वह यज्ञ अश्व को जल से धोवे तथा हवा करे.[2] जिसके लिए तौलिया तथा चँवर दिया गया है. रानी का कर्तव्य था कि वह अश्व को धोवे, किंतु किसी भी मुद्रा पर रानी जलकुम्भ होने वाली नहीं दिखाई गई है. संभवत:, वह कार्य नौकर करते थे. घोड़े को पोंछ लेने पर उसका कर्तव्य समाप्त हो जाता है. पहले तो नौकर पानी डालते और रानी धो देती और पोंछ देती थी.

---

1. ब्रिटिश म्यूजियम कैटलाग, फलक 5.9-10
   जनरल ऑफ एशियाटिक सोसायटी बंगाल, 1884, फलक 2,9
   जरनल ऑफ रायल एशियाटिक सोसायटी, लंदन, 1889, फलक 1, 4
   प्रिंसेप एसेज, फलक, 13.3।
   जरनल ऑफ एशियाटिक सोसायटी, बंगाल, 1915, पृष्ठ 478
   अल्तेकर, अनन्तसदाशिव, गुप्तकालीन मुद्रायें, 1972, पृष्ठ 46-48
2. धाविन्नुपवीजयन्ति पात्रेजनहस्तां वाचयति
   अल्तेकर, गुप्तकालीन मुद्रायें, 1972, पृष्ठ 46

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रानी के सामने नुकीले दण्ड को यज्ञ का बरछा कहा गया है।[1] उस पर पताका नहीं है, अतएव ध्वज नहीं माना जा सकता। यद्यपि वह बरछा की तरह दिखलाई पड़ता है, तथापि यज्ञ में इसकी कोई आवश्यकता न थी, घोड़े की मृत्यु के पश्चात् शास्त्रीय नियम के अनुसार तीन रानियाँ सुई {सूजी} से उसके शरीर को छेदती थीं, ताकि शरीर में तलवार आसानी से घुस सके। राजमहिषी स्वर्ण सुई, वावाता चाँदी की सुई तथा परिवृक्ता ताँबे की सुई प्रयोग में लाती थीं।[2] सँभवतः रानी के सम्मुख नुकीली वस्तु "सुई" है जिसके मध्य की मँठ को पकड़कर रानी घोड़े के मोटे चमड़े में सुई चुभोती थी। रानी की सम्मुख वाली वस्तु को नुकीली यज्ञ सूची समझना ही उचित मालूम पड़ता है।[3] इसी प्रकार के कुमारगुप्त प्रथम[4] के भी अश्वमेध प्रकार के सिक्के बयाना निधि से प्राप्त हुए हैं जिनमें रानी की वही स्थिति दर्शाई गई है।

वात्स्यायन ने गृहस्थ पत्नी के दायित्वों एवं कर्तव्यों का उल्लेख करते हुए कहा है : "उसे सुबह, दोपहर और शाम को तीनों समय नियमित रूप से सँध्या हवन तथा बलिकर्म करना चाहिए। तीनों समय उसे देवताओं का पूजन अर्चन करना चाहिए तथा पति

---

1. जर्नल आफ रायल एशियाटिक सोसायटी, लंदन, 1889, पृष्ठ 65
   ब्रिटिश म्यूजियम कैटलाग, पृष्ठ 21
2. कात्यायन श्रौत सूत्र,
3. अल्तेकर, गुप्तकालीन मुद्रायें, 1972, पृष्ठ 46
4. बयाना निधि की मुद्रा सूची, फलक 30.9, 30.10, 30.11, 30.12.
   अल्तेकर, गुप्तकालीन मुद्रायें, 1972, पृष्ठ 141-42, फलक 13.7 13.8, 13.9, 13.10

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की आज्ञा प्राप्त कर उसे यज्ञ, पूजन तथा देव पूजन आदि कार्यों के लिए जाना चाहिए।[1] इस प्रकार वात्स्यायन ने लौकिक एवं पारलौकिक कार्यों में गृहलक्ष्मी की अनिवार्यता एवं महत्ता को स्वीकारा है.

पत्नी धर्मपत्नी एवं सच्ची सहधर्मिणी थी. अतः वह सभी धार्मिक कृत्य पुत्र प्राप्ति, पुत्र की दीर्घायु होने के लिए, पुत्र की विजय के लिए तथा पति को प्रसन्न रखने, उसी पति को पुनः प्राप्ति हेतु एवं अनपत्यता निवारण हेतु किया करती थी. उपरोक्त उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु वह विभिन्न प्रकार के व्रत एवं अनुष्ठान करती थी. कुछ व्रत एवं अनुष्ठान निम्न प्रकार हैं:

1. <u>पुत्र पिण्ड पालनः</u>[2] पुत्र की मंगल कामना हेतु एवं पुत्र की विजय के लिए व्रत एवं दक्षिणा.
2. <u>पुत्र प्राप्ति के लिए व्रत</u>[3]: पति के साथ यह व्रत करती थी.
3. <u>प्रियानुप्रसादन व्रत</u>[4]: पति को प्रसन्न करने के लिए.
4. <u>अभिरूपपति व्रत</u>[5] : दूसरे जन्म में भी उसी पति को प्राप्त करने के लिए.
5. <u>अनपत्यता निवारणः</u> इसके लिए पति को चंदन के लेप तथा माला से अलंकृत करके उसके साथ गंगा यमुना के संगम पर स्नान करती थी।[6] यह स्नान तिथि विशेष या पर्व के दिन होता था.

---

1. गैरोला, वाचस्पति, <u>कामसूत्र परिशीलन</u>, 1967, पृष्ठ 204-5
2. <u>मालविकाग्निमित्रम्</u>, अंक 5, पृष्ठ 339
3. <u>अभिज्ञानशाकुन्तलम्</u>, अंक 2, पृष्ठ 39
4. <u>रघुवंशम्</u>, सर्ग 1 तथा 2
5. <u>विक्रमोर्वशीयम्</u>, अंक 3, पृष्ठ 204
5. <u>मृच्छकटिकम्</u>, अंक 1, पृष्ठ
6. <u>विक्रमोर्वशीयम्</u>, अंक 5, पृष्ठ 239

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुप्तकालीन अभिलेखों या मुद्राओं में हमें कहीं भी व्रत संबंधी उल्लेख नहीं मिलता. मात्र कालिदास के ग्रंथों में व्रत एवँ व्रतों की विधि का उल्लेख मिलता है. "अभिरूपपति" व्रत में स्त्रियाँ विभिन्न प्रकार के व्यँजन बनाकर सर्वप्रथम किसी योग्य ब्राम्हण को[1] तत्पश्चात् पति को और अँत में स्वयं क ग्रहण करती थीं.[2] "प्रियानु प्रसादन" व्रत स्त्रियाँ पति के साथ ही करती थीं.[3] इस व्रत के अवसर पर स्वस्तिवाचन[4] के पश्चात् चंदनफूल से चन्द्रमा की किरणों की पूजा करती थीं.[5] तथा मिष्ठान्न का नैवेद्य लगाकर उसे ब्राम्हणों को देती थीं.[6] और अँत में पति की पूजन कर, हाथ जोड़कर प्रणाम कर चन्द्र और रोहिणी को साक्षी बनाकर पति को प्रिया के साथ स्नेह पूर्वक व्यवहार करने की प्रतिज्ञा करती थीं.[7] इस व्रत को नियम पूर्वक सम्पन्न किया जाता था तथा व्रत के नियम को नहीं तोड़ा जाता था.[8]

व्रत एवँ अनुष्ठानों के अतिरिक्त स्त्रियाँ तीर्थ स्थानों[9] एवँ पवित्र नदियों[10] में स्नान करना पुण्य कर्म मानती थीं, तथा

---

1. <u>मृच्छकटिकम्</u>, अँक 1,
2. <u>मृच्छकटिकम्</u>, अँक 1,
3. <u>विक्रमोर्वशीयम्</u>, अँक 3, पृष्ठ 194, 204
4. <u>विक्रमोर्वशीयम्</u>, अँक 2, पृष्ठ 202
5. <u>विक्रमोर्वशीयम्</u>, अँक 3, पृष्ठ 204-5
6. <u>विक्रमोर्वशीयम्</u>, अँक 3, पृष्ठ 205
7. <u>विक्रमोर्वशीयम्</u>, अँक 3, पृष्ठ 205
8. <u>विक्रमोर्वशीयम्</u>, अँक 3, पृष्ठ 206
8. <u>अभिज्ञानशाकुन्तलम्</u>, अँक 5, पृष्ठ 90
10. <u>विक्रमोर्वशीयम्</u>, अँक 2, पृष्ठ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तीर्थस्थानों में जाना एक आवश्यक धार्मिक कृत्य माना जाता था. यात्रा के समय मार्ग में पड़ने वाले तीर्थस्थानों को स्त्रियाँ प्रणाम करती थीं.[1] उपरोक्त व्रत, अनुष्ठान एवँ तीर्थस्थान पर स्नान इत्यादि स्त्रिया पति के साथ ही करती थी. प्राचीन भारत में ऐसा विश्वास था कि तीर्थयात्रा करने एवँ पवित्र नदियों ‖यथा गँगा‖ में स्नान करने से मनुष्य के पाप कटते हैं.[2] मत्स्य पुराण[3] एवँ कूर्मपुराण[4] का भी यही कथन है.

कभी कभी स्त्रियाँ स्वर्ग पाने की इच्छा से तप भी करती थीं.[5] अविवाहित युवतियाँ योग्य पति को पाने के लिए तपस्या करती थीं. कुमारसँभवम् में पार्वती का तप ऐसा ही तप था.[6] कुमारी अवस्था में तपस्वी व्रत लेना बुरा नहीं माना जाता था. स्त्रियाँ यतिधर्म ‖परिव्रजिका‖ की भी अधिकारिणी होती थी.[7] यतिधर्म या भिक्षुणी का वर्णन अध्याय 2 में किया जा चुका है. निर्दय पति के वियोग में भी कभी कभी स्त्रियाँ तप करती थीं.[8]

पति से वियुक्त हो स्त्रियाँ जिस तप एवँ नियम से विरही जीवन व्यतीत करती थीं, वह भी एक प्रकार का व्रत था. पति के वियोग में शुद्ध चरित्र एवँ संयम नियम से रहती हुई वे तपोमय जीवन

---

1. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अँक 5, पृष्ठ 90
2. काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 3, पृष्ठ 1041-42
3. मत्स्य पुराण, 184. 18
4. कूर्मपुराण, पूर्वार्द्ध, 29. 3
5. कुमारसँभवम्, 5. 45
6. कुमारसँभवम्, 5. 46
7. मालविकाग्निमित्रम्, अँक 5, पृष्ठ 347-48
8. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 7. 21

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यतीत करती थीं. दुष्यन्त के विरह में शुद्ध मन से शकुन्तला द्वारा तपस्या किया जाना इसका प्रमाण है.[1] इस व्रत में विरहिणी समस्त श्रृंगारिक अलँकारों का परित्याग कर एकदम सादी वेशभूषा को अपना लेती थी. उसके वस्त्र मलिन तथा केश शुष्क एवँ प्रसाधन विहीन रहते थे. वह एक ही वेणी बाँधती थी.[2] और यह वेणी पति से वियोग के दिन से बँधी होती थी, तथा पति के वापिस आने पर ही खोली जाती थी.[3]

विरहिणी आभूषणों को त्याग कर मात्र सुहाग चिन्ह स्वरूप ही कुछ विशिष्ट माँगलिक अलँकार ही धारण करती थी. ओठों को रँगना तथा आँखों में लगाना इत्यादि प्रसाधनों का वे परित्याग कर देती थीं.[4] विरहिणी की अवस्था का विस्तृत वर्णन कालिदास ने अपने मेघदूतम्[5] में किया है अर्थात् विरहावस्था में स्त्री सभी प्रकार के सौंदर्य प्रसाधनों का त्याग कर, पति की याद में सादा जीवन व्यतीत करती थी.

पत्नी "धर्मपत्नी" एवँ "सहधर्मचारिणी" होते हुए भी न केवल भौतिक रूप से वरन् आध्यात्मिक रूप से भी पति के साथ एकात्म हो जाती थी. अतः सामान्यतः दोनों (पति-पत्नी) एक ही धर्म को मानते थे. पति द्वारा सम्पादित समस्त धार्मिक कृत्य, पत्नि द्वारा भी किए जाते थे. स्पष्ट है कि स्त्री के लिए किसी दूसरे धर्म अथवा सम्प्रदाय के अनुसरण करने का प्रश्न

---

1. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 7.21
2. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 7.21
3. मेघदूतम्, उत्तरमेघ, 32
4. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अँक 7,
5. मेघदूतम्, सम्पूर्ण.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ही नहीं उठता था.

किंतु इसके विपरीत स्त्रियाँ किसी भी धर्म को स्वीकारने एवँ उसकी अनुयायी बनने को स्वतँत्र थीं. वे अपनी इच्छानुसार, जैन, बौद्ध अथवा भागवत धर्म को स्वीकार कर सकती थीं, तथा उस धर्म के प्रचार एवँ प्रसार हेतु मँदिरों की स्थापना, देवमूर्तियों की स्थापना एवँ दान किया करती थीं. चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री प्रभावती गुप्ता का विवाह वाकाटक नरेश, रूद्रसेन द्वितीय, जो शैव थे, से हुआ किंतु प्रभावती गुप्त भागवत धर्म की अनुयायी थी और उसके प्रभाव से वाकाटक भी भागवत् हो गये. बुधगुप्त के शासनकाल के पहाड़पुर ताम्रलेख के अनुसार ब्राम्हण दम्पत्ति नाथशर्मा और उसकी भार्या रामी द्वारा निर्ग्रन्थ अथवा जैन बिहार में भगवान अर्हत् की पूजा के निमित्त दान दिया.[1]

गुप्तकालीन अभिलेखों में गृहस्वामिनी द्वारा स्वयँ अपनी तथा अपने माता पिता की पुण्य वृद्धि हेतु अथवा समस्त प्राणि मात्र के द्वारा परमज्ञान के लाभ हेतु धार्मिक दान अथवा पुण्य करने के उल्लेख मिलते हैं. चन्द्रगुप्त द्वितीय के गढ़वा प्रस्तर अभिलेख से पता चलता है कि पाटलिपुत्र की गृहस्थ पत्नी द्वारा स्वयं अपने पुण्य में वृद्धि हेतु सदा चलने वाले भिक्षागृह को 10 दीनारों का दान किया गया.[2] साँची प्रस्तर लेख में उपासक सनसिद्ध की पत्नी उपासिका हरिस्वामिनी द्वारा अपने माता पिता के लिए काकनाद बोट {साँची} के पवित्र बिहार में समूहित भिक्षुओं के सँघ के प्रति 12 दीनारों का अक्षय नीवी दान देने का वर्णन है जिससे

---

1. फ्लीट, कार्पस इन्सक्रप्शनम् इण्डिकेरम्, भाग 3, पृष्ठ 31
2. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3, सुख्या 74 -क चन्द्रगुप्त द्वितीय का गढ़वा प्रस्तर अभिलेख, पृष्ठ 49

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अजंता—गुहा नं० १७ भगवान् बुद्ध का भिक्षा माँगना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन दीनारों से प्राप्त ब्याज द्वारा संघ में प्रविष्ट एक भिक्षु को प्रतिदिन भोजन दिया जाय।[1] मथुरा स्थित कंकाली टीला से प्राप्त जैन मूर्ति[2] पर अँकित लेख से स्पष्ट है कि भदिटभव की पुत्री और गृहमित्रपति की पत्नी सामाध्या ने उस मूर्ति को, जिस पर यह लेख अँकित है, प्रतिष्ठित किया. इसी प्रकार धनेश्वर खेड़ा (जिला बाँदा, उत्तरप्रदेश, ग्राम इच्छावर) से प्राप्त काँस्य मूर्ति पर अँकित दानोल्लेख से स्पष्ट है कि गुप्त वंशोदित श्री हरिराज नामक शासक की राज्ञी महादेवी ने उस काँस्य मूर्ति को प्रतिष्ठित किया.[3] मथुरा प्रस्तर प्रतिमा लेख, वर्ष 230 के अनुसार शाक्य भिक्षुणी जय भट्टा द्वारा प्रतिमा का समुचित धार्मिक दान सभी प्राणियों द्वारा परम ज्ञान के लाभ के लिए किया गया.[4] इसी प्रकार मथुरा प्रस्तर प्रतिमा लेख, वर्ष 135 के लेख से पता चलता है कि बिहार स्वामिनी द्वारा माता पिता तथा सभी प्राणियों द्वारा परमज्ञान की प्राप्ति के लिए देवता का उपर्युक्त प्रतिमा का धर्मदान किया गया.[5] स्त्रियों की दान देने की सहज प्रवृत्ति का चित्रण हमें अजन्ता की 17 वीं गुफा में चित्रित चित्र माता पुत्र द्वारा मिलता है, जिसमें माता पुत्र भगवान बुद्ध को कुछ भिक्षा दे रही हैं. (फलक 1).

गृहस्वामिनी के रूप में ही नहीं राजमाता तथा रानी के

---

1. फ्लीट, <u>भारतीय अभिलेख संग्रह</u>, भाग 3, संख्या 62. 38-ख साँची प्रस्तर लेख, पृष्ठ 329-30
2. <u>एपीग्रैफिया इण्डिका</u>, जिल्द 2, पृष्ठ 210
3. <u>जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता</u>, जिल्द 44, पृष्ठ 159
   <u>एपीग्रैफिया इण्डिका</u>, जिल्द 33, पृष्ठ 97
4. फ्लीट, <u>भारतीय अभिलेख संग्रह</u>, भाग 3, संख्या 70. 40 घ मथुरा प्रस्तर प्रतिमा लेख, वर्ष 230, पृष्ठ 350
5. फ्लीट, <u>भारतीय अभिलेख संग्रह</u>, भाग 3, संख्या 63. 39-क मथुरा प्रस्तर प्रतिमा लेख, वर्ष 135, पृष्ठ 332.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के रूप में भी स्त्रियों के धार्मिक योगदान महत्वपूर्ण हैं. आदित्य सेन के अफसद प्रस्तर लेख[1] के अनुसार आदित्यसेन की माता महादेवी श्रीमति ने देवलोक के घर के सदृश्य धार्मिक विद्यालय अथवा मठ का निर्माण करवाया तथा आदित्यसेन की प्रिय पत्नी रानी श्री कोण देवी द्वारा उत्कृष्ट तपस्या के सम्पादन में एक अद्भुत सरोवर खुदवाया गया. इसी प्रकार आदित्यसेन में मंदार पहाड़ी[2] से प्राप्त शिलालेख में उसकी प्रिय पत्नी परमभट्टारिका रानी महादेवी श्री कोणदेवी द्वारा सरोवर के कार्य को सम्पन्न करने का उल्लेख है. मात्र पत्नियाँ ही नहीं पुत्रियों का भी स्थापत्य में योगदान रहा है. राजघाट से प्राप्त बुधगुप्त के समय के स्तंभ लेख में पार्वरिक निवासिनी साभाटि और मारविश की पुत्री दामस्वामिनी द्वारा उस स्तम्भ को स्थापित किये जाने का उल्लेख है.[3]

आचार्य {बौद्ध} वसुवंध की जीवनी में परमार्द ने लिखा है कि अयोध्या का राजा विक्रमादित्य {पुरूगुप्त} वसुवन्धु के प्रभाव से बौद्ध धर्म का संरक्षक हो चला था और उसने अध्ययनार्थ अपनी महारानी {श्रीवत्सदेवी} व पुत्र बालादित्य को आचार्य के पास भेजा था.[4]

---

1. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3, संख्या 42. 28
   आदित्यसेन का अफसद प्रस्तर लेख, पृष्ठ 255-56
2. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3 संख्या 44 तथा 45
   आदित्यसेन का मंदार पहाड़ी से प्राप्त शिलालेख, पृष्ठ 262
3. जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता,
   कलकत्ता, जिल्द 15, पृष्ठ 5
4. पाँथरी, भगवती प्रसाद, महानगुप्त राजवंश, 1963, पृष्ठ 291

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अतः गुप्तकाल में स्त्रियों का धार्मिक योगदान उनके विभिन्न रूपों----गृहस्वामिनी, पुत्री, राजमाता, रानी, उपासिका, भिक्षुणी तथा बिहार स्वामिनी इत्यादि अनेक रूपों में मिलता है. यह धार्मिक योगदान दान, स्थापत्य [मूर्ति-स्थापना] तथा सार्वजनिक हित के कार्यों के रूप में था जो अप्रत्यक्ष रूप से या प्रत्यक्ष रूप से धर्म के प्रसार एवं प्रचार के लिए था.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुप्तकालीन कला में नारी:

भारतीय कला एक धर्म प्रधान कला है. धार्मिक भावों के कारण ही इस कला की उत्पत्ति हुई है. तथा भारतीय ललित कला का बीज धर्म में ही निहित है. भारतीय ललित कला के विकास में गुप्तों का बहुत बड़ा योगदान है. गुप्त कालीन समाज में नारी सम्माननीय पद पर प्रतिष्ठापित थी. धार्मिक स्थिति भी उच्च थी. नारी ने धार्मिक स्थापत्य में स्थान पाया-----गँगा यमुना के रूप में प्रवेश द्वारों पर अँकित होकर पार्वती, महिषमर्दिनी, दुर्गा इत्यादि के शक्ति रूप में तथा शिव की अर्द्धांगिनी के रूप में अर्द्धनारीश्वर बन कर. लक्ष्मी के रूप में शक्ति ने गुप्तकालीन मुद्राओं पर स्थान पाया. नारी शक्ति के रूप में पूजित थी.

गुप्तकाल में नदी देवियों-----गँगा और यमुना का भी अधिक प्रचार था तथा वे काफी लोकप्रिय थीं. इन्हें मुख्यत: मंदिरों के प्रवेश द्वारों पर स्थान दिया गया है जो मंगलकामना का प्रतीक है. इस रूप में नदी देवियों कई प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं जो मकरवाहिनी तथा कच्छप वाहिनी के रूप में उत्कीर्ण हुई हैं. कनिंघम ने गुप्त मंदिरों की विशेषता को बतलाते हुए गंगा और यमुना के द्वारा अलँकरण प्रकार को विशेष महत्व दिया है.[1] गुप्तकालीन मंदिरों के द्वारा स्तंभ पर दाहिनी ओर मकरवाहिनी गंगा तथा बाईं ओर कूर्मवाहिनी यमुना की मूर्तियाँ बनाई जाती थीं. मकर वाहिनी गंगा का अँकन गुप्तकालीन सिक्कों पर भी

---

1. कनिंघम, <u>आर्केलाजिकल सर्वे रिपोर्ट</u>, भाग 10, पृष्ठ 60

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

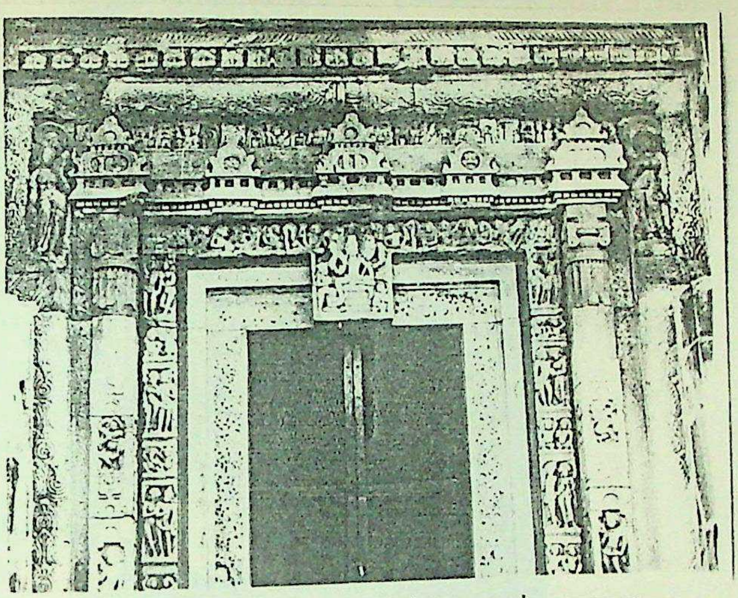

देवगढ़ मंदिर की द्वारशाखा पर अंकित गंगा यमुना,
4थी शता.

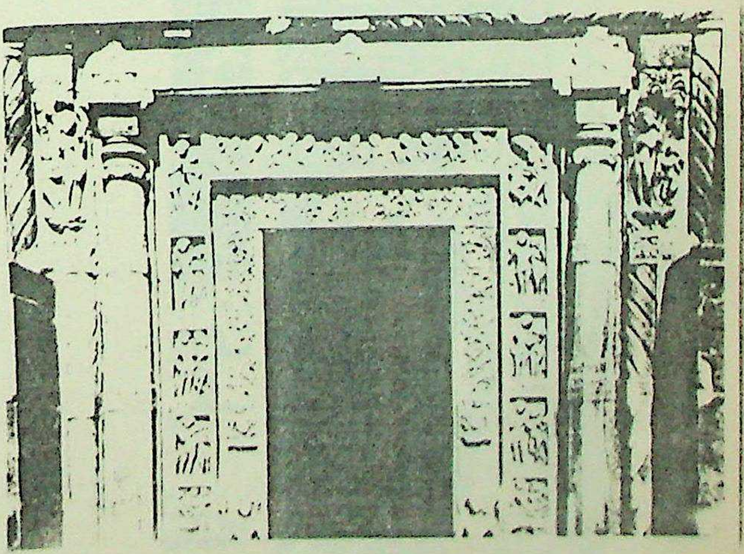

भूमरा मंदिर की द्वार शाखा पर अंकित गंगा यमुना,
4-5वीं शता.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

1

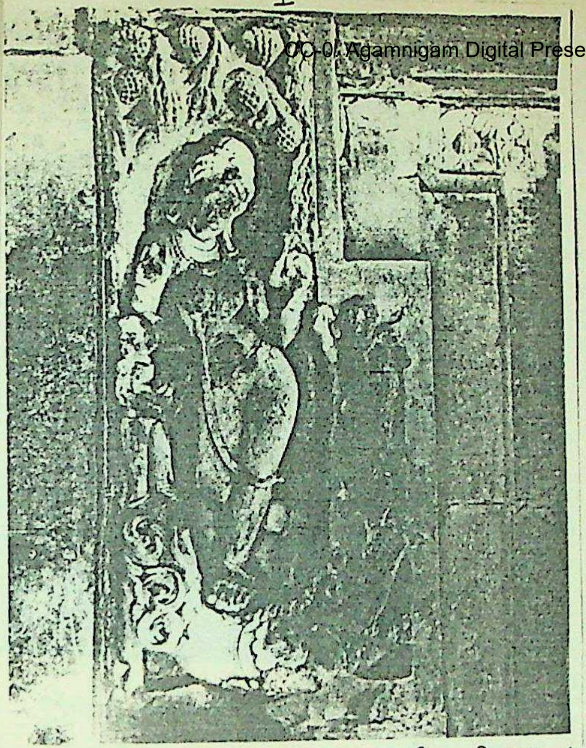

तिगवा से प्राप्त मकरवाहिनी गंगा, 4वीं शता० ई०

2

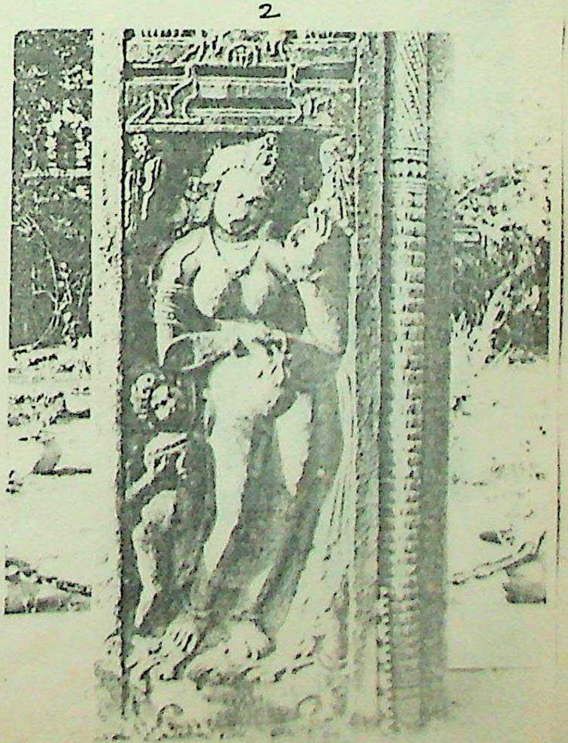

मंदसौर से प्राप्त गंगा, 5वीं शता० लगभग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फलक 4

1

बाग की मकरवाहिनी मूर्ति।

2

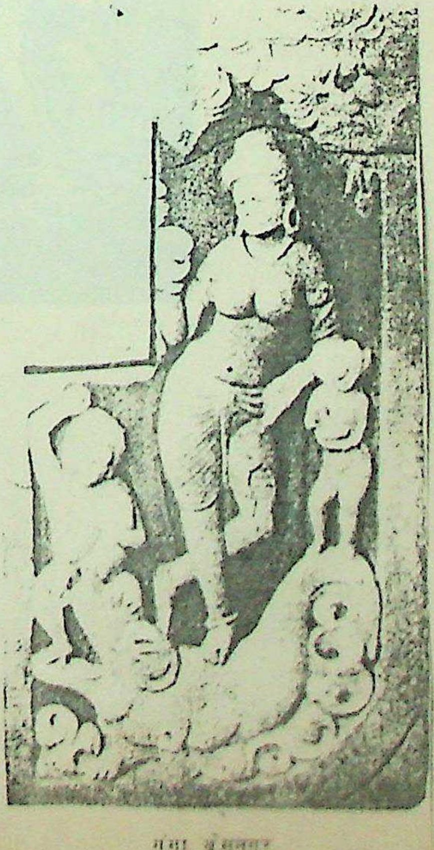

गंगा, बेसनगर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यमुना, मन्दसौर।

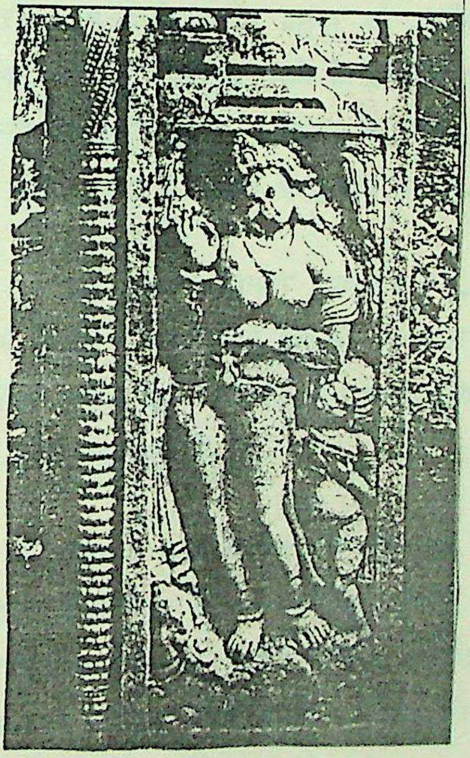

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राप्त होता है.[1]

भूमरा के शिव मंदिर के द्वारा स्तंभ {फलक 2.2} पर ऐसी ही दाहिनी ओर मकरवाहिनी गंगा तथा बायें कूर्मवाहिनी यमुना की मूर्ति है. गुप्तकालीन उदयगिरि की गुफा में चौखट के ऊपरी भाग में गँगा और यमुना की मूर्तियाँ हैं. लड़खान मंदिर {बंबई प्रांत के बीजापुर जिले के अन्तर्गत अयहोल में} में भी गंगा यमुना की खुदी हुई हैं. देवगढ़ के विष्णु मंदिर में भी द्वार स्तंभ पर गंगा यमुना का अंकन है {फलक 2.1}.

इसी प्रकार तिगवा {फलक 3.1}, मंदसौर {फलक 3.2}, बाग {फलक 4.1} तथा बेसनगर से प्राप्त मकरवाहिनी गंगा की मूर्तियाँ प्रसिद्ध हैं. मंदसौर से प्राप्त कूर्मवाहिनी यमुना {फलक 5} की मूर्ति महत्वपूर्ण है.

शिव के साथ शक्ति की भी पूजा की जाती थी. शक्ति देवी के अन्य नाम हैं-----पार्वती, दुर्गा, महिषमर्दिनी इत्यादि. गुप्तकालीन कवि कालिदास ने शिव पार्वती की युग्म पूजा का अनेक बार उल्लेख किया है.[2] गुप्तकालीन अभिलेखों, तत्कालीन साहित्य, प्रतिमाओं आदि से शक्ति पूजा की व्यापकता पर प्रकाश पड़ता है. इनमें दुर्गा, महिषासुरमर्दिनी, पार्वती और लक्ष्मी तथा सरस्वती प्रमुख हैं.

भीटा से प्राप्त शिव पार्वती की गुप्तकालीन मृण्मूर्ति

---

1. अल्तेकर, गुप्तकालीन मुद्रायें.
2. रघुवंश, 1.1

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

1

अर्द्धनारीश्वर, मथुरा संग्रहालय

2.

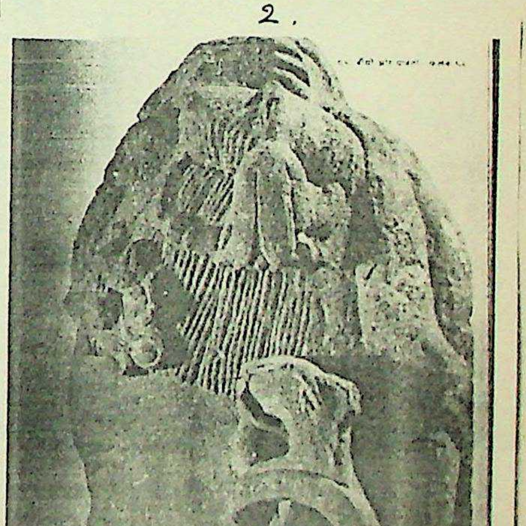

अर्द्धनारीश्वर, बायीं ओर पार्वती

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

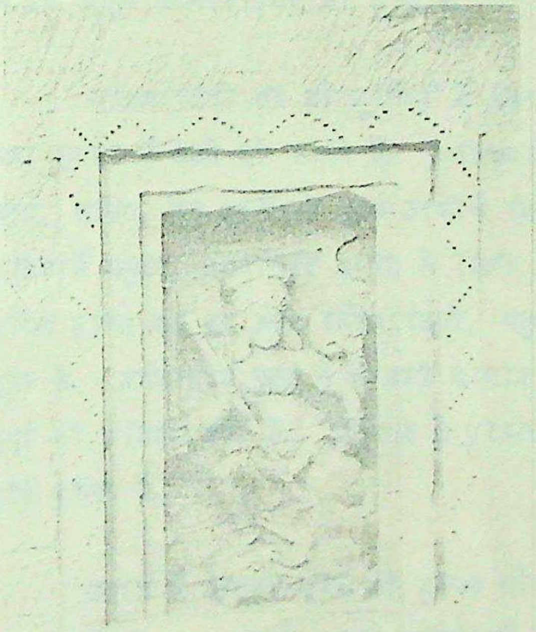

महिषमर्दिनी, देवगढ़, 5 वीं शता. ई. लगभग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महत्वपूर्ण है.[1] अर्धनारीश्वर के रूप में शिव पार्वती का अंकन शिव पार्वती के रूप में अधिक मिलता है. शक्ति का अंकन शिव के अर्द्ध नारीश्वर रूप में दिखता है. मथुरा संग्रहालय में अर्धनारीश्वर की सुंदर (फलक 6.1-2) मूर्तियाँ हैं. सारनाथ के संग्रहालय में एक चतुर्भुज अर्धनारीश्वर की मूर्ति है.

महिषमर्दिनी की दो मूर्तियों के अंकन देवगढ़ (फलक 7) तथा भूमरा में देखने को मिलते हैं. महिषमर्दिनी को कुलिश, दण्ड, शक्ति, शूल आदि के साथ उत्कीर्ण किया है. इनकी प्रतिमायें मथुरा, उदयगिरि आदि से मिली हैं. पार्वती के यही अधिक प्रसिद्ध रूप का अंकन सिंहवाहिनी, चतुर्भुज दुर्गा के रूप में हुआ है. उदयगिरि गुफा के बाहरी दीवार पर द्वादशभुजी दुर्गा की प्रतिमा बनी है. वेसनगर से प्राप्त महिषमर्दिनी की मूर्ति प्रसिद्ध है.

समाज में मातृका पूजा भी अधिक लोकप्रिय थी. सप्त मातृकाओं की पूजा उनकी प्राप्त प्रतिमाओं से सिद्ध होती है. ब्रम्हाणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, यमी आदि सप्त मातृकाओं के नाम से प्रकट होता है कि ये क्रमशः ब्रम्हा, महेश्वर (शिव), कुमार (कार्तिकेय), विष्णु, वराह, इन्द्र और यम की पत्नियाँ हैं और उन्हीं की शक्तियों के रूप में उनकी पूजा होती थी. अतः निश्चित ही गुप्तकाल में सप्त मातृकाओं का यह रूप प्रचलित एवं रूढ़ हो गया था. सरायकेला (उड़ीसा) से प्राप्त मूर्तियों से यह अनुमान लगाया जा सकता है.[2]

1. आर्केलाजिकल सर्वे रिपोर्ट, 1911-12, पृष्ठ 76, प्लेट 25 नं. 49
2. जर्नल आफ ओरियन्टल इंस्टीट्यूट, जिल्द 18, पृष्ठ 153-156

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जो छठी शताब्दी ईस्वी की हैं. अभिलेखों से प्रकट होता है कि सप्तमातृकाओं के लिए स्वतंत्र रूप से मंदिरों का भी निर्माण होने लगा था. विश्ववर्मन के गंगधार प्रस्तर लेख[1] से स्पष्ट होता है विश्ववर्मन के अमात्य मयूराक्षक ने मातृदेवियों के एक मंदिर का निर्माण कराया. समुद्रगुप्त के बिहार प्रस्तर स्तंभ अभिलेख में स्कंद के साथ मातृकाओं का उल्लेख है.[2] महाराज संक्षोभ के खोह ताम्रपत्रांकित अभिलेख[3] में देवी पिष्टपुरी के मंदिर का संदर्भ है. महाराज शर्वनाथ के खोह ताम्रपत्र अभिलेख[4] में पिष्टापुरिका देवी के मंदिर के लिए आधे गाँव नियत करने का वर्णन है. अनन्तवर्मन के नागार्जुनी पहाड़ी के गुहा लेख में देवी का उल्लेख है.[5] अनन्तवर्मन के दूसरे नागार्जुनी पहाड़ी गुहा लेख[6] में पार्वती को कात्यायनी तथा भवानी नाम से संबोधित किया गया है. अतः इन्हें गौरी, अम्बिका, उमा आदि नामों से भी जाना जाता है.)

---

1. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3, संख्या 17.10 विश्ववर्मन का गंगधार प्रस्तर लेख, पृष्ठ 97
2. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3, संख्या 12.6 ख समुद्रगुप्त का बिहार प्रस्तर स्तंभ अभिलेख, पृष्ठ 64
3. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3, संख्या 25.25 ख महाराज संक्षोभ का खोह ताम्रपत्रांकित अभिलेख, पृष्ठ 142
4. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3, संख्या 30.19 ख महाराज शर्वनाथ का खोह ताम्रपत्र अभिलेख, पृष्ठ 161
5. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3, संख्या 49.31 क अनन्तवर्मन का नागार्जुनी पहाड़ी का गुप्तलेख, पृष्ठ 280
6. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3, संख्या 50.31 ख अनन्तवर्मन का नागार्जुनी पहाड़ी का गुहालेख, पृष्ठ 284-85

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय : 8

• गुप्तकालीन नारियाँ तथा प्रशासनिक योगदान.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में नारी की क्या भूमिका थी उसका क्या योगदान था ? इस विषय में राजनीतिज्ञ मौन हैं, किन्तु प्राचीन वैदिक कर्मकाण्ड में पत्नियों/रानियों का अश्वमेध यज्ञ में योगदान आवश्यक एवं महत्वपूर्ण स्वीकारा गया है. इससे संकेत मिलता है कि दैनिक शासन में रानियों का योगदान निश्चित ही किसी न किसी रूप में होगा. गुप्तकालीन रानियों का प्रशासनिक अथवा राजनीतिक योगदान की सहज एवं स्वाभाविक रूप से कल्पना की जा सकती है. इसके हमें अनेक प्रमाण मिलते हैं. गुप्तकालीन राजाओं में चन्द्रगुप्त प्रथम, चन्द्रगुप्त द्वितीय, कुमार गुप्त प्रथम तथा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्कंदगुप्त द्वारा प्रचलित राजा रानी प्रकार के सिक्के महत्वपूर्ण हैं. चन्द्रगुप्त प्रथम ने राजा रानी प्रकार की मुद्रायें प्रचलित कीं. इसमें राजा चन्द्रगुप्त प्रथम तथा कुमारदेवी दोनों खड़े अंकित हैं तथा दाहिने हाथ से राजा, रानी कुमार देवी को कुछ भेंट दे रहा है, संभवतः वह वस्तु अँगूठी, कँकण या सिंदूरदानी है जिसे महिषी ध्यानपूर्वक देख रही है. इस मुद्रा पर "चन्द्रगुप्त" तथा "श्री कुमार देवी" या "कुमार देवी श्री" मुद्रा लेख अंकित है.[1]

चन्द्रगुप्त प्रथम का वैवाहिक संबंध लिच्छवि वंश में हुआ. उसकी राजकुमारी कुमारदेवी चन्द्रगुप्त प्रथम की पट्टमहिषी थी, लिच्छवियों के सहकार्य से सरलतापूर्वक वह सम्राट के पद तक पहुँच सका था. लिच्छवि वंश से उसका वैवाहिक संबंध चन्द्रगुप्त के शासन काल की महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना थी, जिसने उसकी मुद्रानीति को प्रभावित किया था. उसने केवल एक प्रकार की मुद्रा तैयार कराई, जिसके पुरोभाग पर राजा तथा महिषी कुमारदेवी की आकृतियां बनाई गईं, चन्द्रगुप्त तथा कुमारदेवी मुद्रालेख अंकित किया गया तथा पृष्ठभाग पर लिच्छवि वंश का नाम उत्कीर्ण किया गया.

अल्तेकर की धारणा है कि कुमारदेवी स्वाधिकार से रानी थी.[2] इसका अर्थ यह हुआ कि चन्द्रगुप्त प्रथम का प्रवेश लिच्छवि परिवार में रानी पति {प्रिन्स कन्सर्ट} के रूप में हुआ था और लिच्छवि राज्य के साथ उनका संबंध कुछ उसी ढंग का था जिस ढंग पर इग्लैंड के राज्य पर मेरी के साथ तृतीय विलियम का नाम जुड़ा था. पति पत्नी के इस प्रकार के संयुक्त राज्य की संभावना उनके

---

1. अल्तेकर, <u>गुप्तकालीन मुद्रायें</u>, पृष्ठ 24-25
2. <u>न्यूमिस्मेटिक सप्लीमेण्ट</u>, कलकत्ता, 47, पृष्ठ 107
   <u>कैटलाग ऑफ द क्वायन्स ऑफ बयाना होर्ड</u>, भूमिका, पृष्ठ 63

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिक्कों से प्रकट होती है. वे सिक्के चन्द्रगुप्त के महाराजाधिराज की सम्राटीय उपाधि धारण करने के अवसर पर जारी किये गये होंगे और इस नये सिक्के पर लिच्छवियों के आग्रह पर ही उनकी राज कुमारी का नाम दिया गया होगा. अल्तेकर द्वारा विलियम तृतीय और मेरी के साथ चन्द्रगुप्त प्रथम और कुमारदेवी की की गई तुलना अपने आप में काफी आकर्षक और सहज ग्राह्य है.

इसी प्रकार चन्द्रगुप्त द्वितीय,[1] कुमारगुप्त प्रथम,[2] तथा स्कँदगुप्त[3] की भी राजारानी प्रकार की स्वर्ण मुद्रायें प्राप्त हुई हैं. इस प्रकार राजा रानियों के एक साथ अँकन को हम पारिवारिक अथवा दाम्पत्य जीवन का अँकन मात्र नहीं मान सकते, निश्चित ही इसका सार्वजनिक अथवा प्रशासनिक अभिप्राय रहा होगा. सँभवत: चन्द्रगुप्त प्रथम ने कुमारदेवी के साथ मिलकर शासन भार सँभाला.

बसाढ़ से प्राप्त ध्रुवस्वामिनी की मिट्टी की मुहर महत्वपूर्ण है. इस मुहर में उसे महाराज चन्द्रगुप्त की पत्नी तथा गोविंद गुप्त की माता कहा गया है.

"महाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्तस्य पत्नी महाराज श्री गोविंदगुप्त माता महादेवी ध्रुवस्वामिनी".[4] ध्रुवदेवी तथा ध्रुवस्वामिनी एक ही है. ध्रुव स्वामिनी के नाम की मुहर से इँगित

---

1. अल्तेकर, गुप्तकालीन मुद्रायें, 1972, पृष्ठ 98
2. अल्तेकर, गुप्तकालीन मुद्रायें, 1972, पृष्ठ 148-49
3. जर्नल आॅफ रायल एशियाटिक सोसायटी, लन्दन, 1889, पृष्ठ 110
   जर्नल आॅफ एशियाटिक सोसायटी, बँगाल, 1884, पृष्ठ 199
4. आर्कैलाजिकल सर्वे आॅफ इंडिया, वार्षिक रिपोर्ट, 1903-4, पृष्ठ 177

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होता है कि ध्रुवस्वामिनी संभवतः प्रांतीय शासिका थी।[1] शासिका के लेख में उसके पतिदेव एवं युवराज के ही नाम का उत्कीर्ण होना स्वाभाविक लगता है।[2]

पति के जीवन काल में पत्नी द्वारा प्रत्यक्ष शासन या प्रशासनिक उपलब्धि का कोई स्पष्ट उदाहरण हमें गुप्तकालीन रानियों का नहीं मिलता है, किंतु विधवा द्वारा अल्पवयस्क पुत्रों की सँरक्षिका के रूप में कुशल राज्य सँचालक होने का उदाहरण मिलता है. चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री और दक्षिण के वाकाटक नरेश रूद्रसेन द्वितीय की विधवा पत्नी प्रभावती गुप्ता ने पति की मृत्यु पर अपने अल्पवयस्क पुत्रों दिवाकर सेन तथा दामोदर सेन की ओर से राज्य का सफल सँचालन किया था. अतः रानी/पत्नी पति की अनुपस्थिति में अल्पवयस्क या गर्भस्थ पुत्रों की सँरक्षिका के रूप में राज्य सँचालन की अधिकारिणी मानी जाती थी. कवि कालिदास ने रघुवंशम् में राजा अग्निवर्ण की विधवा गर्भवती पर रानी को सर्वसम्मति से सिंहासन पर वर्णन किया है. गर्भवती महारानी का बूढे मँत्रियों की सम्मति के अनुसार राजकाज चलाने का उल्लेख है.[3]

गुप्तकाल में समकालीन कन्नड़ प्रदेश की स्त्रियाँ प्रान्तीय शासन और गाँवों में भी कार्य करती थीं. इसी प्रकार दक्षिण भारत में स्त्रियाँ प्रान्तीय शासक एवं गाँव की शासक होती थीं.[4]

ह्वेनसाँग के यात्रा विवरण के अनुसार जिस समय हूण

---

1. पांथरी, भगवतीप्रसाद, महान गुप्त राजवंश, 1963, पृष्ठ 188
2. इंडियन हिस्टॉरिकल क्वार्टली, 1946, जिल्द 22, पृष्ठ 286
   राय, उदयनारायण, राजवली पांडेय, स्मृतिग्रंथ, 1976, 176
3. रघुवंशम्, 19.55-57
4. द्विवेदी, सुधीशचर, भारतीय संस्कृति के पाँच अध्याय, 1965, पेज82

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सरदार मिहिर कुल हार खाकर बंदी बनाया गया उस समय गुप्त नरेश नरसिंह गुप्त बालादित्य की माता उससे {मिहिर कुल से} मिलने आईं थीं और उनकी आज्ञानुसार वह मुक्त भी कर दिया गया।[1] इस प्रकार पत्नी ही नहीं राजमाता का भी प्रशासन में उच्च पद था तथा राजमाता की आज्ञा महत्वपूर्ण मानी जाती थी. इसी प्रकार स्कंदगुप्त के भितरी प्रस्तर स्तंभ लेख[2] के अनुसार "स्कंदगुप्त" विजयश्री प्राप्त कर ली गई है" यह चिल्लाते हुए अश्रु पूरित नेत्रों वाली अपनी माता के पास आये जैसेकृष्ण शत्रुओं के वध के पश्चात् अपनी माता देवकी के पास. इस वर्णन से संकेत मिलता है कि माता का पद राजमाता के रूप में प्रतिष्ठित था. निश्चित ही माता का प्रशासन में योगदान रहा होगा तभी तो राजा {पुत्र स्कंदगुप्त} सर्वप्रथम माता ही के पास आये. राज माता के रूप में मातायें सार्वजनिक हित के कार्यों को भी सम्पन्न करवाती थीं. आदित्यसेन की माता महादेवी श्रीमती द्वारा देव लोक के घर के सदृश्य धार्मिक विद्यालय बनवाकर धार्मिक जनों को समर्पित करेन का उल्लेख आदित्यसेन के अफसद प्रस्तर प्रलेख[3] में है. इस प्रकार माताओं को राजमाता के रूप में न्यायिक एवं सार्वजनिक हित के कार्य करने हेतु अधिकार प्राप्तथे एवं राजमाता की आज्ञा का पालन करना भी राजा का नैतिक कर्तव्य था. <u>मालविकाग्निमित्रम्</u> में भी महारानी की आज्ञा से दासियों के कैद करने तथा उनकी आज्ञा के बिना उन्हें मुक्त नहीं करने का उल्लेख है.[4]

---

1. वाटर्स, <u>ह्वेनसांग</u>, भाग 1, पृष्ठ 288
   पांथरी, भगवतीप्रसाद, <u>महानगुप्त राजवंश</u>, 1963, पृष्ठ 324
2. फ्लीट, <u>भारतीय अभिलेख संग्रह</u>, भाग 3, संख्या 13.7
   समुद्रगुप्त का भितरी प्रस्तर स्तंभ लेख, पृष्ठ 70
3. फ्लीट, <u>भारतीय अभिलेखसंग्रह</u>, भाग 3, संख्या 42.28
   आदित्यसेन का अफसद प्रस्तर लेख, पृष्ठ 255
4. <u>मालविकाग्निमित्रम्</u>, अंक 4, पृष्ठ 316

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समुद्रगुप्त की पत्नी दत्तदेवी ने स्वभोग नगर एरण बसाया था तथा वहाँ एक प्रसिद्ध मँदिर का निर्माण करया था. आदित्यसेन के अफसद प्रस्तर लेख में[1] आदित्यसेन की प्रिय पत्नी रानी श्रीकोण देवी द्वारा उत्कृष्ट तपस्या के सम्पादन में, एक अद्भुत सरोवर खुदवाया गया था जिसका जल लोगों द्वारा रूचि पूर्वक पीया जाता है, ऐसा वर्णन है. पत्नियाँ रानी के रूप में लोकहितकारी कार्य करने की अधिकारिणी होती थी. राजा प्रजा के हित में जो कार्य करते थे उसी प्रकार के सार्वजनिक हित के कार्य रानियाँ भी करती थीं. अपनी प्रजा की भलाई के लिए कार्य करने वे किसी भी प्रकार पीछे न थी. चाहे वह धार्मिक स्थापत्य का कार्य हो अथवा प्रशासनिक कार्य. इसी प्रकार आदित्यसेन के मंदार पहाड़ी से प्राप्त शिलालेख में भी आदित्यसेन की प्रिय पत्नी परमभट्टारिका रानी, महादेवी श्री कोण देवी द्वारा सरोवर के प्रसिद्ध कार्य को सम्पन्न कराने का उल्लेख है.[2] इस प्रकार रानियों के प्रशासनिक अधिकार एवँ योगदान महत्वपूर्ण हैं.

सातवीं सदी की राजकुमारी विजय भट्टारिका का उदाहरण भी हमारे सामने हैं जो वातापी के चालुक्य वँश के विक्रमादित्य प्रथम के अन्तर्गत प्राँतीय शासक थी.[3]

रानियों की उच्च प्रशासनिक प्रतिष्ठा थी. इसका प्रमाण हमें अभिलेखों में वर्णित प्रत्येक गुप्तकालीन रानियों के लिए प्रयुक्त

---

1. फ्लीट, भारतीय अभिलेख सँग्रह, भाग 3, संख्या 42. 28 आदित्यसेन का अफसद प्रस्तर लेख, पृष्ठ 256
2. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3, संख्या 44 तथा 45 आदित्यसेन का मंदार पहाड़ी से प्राप्त शिलालेख, पृष्ठ 262
3. मजुमदार, रमेशचंद्र(संपादक), श्रेण्ययुग, 1984, पृष्ठ 636

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपाधियों से मिलता है. सोहानी के मत से किसी भी गुप्त शासक के अभिलेख में रानी का नामोल्लेख "देवी" शब्द विहीन नहीं हुआ है और इस प्रकार का राजप्रतिष्ठाच्युत प्रयोग किसी भी प्रशस्ति में अक्षम्य होगा।[1] रानियाँ सामान्य रूप से "महादेवी" कही जाती थीं, किंतु इसके साथ ही "राज्ञी", "भट्टारिका", एवँ "परमभट्टारिका" इत्यादि उपाधियों का प्रयोग गुप्तकालीन अभिलेखों में हुआ है.

"महादेवी" उपाधि का प्रयोग प्राय: सभी गुप्तकालीन अभिलेखों में है. जैसे-----महादेवी कुमारदेवी[2], महादेवी दत्तदेवी, महादेवी ध्रुवदेवी,[3] महादेवी कुमारदेवी, महादेवी जयस्वामिनी, महादेवी रामदेवी, महादेवी, अज्झित देवी, महादेवी मुरूण्डदेवी[4]

---

1. गुप्त, परमेश्वरी लाल, गुप्त साम्राज्य, 1970, पृष्ठ 8
   जर्नल ऑफ बिहार रिसर्च सोसायटी, पटना, जिल्द 51, पृष्ठ 50
2. फ्लीट, भारतीय अभिलेख सँग्रह, भाग 3, सँख्या 1. 1
   समुद्रगुप्त का इलाहाबाद मरणोपरांत लिखित प्रस्तर स्तंभ लेख पेज19
   चंद्रगुप्त द्वितीय का मथुरा प्रस्तर अभिलेख, पृष्ठ 33, संख्या 4. 3-क
3. फ्लीट, भारतीय अभिलेख सँग्रह, भाग 3, संख्या 10. 5
   कुमारगुप्त का बिल्सड़ प्रस्तर स्तंभ लेख, पृष्ठ 57
   समुद्रगुप्त का बिहारप्रस्तर स्तंभ अभिलेख, पृष्ठ 65, संख्या 12. 6ख
   स्कंदगुप्त का भितरी प्रस्तर स्तंभ लेख, संख्या 13. 7, पृष्ठ 68-69
4. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3, संख्या 26. 26
   महाराज जयनाथ का करीतलाई ताम्रपत्रांकित अभिलेख, पेज146-47
   महाराज जयनाथ का खोह ताम्रपत्रांकित अभिलेख, संख्या 27. 17 पृष्ठ 151.
   महाराज सर्वनाथ का खोह ताम्रपत्रांकित अभिलेख, संख्या 28. 18 पृष्ठ 157.
   महाराज शर्वनाथ का खोह ताम्रपत्र अभिलेख, संख्या 29. 19 क पृष्ठ 161.
   महाराज शर्वनाथ का खोह ताम्रपत्र अभिलेख, सँख्या 31. 20 पृष्ठ 167-68.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महादेवी श्रीमति[1], महादेवी कोण देवी[2], महादेवी श्रीमति श्रीमती देवी, महादेवी श्रीमति कोण देवी, महादेवी श्रीमति कमल देवी, महादेवी श्रीमति इज्जादेवी[3] श्रीमति महादेवी महादेवी यशोमती[4] इत्यादि का उल्लेख हमें गुप्तकालीन अभिलेखों में मिलता है.

"महादेवी" उपाधि प्रभुतासम्पन्न शासकों की पत्नियों के लिए प्रयुक्त होने वाली एक पारिभाषिक उपाधि जान पड़ती है. यद्यपि वर्तमान लेख के बाद के समयमें में इसका प्रयोग महाराजाओं की पत्नियों के लिए भी हुआ है, उदाहरणार्थ, जयनाथ के कारी तलाई दान लेख में[5] प्रभुतासम्पन्न शासकों की पत्नियों के लिए इसका प्रयोग हम प्रस्तुत पुस्तक में परमभट्टारिका तथा राज्ञी के साथ हुआ पाते हैं. उदाहरणस्वरूप, आदित्सेन के मँदार पर्वताभिलेखों तथा जीवितगुप्त द्वितीय के देव बरणार्क अभिलेख में.[6]

"भट्टारिका" उपाधि महाराजाओं की पत्नियों के

---

1. फ्लीट, भारतीय अभिलेख सँग्रह, भाग 3, संख्या 42. 28
   आदित्यसेन का अफसद प्रस्तर लेख, पृष्ठ 255
2. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3, संख्या 44-45
   आदित्यसेन का मंदार पहाड़ी से प्राप्त शिलालेख, पृष्ठ 262
3. फ्लीट, भारतीय अभिलेख सँग्रह, भाग 3, संख्या 47. 30-क
   जीवितगुप्त द्वितीय का देववरणार्क अभिलेख, पृष्ठ 273
4. फ्लीट, भारतीय अभिलेख सँग्रह, भाग 3, संख्या 52-32-क
   हर्षवर्धन का सोनपत ताम्रमुहर लेख, पृष्ठ 291
5. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3, संख्या 26. 16
   जयनाथ का कारीतलाई दानलेख, पृष्ठ 146-47
6. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3, पाद टिप्पणी क्रमाँक 1, पृष्ठ 19 तथा 262, संख्या44-45, पाद टिप्पणी क्रमाँक 4 एवं 5. जीवित गुप्त द्वितीय का देववरणार्क अभिलेख, संख्या 46. 29-ख, पृष्ठ 268-69, पाद टिप्पणी क्रमाँक 4, पृष्ठ 268

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नामों के अंत में "भट्टारक" के स्त्रीलिंग सूचक के रूप में प्रयोग देखते हैं।[1] जैसे शर्ववर्मन की असीरगढ़ ताम्र मुहर लेख[2] तथा महा सामन्त तथा महाराज समुद्रसेन के निर्मण्ड ताम्रपत्र लेख[3] में भट्टारिका उपाधि का प्रयोग किया गया है. भट्टारिका शब्दशः "वह जो पूजा अथवा सम्मान की अधिकारिणी है". भट्टारक की यह स्त्रीलिंग वाची उपाधि यहाँ एक महाराजा की पत्नी की पारिभाषिक उपाधि के रूप में प्रयुक्त हुआ है किंतु इसी लेख की पंक्ति क्रमांक 7 में इसका प्रयोग एक महाराजाधिराज की पत्नी की पारिभाषिक उपाधि के रूप में हुआ है.[4]

परमभट्टारिका, शब्दशः वह जो सम्मान तथा पूजा की सर्वोच्च अधिकारिणी है, परमभट्टारक की स्त्रीलिंग में प्रयुक्त उपाधि है. "परमभट्टारिका" उपाधि प्रभुतासम्पन्न शासकों की पत्नियों के लिए प्रयुक्त होने वाली उपाधियों में एक थी.[5] आदित्य सेन के मंदार पहाड़ी से प्राप्त शिलालेख,[6] तथा जीवित गुप्त द्वितीय के देववरणा के अभिलेख[7] में परमभट्टारिका उपाधि का प्रयोग मिलता है.

1. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3, पाद टिप्पणी क्रमांक 5, पृष्ठ 20-22.
2. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3, 47. 30-क शर्ववर्मन का असीरगढ़ ताम्रमुहर लेख, पृष्ठ 273-74
3. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3, संख्या 80. 44 महासामन्त तथा महाराज समुद्रसेन का निर्मण्ड ताम्रपत्र लेख, पृष्ठ 373-74
4. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3, पाद टिप्पणी क्रमांक 5, पृष्ठ 273
5. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3, पाद टिप्पणी क्र. 4, पृष्ठ 262.
6. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3, संख्या 44 तथा 45 आदित्यसेन का मंदार पहाड़ी से प्राप्त शिलालेख, पृष्ठ 262
7. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3, संख्या 46. 29-ख जीवित गुप्त द्वितीय का देववरणार्क अभिलेख, पृष्ठ 268-69

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसी प्रकार "देवी" महाराजाओं की पत्नियों के लिए प्रयुक्त एक अन्य पारिभाषिक उपाधि है।[1] शर्ववर्मन का असीरगढ़ ताम्र मुहर लेख[2] हर्षवर्धन का सोनपत ताम्र मुहर लेख[3] देवी उपाधि का, एक अन्य उपाधि "परमदेवी" का उल्लेख रानियों के लिए होता था. परमदेवी, शब्दशः "सर्वश्रेष्ठदेवी", महाराजों की पत्नियों की राजकीय उपाधि थी. किन्तु अधिक प्रचलित उपाधि "महादेवी" ही थी।[4] जिसका विस्तृत वर्णन हम पहले कर चुके हैं. महासामन्त तथा महाराज समुद्रसेन के निर्मण्ड ताम्रपत्र लेख[5] में रानियों के लिए "परमदेवी" उपाधि प्रयुक्त की गई है.

कवि कालिदास ने अपने ग्रंथों में रानियों के लिए "देवी"[6] "भट्टिनी"[7] तथा "भर्तृदारिका"[8] इत्यादि उपाधियों का प्रयोग अधिकता से किया है.

---

1. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3, पाद टिप्पणी क्र. 6, पृष्ठ 273.
2. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3, संख्या 47. 30-क शर्ववर्मन का असीरगढ़ ताम्रमुहर लेख, पृष्ठ 273-74
3. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3, संख्या 52. 32-क हर्षवर्धन का सोनपत ताम्रमुहर लेख, पृष्ठ 29।
4. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3, पाद टिप्पणी क्र. 7, पृष्ठ 373.
5. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3, संख्या 80. 44 महासामन्त तथा महाराज समुद्रसेन का निर्मण्ड ताम्रपत्र लेख, पृष्ठ 373.
6. मालविकाग्निमित्रम्, अंक 5, पृष्ठ 356
7. मालविकाग्निमित्रम्, अंक 5, पृष्ठ 357
8. मालविकाग्निमित्रम्, अंक 5, पृष्ठ 346

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अर्थात् हमें गुप्तकाल में प्रचलित उपाधियाँ "देवी", "महादेवी", "परमदेवी", "राज्ञी", "भट्टारिका" एवँ "परम-भट्टारिका" इत्यादि का प्रयोग मिलता है. निश्चित ही राजा के समकक्ष ही उपाधियों का प्रयोग रानियों के लिए किया जाता था जो रानियों के प्रशासनिक महत्व एवँ योगदान को प्रदर्शित करता है.

उपरोक्त विस्तृत वर्णन के आधार पर कहा जा सकता है कि राजकुमारियों और रानियों में प्रशासन चलाने की योग्यता अवश्य होती थी और सँभवतः इसके लिए उन्हें राजनीतिक शिक्षा अवश्य दी जाती होगी.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय : 9

गुप्तकालीन नारी शिक्षा का स्वरूप.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वैदिक काल में पुरुषों के ही समकक्ष स्त्रियाँ समानरूप से शिक्षा की अधिकारिणी थीं. विद्या प्राप्ति हेतु वे ब्रम्हचर्य का व्रत पालन करती थीं. उनका विधिवत् उपनयन सँस्कार संपादित होता था. अपाला, घोषा, लोपामुद्रा[1] इत्यादि _ऋग्वेद_ की मंत्रदृष्टा विदुषी नारियों का उल्लेख _ऋग्वेद_ में मिलता है. किंतु परवर्तीकाल में नारी शिक्षा का महत्व होते हुए भी नारी वैदिक शिक्षा से वंचित कर दी गई. _मनुस्मृति_[2] ने नारियों के

---

1. _ऋग्वेद_.
2. _मनुस्मृति_, 2.66

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"उपनयन सँस्कार" की बात करते हुए उन्हें वैदिक मँत्रों के उच्चारण का निषेध कर दिया तथा आदेश दिया कि जिस यज्ञ में स्त्री का सहयोग हो, उस उत्सव में ब्राम्हण को भोजन नहीं करना चाहिए।[1] इस कथन से स्पष्ट होता है कि ईस्वी सन् के अनन्तर कई शताब्दियों तक स्त्रियों को वैदिक शिक्षा नहीं दी जाती थी, किंतु अन्य प्रकार के विद्याभ्यास से स्त्रियाँ वंचित नहीं रहती थीं. बौद्ध धर्मग्रँथ ललित विस्तर से ज्ञात होता है कि स्त्रियों के पढ़ने लिखने का क्रम लगातार बना हुआ था, वे शास्त्रों का अध्ययन तथा काव्यों की रचना करती थीं.[2]

गुप्तकाल में स्त्रियाँ "उपनयन सँस्कार" से वंचित कर दी गई थीं. वैदिक साहित्य की अपेक्षा लौलिक साहित्य ही उनकी शिक्षा का विषय रह गया था किंतु विद्याभ्यास के पूर्व उनके लिए कुछ प्रारँभिक सँस्कार आवश्यक रूप से करने का विधान नारद स्मृति[3] तथा याज्ञवल्क्य स्मृति में दिया गया है.[4]

प्राचीन भारत में स्त्री शिक्षा का उद्देश्य विदुषी तथा आदर्श पत्नी बनाना था. गृहस्वामिनी के रूप में, गृहस्थी के सफल संचालन के लिए पत्र लेखन तथा आय व्यय का हिसाब रखने के लिए स्त्री का शिक्षित होना अनिवार्य था. स्मृतिकार मनु ने पुरूषों को आदेश दिया है कि----"पुरूषों को चाहिए कि वे अर्थ के सँग्रह तथा उसके व्यय के हिसाब रखने में स्त्रियों को ही नियुक्त करें?[5] वात्स्यायन के कामसूत्र के अनुसार "स्त्रियाँ

---

1. मनुस्मृति, 4. 205
2. उपाध्याय, वासुदेव, गुप्त साम्राज्य का इतिहास, भाग 2, पृष्ठ 189.
3. नारद स्मृति, 13. 33
4. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1. 13

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ही वर्ष भर का कोश तैयार करती थीं और आय के अनुसार व्यय की निर्धारित करती थीं।[1] वात्स्यायन ने अच्छी पत्नी की शिक्षा के विषय में अपने विचार व्यक्त किए हैं कि वह घर का वार्षिक बजट बना सके. कामसूत्र में शास्त्र ज्ञान से कुशाग्र बुद्धि हुई राजकुमारियों तथा सामन्त कन्याओं का उल्लेख मिलता है. शास्त्रीय शिक्षा के अतिरिक्त उन्हें अन्य प्रकार की विद्याओं का भी शिक्षा दी जाती थी. वात्स्यायन ने 64 अँग विद्याओं की लम्बी सूची दी है, जिनकी शिक्षा स्त्रियों को अनिवार्य थी. इसमें पहेली ज्ञान, मँत्रपाठ, छन्दपूर्ति, शब्द छन्द, निघण्टु का ज्ञान, इत्यादि सम्मिलित था. उनके अनुसार गुप्तकालीन स्त्री समाज को, साधारण शिक्षा के अतिरिक्त शिल्प शास्त्र की भी शिक्षा दी जाती थी. उच्चकुल की स्त्रियों को गान और नृत्य कला, चित्रकला तथा ग्रह को सुसज्जित करने की भी शिक्षा दी जाती थी.[2] स्त्रियों की शिक्षा के लिए शिक्षा सँस्थायें होती थीं जिनके सहसिक्षा होती थी. मालविकाग्निमित्रम्[3] नाटक से पता चलता है कि मालविका आचार्यगणदास से नृत्य तथा संगीत सीखती थी तथा अग्निमित्र को दो कला निपुण युवतियाँ उपहार देनेक का वर्णन भी मिलता है. रघुवंशम् में इँदुमति की मृत्यु पर अज के विलाप का हृदयग्राही वर्णन है, अज ने अपनी पत्नी को गृहिणी, सचिव के अतिरिक्त कलामर्मज्ञ भी कहा है.[4]

गुप्तकाल में प्रायः सभी स्त्रियाँ शिक्षित होती थीं. मृच्छकटिकम् में भी कई शिक्षित स्त्रियों का वर्णन है. स्त्रियों

---

1. कामसूत्र, 1.3.32
2. कामसूत्र, 1.3.16-24
3. मालविकाग्निमित्रम्, अंक 2, पृष्ठ282, अँक 3, पृष्ठ 29।
4. रघुवंशम्, 8.67

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्वारा अपने पति को पत्र भेजने का वर्णन कामसूत्र में है।[1] पति की अनुपस्थिति में बेचारी निर्धन स्त्रियाँ अध्यापन कार्य करके अपनी जीविका निर्वाह करती थीं।[2] यक्ष पत्नी द्वारा पति के नाम संयोजक अक्षरों में पद्यमय गीतों के निर्माण का वर्णन मेघदूतम् में है. इसी प्रकार अभिज्ञानशाकुन्तलम् में शकुन्तला द्वारा कमल पत्र पर प्रेमपत्र लेखन का वर्णन है.

गुप्तकाल में साहित्यक प्रमाणों से स्पष्ट है कि उच्च परिवारों की तथा आश्रमों में रहने वाली कन्यायें प्राचीन इतिहास तथा पौराणिक कथायें पढ़ती थीं, तथा इतनी शिक्षित थीं कि वे कवितायें समझ सकती थीं और काव्य रचना कर सकती थीं. शीला भट्टारिका जैसी कवियित्री एवँ लेखिका गुप्त काल की ही देन है. गाथाशप्तशती में सात कवियित्रियों----रेवा, रोहा, माधवी, अनुलक्ष्मी, पहई, वद्धवई तथा शशिप्रभा का उनकी कविताओं सहित उल्लेख है. गुप्तकालीन नाटक कौमुदी महोत्सव की नाटककार वज्जिका ﴾किशोरिका﴿ थी।[3] अमरकोष में "उपाध्याया" "उपाध्यायी" तथा "आचार्या" शब्दों का उल्लेख है।[4] जो क्रमशः महिला गुरू तथा वैदिक मँत्रों की शिक्षिका के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं. अतः गुप्तकाल में स्त्रियाँ शिक्षिका का काम भी करती थीं.

गुप्तकालीन राजकुल की कन्याओं को साधारण शिक्षा के साथ साथ प्रशासकीय एवँ सैनिक शिक्षा भी अनिवार्य थी. आवश्यकता

---

1. कामसूत्र, 5.4.51-52
2. चकलदार, सोशल लाइफ इन एन्शेंट इँडिया, पृष्ठ 180-81
3. एनाल्स ऑफ दी भंडारकर ओरियण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पृष्ठ 391, पूरा 20-21, भाग 2, जुलाई 30-31, भाग 12
4. अमरकोष, 2.6.14

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पड़ने पर वे अपनी इस शिक्षा का लाभ उठाती थीं. गुप्तकाल में नारी शिक्षा का विकास चरमसीमा तक हो चुका था. स्त्रियाँ परम विदुषी तथा समस्त शास्त्रों की ज्ञाता होती थीं. अत: वे राज्य का सफल संचालन भी करती थीं. अनेक स्त्री शासिकाओं का उल्लेख हमें मिलता है. वाकाटक नरेश रूद्रसेन द्वितीय की पत्नी तथा चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री प्रभावती गुप्ता उच्च श्रेणी की शिक्षिता तथा विदुषी नारी थी जिसके पति की मृत्यु के उपराँत अपने अल्पवयस्क पुत्रों के कारण राज्य का सफल सँचालन किया था![1] वसाढ़ से प्राप्त ध्रुव स्वामिनी की मुहर से पता चलता है कि वह भी एक शिक्षित एवँ सफल शासिका रही होगी.[2] आदित्यसेन के अफसद प्रस्तर लेख[3] से प्रमाणित होता है कि आदित्यसेन की माता और पत्नी शिक्षित एवँ सार्वजनिक हित के कार्यों की आवश्यकता एवँ महत्व को समझने वाली कुशल नारियाँ थीं. शिक्षित नारियाँ ही लोकहितकारी कार्यों की महत्ता को ध्यान मे रखकर कार्य कर सकती हैं. गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त तथा कुमारगुप्त प्रथम के अश्वमेध प्रकार सिक्के तथा कुमार गुप्त प्रथम, चन्द्रगुप्त प्रथम तथा चन्द्रगुप्त द्वितीय के राजा रानी प्रकार सिक्कों पर राजमहिषी के चित्र अँकन से स्पष्ट है कि शिक्षित नारियाँ ही अश्वमेध यज्ञ तथा प्रशासन में भाग लेती थीं.[4] ह्वेनसांग के यात्रा विवरण से स्पष्ट है कि हूण सरदार मिहिरकुल के बँदी बनने पर गुप्त नरेश बालादित्य की माता उससे मिलने गई तथा उसकी {माता} आज्ञानुसार वह मुक्त भी कर दिया गया.[5] निश्चित ही गुप्त नरेश बाला

---

1. एपीग्राफिया इण्डिका, जिल्द 15, पृष्ठ 41
2. गुप्त, परमेश्वरी लाल, गुप्त साम्राज्य, 1970, पृष्ठ 53
3. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3, संख्या 42. 28
   आदित्यसेन का अफसद प्रस्तर लेख, पृष्ठ 255-56
4. अल्तेकर, गुप्तकालीन मुद्रायें,
5. वाटर, ह्वेनसांग, भाग 1, पृष्ठ 288

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दित्य की माता प्रशासनिक नीतियों की ज्ञाता थी. मात्र शिक्षित ही नहीं, कूटनीति को समझने वाली विदुषी नारी थी.

राजकुल की स्त्रियों को प्रशासनिक शिक्षा के साथ ही सैनिक शिक्षा भी दी जाती थी. अहिच्छत्रा से प्राप्त विविध आयुधालंकरों से सुसज्जित स्त्री सिर (फलक 10) तथा यहीं से प्राप्त गुप्तकालीन धनुर्धारिणी स्त्री की रेखानुकृति (फलक 9) से स्पष्ट है कि गुप्तकाल में स्त्रियों को धनुर्विद्या की शिक्षा दी जाती थी. वे युद्ध में उपयोग में लाये जाने वाले आयुधों से पूर्णरूपेण परिचित होती थीं तथा युद्धकला में निष्णात होती थीं. प्राचीन काल में राजा, रानियों की महिला अँग रक्षिकायें भी होती थीं जो धनुर्विद्या एवँ तलवार चलाने में प्रवीण होती थीं. ये महिला अँगरक्षिकायें "प्रतिहार रक्षी"[1], "आन्त्यरक्ष्या"[2], या "दौवारिकी"[3] कहलाती थीं.

अहिच्छत्रा से प्राप्त गुप्तकालीन मेषवाहिनी स्त्री (फलक 8 के रेखाँकन से स्पष्ट होता है कि स्त्रियाँ विभिन्न जानवरों की सवारी भी करती थीं. निश्चित ही जानवरों की सवारी की शिक्षा, शिक्षा के अँतर्गत ही दी जाती थी. अजन्ता की 17 वीं गुफा का तीसरा चित्र हाथियों वाले जुलूस का है, जिसमें हाथियों पर सवार स्त्रियाँ चित्रित हैं.[4] . इसी प्रकार प्रसिद्ध गुप्तकालीन बाघ की 4-5 वीं गुफा के 6 वें दृश्य में भी हाथी पर सवार स्त्रियों के चित्र हैं.[5] .

1. रघुवंशम्, 6.20
2. रघुवंशम्, 6.45
3. रघुवंशम्, 6.59
4. उपाध्याय, वासुदेव, गुप्त साम्राज्य का इतिहास, भाग 2, पेज 309
5. उपाध्याय, वासुदेव, गुप्त साम्राज्य का इतिहास, भाग2, पेज 315 बाघ केव्ज, दृश्य 6

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

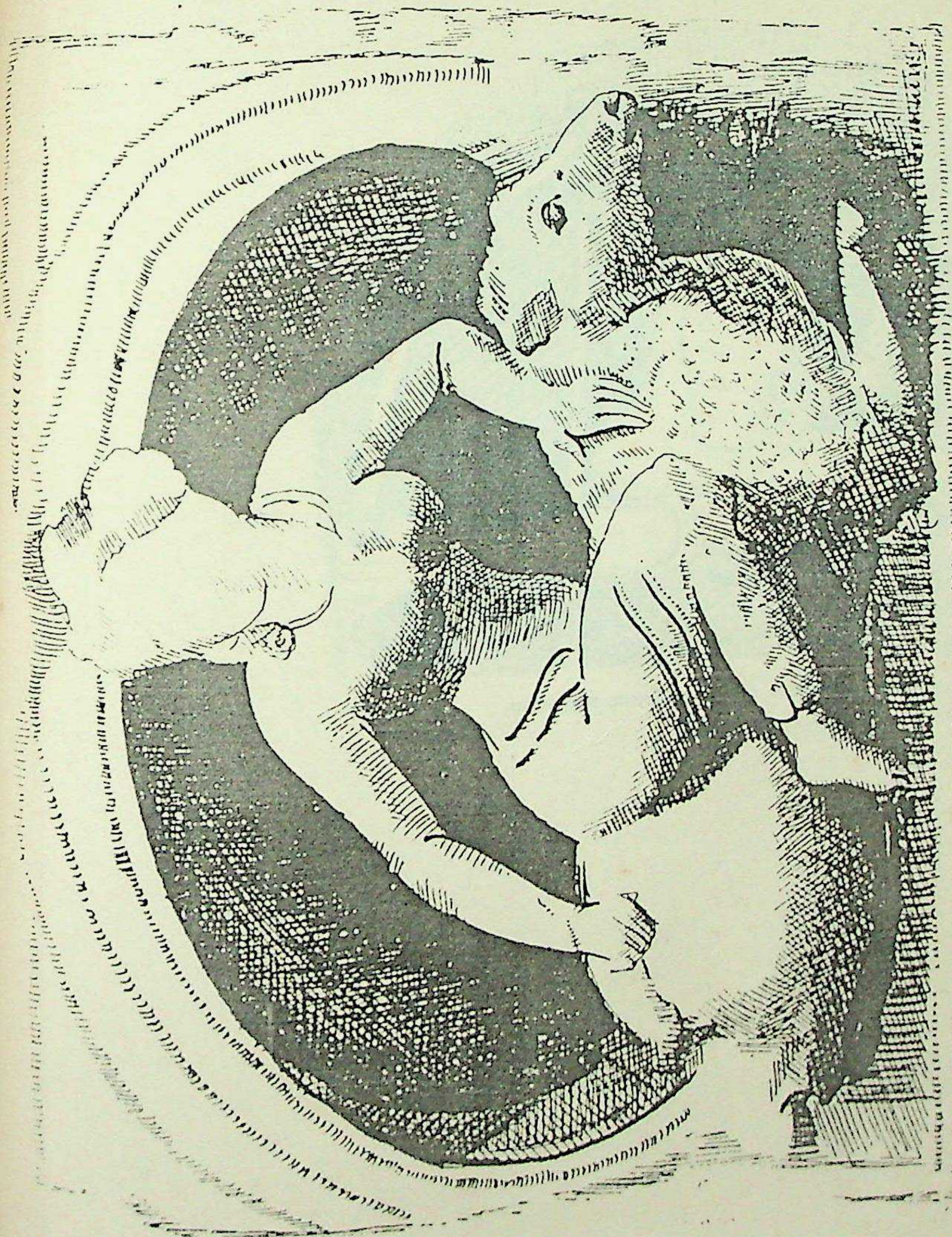

मेषवाहिनी स्त्री; ग्रहिच्छत्रा में; गुप्तकाल
(मथुरा संग्रहालय)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

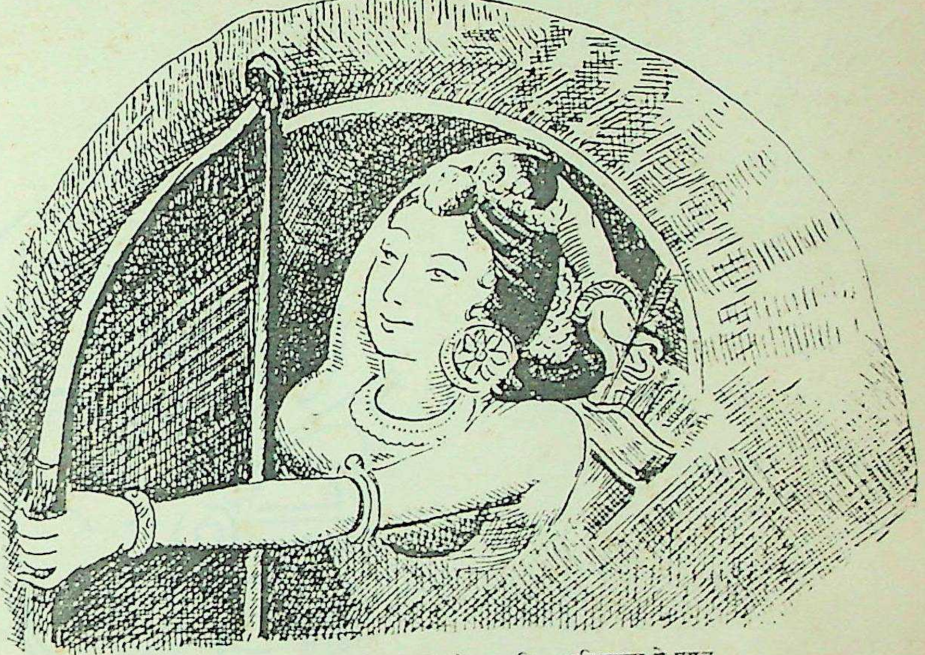

गुप्तकालीन धनुर्धारिणी स्त्री की रेखानुकृति; अहिच्छत्रा से प्राप्त
(श्री जिनेश्वर दास-संग्रह)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क--विविध आयुधालंकरणों से सुसज्जित स्त्री-सिर; गुप्तकाल: अहिच्छत्रा से प्राप्त मृण्मूर्ति का रेखांकन; (राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अतः गुप्तकाल में बाल विवाह के प्रचलन के बाद भी स्त्री शिक्षा उन्नत अवस्था में थी, उसका व्यापक प्रचार था. नारियों को साहित्यिक एवँ साँस्कृतिक शिक्षा दी जाती थी. गुप्तकालीन नारी शिक्षा में गृहकार्य, घर का वजट से लेकर, प्रशासन, सँगीत, नृत्य, गायन वादन तथा विभिन्न शास्त्रों की शिक्षा दी जाती थी. साथ ही सैनिक शिक्षा जैसे घुड़सवारी, हाथी की सवारी, धनुर्विद्या एवँ विभिन्न प्रकार के आयुधों की शिक्षा दी जाती थी. इस प्रकार गुप्तकालीन नारी शिक्षा नारियों के सर्वांगीण एवँ चर्तुमुखी विकास के लिए थी. जिससे समय आने पर वे अपनी शिक्षा का उपयोग भी करती थीं.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय : 10

गुप्तकालीन समाज में आमोद प्रमोद एवं सौंदर्य प्रसाधन.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सौंदर्य प्रसाधन:

गुप्तकालीन नारियाँ वस्त्राभूषणों से अलँकृत करने के अतिरिक्त, अपने शरीर का विविध प्रकार के सौंदर्य प्रसाधनों से श्रृंगार करती थीं. निश्चित ही सौंदर्य प्रसाधनों का प्रचार राज कुल अथवा सम्पन्न वर्ग में अधिक होगा, किंतु सामान्य वर्ग में भी इसका प्रचलन थोड़ा बहुत होगा.

सौंदर्य प्रसाधनों में केश प्रसाधन या केश रचना का प्रमुख स्थान है. स्त्रियाँ अपने बालों के श्रृंगार की ओर विशेष ध्यान देती थीं. गुप्तकाल में स्त्रियों के केश लम्बे होते थे. लम्बे, घने,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

घुँघराले एवँ काले बाल सौंदर्य की दृष्टि से सर्वोत्तम माने जाते थे.[1] स्त्रियों के केशों के विषय में हमें कालिदास के साहित्य मूर्तिकला एवँ चित्रकला में पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं. स्त्रियाँ केशों में सुगँधित तेल डालकर वेणी बनाती थीं, अपनी इच्छानुसार जूड़ा भी बनाती थीं.[2] प्राय: एक ही वेणी बनाने का अधिक उल्लेख मिलता है किंतु एक से अधिक वेणियाँ भी की जाती होंगी.[3]

स्त्रियाँ अपने बालों को घुँघराला बनाने के लिए भिन्न भिन्न प्रकार के लेप एवँ पिष्ट का प्रयोग करती थीं. <u>अमरकोष</u>[4] में अलक का स्वरूप "अलकारचूर्णकुन्तला:" बताया गया है. इसका अर्थ है अलकावलि बनाने में चूर्ण का प्रयोग किया जाता था. अर्थात् कुंकुम, कपूर इत्यादि के अवलेप से बालों को घुँघराला बनाया जाता था. अत: छल्लेदार या घुँघरदार बाल उस समय की विशेष प्रकार की केश रचना थी.

श्री वासुदेवशरण अग्रवाल ने इन घुँघराले बालों के बनाने के कई प्रकार वर्णित किए हैं:

1. इसमें सीमन्त या माँग के दोनों ओर केवल वलीभूत अलकों की समानान्तर पंक्तियाँ सजी रहती हैं. भारत कला भवन में इस केश विन्यास के कई नमूने हैं.
2. सीमन्त या केशवीथी को एक आभूषण से सज्जित किया जाता

---

1. ऋतुसँहार, 2. 18, 4. 16
   रघुवँशम्, 6. 81
   मालविकाग्निमित्रम्, 3. 22
2. रघुवँशम्, 14. 12 पूर्वमेघ, 18. 31
   उत्तरमेघ, 41
3. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अंक 7
   उत्तर मेघदूतम्, 30, 34
4. अमरकोष,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है. इसका वर्तमान रूप सिरबोर कहा जा सकता है. इस आभूषण के लिए सीमन्त स्थान कुछ विस्तृत दिखाया जाता है और थोड़ा हटा कर घूँघट प्रारंभ किया जाता है. बाणभट्ट ने सिरबोर के लिए हर्षचरित में "चटुला तिलक" शब्द का प्रयोग किया है.

3. घूँघर की पहली पँक्ति ललाट के ऊपर अर्द्धवृत की तरह घूमती हुई सिर के प्राँत भाग तक जाती है. यह देखने में खुली छतरी सी लगती है.

4. वासुदेव जी इस प्रकार को पटियादार घूँघट कहते हैं. माँग के दोनों ओर पहले पटिया मिलती है, तत्पश्चात् घूँघट शुरू होकर दोनों ओर फैल जाते हैं.[1]

केशों को घुँघराले करने के अतिरिक्त केश रचना के भी अन्य प्रकार होते थे. स्त्रियाँ एक या एक से अधिक वेणियाँ बनाती थीं. इसके अतिरिक्त अलक[2], लम्बालक[3], बर्हभार[4], चूडापाश, क्षौद्रपटल[5], मधुपटल, मौलि[6] आदि अनेक प्रकार के केश विन्यास का उल्लेख साहित्य एवँ मृण्मूर्तियों में देखने को मिलता है. इनका विस्तृत वर्णन निम्न प्रकार है:

. <u>बर्हभार-</u> माँग के दोनों ओर कनपटी तक लहराई हुई शुद्ध पटिया मिलती है. वे ही छोर पर ऊपर को मुड़ कर घूम

---

1. अग्रवाल, वासुदेवशरण, <u>कला और संस्कृति</u>, पृष्ठ 246
2. <u>रघुवँशम्</u>, 4.54
3. <u>मेघदूतम्</u>, 2.24
4. <u>मेघदूतम्</u>, 2.46
5. <u>रघुवँशम्</u>, 4.63
6. <u>रघुवँशम्</u>, 17.23

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्त्रीकेशों की कलाकृतियाँ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाती है. देखने में यह मोर की फहराती पूँछ सी मालूम होती है. कालिदास ने स्त्रीकेशों को मोरों का बर्हभार कहा है, वहाँ उनका आशय इसी प्रकार के केशविन्यास से है.

• क्षौद्रपटल- इसमें माँग के दोनों ओर बाल शहद के छत्ते की तरह झंझरीदार से जान पड़ते हैं. संस्कृत में इस रचना को क्षौद्रपटल या मधु पटल विन्यास कहा जा सकता है.

• मौलि- इसमें बालों का जूड़ा बनाकर माला से बाँध लिया जाता है. मौलि के भीतर भी फूलों की माला गूँथी जाती थी. कालिदास ने इसका उल्लेख रघुवंशम् में किया है.

• चूडापाश- आधुनिक "जूड़ा" शब्द इसी "चूड़ा" शब्द का रूपान्तर है. इसमें माँग के दोनों ओर बालों की पटिया बनी रहती है. वे ही सिर के पीछे जूड़े के रूप में बाँध दी जाती हैं.

इसके अतिरिक्त वेणी बन्धन[1], केश बन्धन[2], अलक संयमन[3], केशपाश[4], आदि से संकेत मिलता है कि स्त्रियाँ जूड़ा बनाती थीं. साहित्य में वर्णित इन केश विन्यास के प्रकारों को हम गुप्तकालीन मूर्तियों एवँ चित्रों में देख सकते हैं. फलक 11 में कालिदास द्वारा वर्णित स्त्रीकेशों की कलाकृतियाँ स्पष्ट हैं.

---

1. रघुवंशम्, 10.47
2. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अँक 6, पृष्ठ 115
3. विक्रमोर्वशीयम्, 3.6
4. ऋतु संहार, 4.15, 5.12
   उत्तरमेघ, 2
   कुमार संभवम्, 7.57.6

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्त्रियाँ माँग निकालती थीं।[1] तथा उसे फूलों से सजाती थीं।[2] अरूणचूर्ण का प्रयोग माँग भरने के लिए करती थीं।[3] अधिकाँशत: जूड़े का अलँकरण पुष्पों से करती थीं।[4] अथवा कभी कभी वैसे ही केशों को नाना प्रकार के पुष्पों से सुँदर बनाती थीं।[5] कभी कभी मुक्ताजाल से भी अलकों की सुँदरता बढ़ाया करती थीं।[6]

केवल पुष्प, रत्न एवँ मुक्ताओं से ही केश सौंदर्य नहीं बढ़ाती थीं, अपितु विभिन्न प्रकार के सुगँधित चूर्णों से भी केशों को सुरभित करती थीं। नहाने के बाद केशों को कालागुरू,[7] लोध्र[8] एवँ धूप[9] के धुँए से सुगँधित करती थीं। कदाचित् कस्तूरी चूर्ण का भी प्रयोग बालों को सुगँधित करने के लिए किया जाता था।[10]

---

1. उत्तरमेघ, 2
2. उत्तरमेघ, 2
3. रघुवँशम्, 16.66
4. रघुवँशम्, 7.6
5. कुमारसँभवम्, 5.12, 7.14, 8.72
6. विक्रमोर्वशीयम्, 4.22, 46, 61
   ऋतुसँहार, 2.21, 22, 25, 3.19, 5.8, 6.3, 6, 33.
   उत्तरमेघ, 2,
   रघुवँशम्, 9.67
6. पूर्वमेघ, 67,
   रघुवँशम्, 17.23
7. ऋतुसँहार, 4.5, 5.12
   पूर्वमेघ, 36
8. रघुवँशम्, 2.29
   कुमारसँभवम्, 7.9
9. कुमारसँभवम्, 7.14
   ऋतुसँहार, 5.12
   रघुवँशम्, 16.50, 17.22
10. रघुवँशम्, 4.54

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

1

गुप्तकालीन स्त्री का जूड़ा

2.

घुंघराले बालों वाला सिर: अहिच्छत्रा से; गुप्तकाल
(राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली)

3

आम्रमंजरी तथा पुष्पों से ग्रथित केश-विन्यास सहित
स्त्री-मस्तक; अहिच्छत्रा से, गुप्तकाल
(राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भ्रमरक ढंग के केश-विन्यास सहित स्त्री की प्रावक्ष मूर्ति;
अहिच्छत्रा से; गुप्तकाल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

1

अत्यन्त कलापूर्ण केश-श्रृंगार सहित पार्वती
का सिर; गुप्तकाल
(राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली)

2.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

1.

स्त्री का सिर; अहिच्छत्रा से; गुप्तकाल
(मथुरा संग्रहालय)

2.

अलंकृत शिरोभूषा सहित स्त्री सिर;
अहिच्छत्रा से; गुप्तकाल
(राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली)

3

गुप्तकालीन शिराच्छादन:
अहिच्छत्रा से
(राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अलक चूर्ण का भी उल्लेख कुमारसंभवम्[1] में आया है अत: स्पष्ट है कि केश रचना का अत्यधिक महत्व था.[2] जिसके लिए वे विभिन्न प्रकार के उपकरणों का प्रयोग करती थीं. फलक 11 में कालिदास द्वारा वर्णित फूलों और रत्नों से सज्जित केश रचना का रेखाचित्र.

बाघ की गुफाओं में स्त्री गायिकाओं के सिर के पीछे ग्रँथि युक्त केश है जो श्वेत पुष्पों की मालाओं से गूँथे गये तथा विभूषित हैं[3] बालों के सुंदर जूड़े पर सुगँधित सामग्री और मोती की लड़ें या कोई रत्न जटित आभूषण धारण किया जाता था. अजंता की गुफा में एक स्त्री के केश विन्यास और श्रृंगार करने का एक बहुत ही सुंदर चित्र है[4] अहिच्छत्रा से प्राप्त गुप्तकालीन मृण्मूर्तियों में घुँघराले बालों वाला सिर (फलक 12.2) आम्र मंजरी तथा पुष्पों से ग्रथित केशविन्यास सहित स्त्री मस्तक (फलक 12.3) तथा अत्यन्त कलापूर्ण केश श्रृंगार सहित पार्वती का सिर (फलक 14.1) केश रचना की दृष्टि से महत्वपूर्ण है. इसी प्रकार भ्रमरक ढँग के केशविन्यास सहित स्त्री की आवक्ष मूर्ति (फलक 13) एवँ अलँकृत शिरोभूषा सहित स्त्री सिर (फलक 15.2,3) तथा स्त्री का सिर (फलक 15.1) से गुप्तकालीन केशसज्जा का पता चलता है. ये सभी मृण्मूर्तियाँ अहिच्छत्रा से प्राप्त हुई हैं.

---

1. कुमारसंभवम्, 8. 19
2. ऋतु संहार, 4. 16
3. बाघ केव्स, दृश्य 4, प्लेट डी + ई, पृष्ठ 50
4. स्मिथ, हिस्ट्री ऑफ फाइन आर्ट्स इन इण्डिया, प्लेट 56

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अजंता की सत्रहवीं गुफ़ा में चित्रांकित शृंगार-सज्जा का एक सुन्दर दृश्य

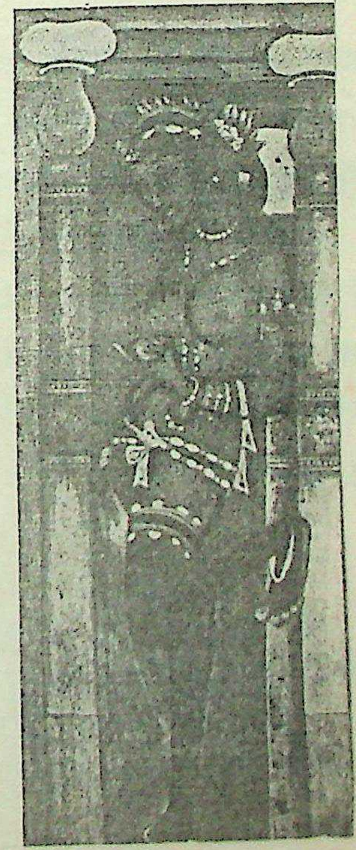

अजंता की दूसरी गुफ़ा का एक भित्ति-चित्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुमारगुप्त प्रथम की स्वर्ण मुद्राओं में अश्वारोही प्रकार[1], गजारूढ़ सिंहनिहन्ता प्रकार[2], तथा अप्रतिघत प्रकार[3] सिक्कों में देवी लक्ष्मी अथवा स्त्री के सिर के पीछे की केश ग्रँथि का अँकन है.

अजँता में एक जगह जमीन पर पीठ पीछे बैठी एक मध्य वर्ग की स्त्री एक नीचे काले और बिना बाँह की चोली पहने है, जिसके सिर पर चोली की जगह बालों का जूड़ा बना है.[4] बाघ के एक भितिचित्र में एक नर्तकी मुकुट पहने है तथा उसका जूड़ा एक सफेद रूमाल से ढँका है.[5]

सौंदर्य प्रसाधन:

गुप्तकाल में स्त्रियाँ सौंदर्य प्रसाधनों का अधिकता से प्रयोग करती थीं. विश्ववर्मन के गँगधार प्रस्तर लेख[6] से स्पष्ट होता है कि सौंदर्य प्रसाधनों का इतना अधिक महत्व था कि श्रृँगार प्रसाधन बंद हो जाने से स्त्रियों की शोभा नष्ट हो जाती है. कवि कालिदास ने श्रृँगार प्रसाधनों का विस्तृत वर्णन किया है. सौंदर्य प्रसाधनों में निम्नलिखित वस्तुओं का उपयोग किया जाता था---- फूल, सुवासित धूप, अँजन, तेल, विभिन्न प्रकार के पावडर, इत्र, अवलेप (उबटन) होठों तथा पैरों को रँगने के साधन, मुँह एवँ शरीर को सुगँधित करने की चीजें इत्यादि.

---

1. ब्रिटिश म्यूजियम कैटलॉग, फलक 13.1
   इण्डियन म्यूजियम कैटलॉग, भाग 1, पृष्ठ 113
2. जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, 1917, पृष्ठ 155
3. अल्तेकर, गुप्तकालीन मुद्रायें, 1972, पृष्ठ 145
4. मोतीचन्द्र, प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृष्ठ 225
   याजदानी, अजँता, भाग 1, प्लेट 11.
5. मार्शल, दी बाघ केव्ज, प्लेट सी.
6. फ्लीट, भारतीय अभिलेख सँग्रह, भाग 3, संख्या 17.10
   विश्ववर्मन का गंगधार प्रस्तर लेख, पृष्ठ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सौंदर्य प्रसाधन का विस्तृत विवरण हमें गुप्तकालीन अभिलेखों में प्राप्त नहीं होता इसलिए कालिदास द्वारा किया गया वर्णन ही महत्वपूर्ण है:

. <u>पत्र रचना:</u> मुख सौंदर्य में "पत्र रचना" का महत्वपूर्ण स्थान है. स्त्रियाँ[1], मुँह पर[2] अथवा शरीर के अन्य भागों पर[3] पत्र रचना करती थीं. <u>कुमारसँभवम्</u>[4], <u>ऋतु सँहार</u>[5], <u>मालविकाग्निमित्रम्</u>[6] आदि में स्थान स्थान पर पत्र रचना का वर्णन मिलता है. पत्र रचना मुख्यत: गोरोचन[7] तथा कुँकुम से की जाती थी. कभी कभी अन्जन से भी पत्र रचना की जाती थी.[8] अर्थात् काला, सफेद और लाल रँग पत्र रचना के लिए प्रयुक्त किए जाते थे.[9]

. <u>तिलक:</u> मस्तक पर तिलक भी मुख सौंदर्य के लिए विशेष महत्व रखता है. स्त्रियाँ माथे पर हरिताल, मन:शील और चंदन से बने पिष्ट का तिलक लगाती थीं.[10] कभी कभी काजल और कुँकुम से भी तिलक लगाती थीं.[11]

1. <u>कुमारसंभवम्</u>, 7. 15, 3. 30, 33, 38
   <u>रघुवंशम्</u>, 6. 72, 17. 24, <u>मालविकाग्निमित्रम्</u>, 3. 5
2. <u>कुमारसँभवम्</u>, 3. 30, 33, 38, <u>रघुवँशम्</u>, 6. 72, 16. 67
   <u>मालविकाग्निमित्रम्</u>, 3. 5
3. <u>कुमारसंभवम्</u>, 7. 15
   <u>रघुवँशम्</u>, 9. 29, 16. 67, 17. 24
4. <u>कुमारसंभवम्</u>, 3. 30, 33, 38, 7. 15
5. <u>ऋतुसंहार</u>, 4. 5, 6. 8
6. <u>मालविकाग्निमित्रम्</u>, 3. 5
7. <u>कुमारसंभवम्</u>, 7. 15
8. <u>कुमारसंभवम्</u>, 3. 30
9. <u>मालविकाग्निमित्रम्</u>, 3. 5
10. <u>मालविकाग्निमित्रम्</u>, अँक 3,
    <u>कुमारसंभवम्</u>, 7. 23, 33, <u>ऋतुसंहार</u>, 1. 2., 4, 6
    <u>रघुवँशम्</u>, 18. 44
11. <u>मालविकाग्निमित्रम्</u>, 3. 5

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

.अँजन- सौंदर्य वृद्धि के लिए आँखों में अँजन का प्रयोग किया जाता था. अँजन काले रँग का होता था जिसे शलाका से लगाया जाता था.[1] विरहावस्था तथा तप करते समय आंखों में अँजन लगाना वर्जित होता था.[2]

.ओष्ठराग- स्त्रियाँ अपने ओठों को आलत्तक या ओष्ठराग से रँगती थीं तथा उस पर लोध्रधूलि छिड़क कर कुछ पीलेपन का आभास दिया जाता था.[3] तपस्या[4] या विरहावस्था[5] में ओष्ठराग श्रृँगार के अन्य प्रसाधनों की तरह त्याग दिया जाता था. ओष्ठराग आजकल की तरह विभिन्न रँगों का न होकर सिर्फ लालरँग का ही होता था.[6]

.आलत्ततक- स्त्रियाँ जिस प्रकार ओष्ठराग से अपने ओंठ रँगती थीं उसी प्रकार अपने चरणों को आलता या आलत्ततक से रँगती थीं. कालिदास ने आलत्ततक को रागलेखा, पादराग, लाक्षारस, आलत्ततक, रागरेखा विन्या, चरणराग, द्रवराग तथा निर्मितराग इत्यादि नामों का प्रयोग किया है.[7]

श्रृँगार के अन्य उपकरण:

पत्र रचना, तिलक, अँजन, ओष्ठराग तथा आलता के अतिरिक्त श्रृँगार के लिए विभिन्न प्रकार के अवलेप, उशीर, चन्दन, अँगराग, पुष्प, सुगँधित द्रव्य, इत्र तथा सुगँधित चूर्णों का प्रयोग

1. रघुवँशम्, 7.27, 16.59, 19.10, ऋतुसंहार, 1.11, 2.2 कुमारसंभवम्, 1.47, 5.51, 7.20, 59, 82, उत्तरमेघ, 37
2. उत्तरमेघ, 37, कुमारसंभवम्, 5.51
3. कुमारसंभवम्, 5.11, 34, 7.18, 7.9
4. कुमारसंभवम्, 5.11, 34
5. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 7.23
6. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 7.23, कुमारसंभवम्, 5.34
7. विक्रमोर्वशीयम्, 4.16 पूर्वमेघ, 36 मालविकाग्निमित्रम्, 3.11

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किया जाता था. इसके अतिरिक्त श्रृँगार के लिए फूलों का अत्यधिक प्रयोग होता था.

<u>वस्त्रावरण:</u>

मनुष्य जीवन में सबसे पहले भोजन और कपड़ों का स्थान है. मनुष्यों के लिए ये बेड़ियाँ हैं जो उन्हें पुनर्जन्म से बाँधे रहती हैं. चीनी यात्री इत्सिंग के ये विचार वस्त्रों की आवश्यकता एवँ महत्व को प्रतिपादित करते हैं. विश्रृंखलित राजतंत्र के इस युग में भारतीय वेशभूषा के इतिहास की कम सामग्री मिलती है. भारतीय वेशभूषा के इतिहास में गुप्तकाल का अत्यधिक महत्व है. इस काल की वेशभूषा के अध्ययन की प्रचुर सामग्री हमें देवगढ़, सारनाथ आदि से प्राप्त मूर्तियों तथा अजन्ता की 17 नम्बर की गुफा से मिलती है.

गुप्तयुग केवल राजनीतिक, धार्मिक और कला के क्षेत्रों में ही भारतीय इतिहास का सर्वश्रेष्ठ युग नहीं था वरन् इस युग में भौतिक सँस्कृति का धरातल भी यथेष्ट ऊँचा उठा. इस भौतिक सँस्कृति की उन्नति का पता हमें कालिदास के ग्रंथों से, अजँता के चित्रों से और दूसरे पुरातात्त्विक अवशेषों से लगता है. अजँता के भित्तिचित्रों में राजमहलों के सजीव चित्रण हमें प्राचीन महलों की सजावट की छोटी से छोटी वस्तुओं का भी पता देते हैं. साफ सुथरे और हलके कपड़े पहने हुए राजाओं की प्रशाँत मूर्तियाँ, अन्तःपुर के कठोर नियमों का पालन करती हुई चित्ताकर्षक दासियाँ और प्रसाधिकायें, सिले कपड़े पहने हुए नर्तक, नर्तिकाएँ और समाजी, सुसज्जित सैनिकों से युक्त जुलूस, राजा के जीवन के ये सब पहलू गुप्तयुग में भौतिक सँस्कृति के विजयचिन्ह के समान हैं. केश बन्धन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की सुन्दर विधियाँ तथा साफ सुथरे कपड़े और गहने गुप्तयुग की पहले की शताब्दियों के भड़कीलेपन से दूर हैं. इस युग में स्त्रियाँ अपने बालों की चोटियाँ नहीं करती थीं पर उन्हें खूब सजाती थी. उनके केश बंधन की अनेक विधियों में हम उस युग की कुशल प्रसाधिकाओं का हाथ देख सकते हैं. धोती और साड़ी पहनने में कलात्मक ढँग से चुननों और सिलवटों के प्रदर्शन से हमें पता चलता है कि उस युग के पुरूष और स्त्रियाँ वेश विन्यास की कला से पूरी तरह अवगत थे. इस युग में ठीक तौर से कपड़े पहनने का इतना महत्व था कि अमरकोष में इसके लिए पाँच शब्दों----- आकल्प, वेश, नेपथ्य, प्रतिकर्म और प्रसाधन का प्रयोग किया गया है.[1] साहित्यिक उद्धरणों और अजंता के चित्रों से यह स्पष्ट है कि गुप्तयुग में कपड़े की नक्काशियों में भी काफी उन्नति हुई.[2]

गुप्तकालीन सिक्कों पर अँकित प्रतिकृतियों से तत्कालीन वेशभूषा पर काफी प्रकाश पड़ता है. गुप्तकालीन सिक्कों पर रानियाँ कंचुक और साड़ियाँ पहने अँकित हैं.

गुप्तकाल में सामान्यतः स्त्रियाँ सिर्फ 2 वस्त्रों का प्रयोग करती थीं. एक का प्रयोग शरीर के निम्न भाग को तथा दूसरे का शरीर के ऊपरी भाग को ढँकने के लिए करती थीं. ऊपर का वस्त्र स्तनांशुक[3] अथवा स्तनपट्ट कहलाता था. यह कपड़े की पट्टी मात्र होती थी जिससे स्तनों को ढँकते हुए स्त्रियाँ पीठ

---

1. अमरकोष, 2.6.99
2. मोतीचन्द्र, प्राचीन भारतीय वेशभूषा, 1943, पृष्ठ 139-40
3. ऋतु संहार, 1.7, 4.3, 6.5
   विक्रमोर्वशीयम्, 5.12, 4.17

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के पीछे बाँधती थीं. इसके अतिरिक्त कूर्पासिक[1] का भी उल्लेख मिलता है जो कदाचित शरीर ढँकने के लिए कोई ढीला ढाला वस्त्र था जिसका प्रयोग स्त्रियाँ जाड़ों में करती थीं. शरीर के निचले हिस्से पर आधुनिक साड़ी के समान वस्त्र स्त्रियाँ पहनती थीं किंतु इसके पहिनने का ढँग कुछ भिन्नता लिए हुए था. यह कटि से घुटनों तक ही पहना जाता था, जिसे नीवीबन्ध की सहायता से कटि पर बाँधा जाता था और उसके ऊपर मेखला धारण की जाती थी. कालिदास ने इस वस्त्र को क्षौमान्तरित मेखला[2] कहा है. स्त्रियाँ कभी कभी दुपट्टा या चुन्नी के समान वस्त्र का भी प्रयोग करती थीं.[3] जो संभवत: कभी कभी अवगुण्ठन का भी काम देता होगा किंतु गुप्तकालीन समय में अवगुण्ठन का बहुत कम प्रचार था.

वस्त्रों के प्रकार:

अमरकोश[4] के अनुसार वस्त्र 4 प्रकार के होते थे:

1. वल्क- छालों अथवा रेशों से बना वस्त्र.
2. फाल- फल के रेशों से बना वस्त्र, जैसे कपास से.
3. कौशेय- रेशमी,
4. राकंव अर्थात् पशमीने- पामीर प्रदेश का बना.

अर्थात् वस्त्र सूती, रेशमी और ऊनी तीनों प्रकार के वस्त्र गुप्तकाल में उपयोग किये जाते थे. सूती और ऊनी कपड़े अपने देश में ही बनते थे जिसे जनसाधारण उपयोग में लाते थे. रेशमी वस्त्रों

---

1. ऋतुसंहार, 4.17, 5.18
2.
3. मालविकाग्निमित्रम्, अँक 5, रघुवंशम्, 16.17
   अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अँक 5, एवँ अँक 6
4. अमरकोश, 2.6.111

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का प्रयोग अधिकांश धनिक वर्ग ही करता था. रेशमी वस्त्रों के प्राय: दो प्रकारों का वर्णन मिलता है-----1. कौशेय, तथा 2. चीनांशुक. कौशेय संभवत: कोशकार देश में पैदा हुए रेशम से बना वस्त्र[1] तथा चीनांशुक चीन देश में बना रेशमी वस्त्र[2]. इसे चीन देश से आयात किया जाता था.

जैन साहित्य के अनुसार वस्त्रों के निम्न लिखित प्रकारों का वर्णन मिलता है:

1. भंगिय,	2. जंगिय,	3. पोत्तग,
4. क्षौम,	5. तूलकड़,	6. आइणग,
7. सहिण,	8. सहिण कल्लण,	9. आजक,
10. काय,	11. दुकूल,	12. हंस दुकूल,
13. पट्ट,	14. पत्रोर्ण,	15. देसराग,
16. अमिला,	17. गज्जफल,	18. फालिय,
19. कोयव,	20. कंवल,	21. पावर.

वस्त्रों के रँग:

गुप्तकाल में साधारणत: लोग सफेद वस्त्र पहनना अधिक पसँद करते थे, किंतु रँगीन वस्त्रों का भी उपयोग होता था, रँगीन वस्त्र काले, नीले, लाल तथा केसरिया रँग के अधिक प्रयोग में लाये जाते थे. सांसारिक भोग विलास को छोड़ स्त्रियाँ काषाय रँग के वस्त्र धारण करती थीं.[3] अपने जीवन के सबसे सरस दिनों में

1. मोतीचन्द्र, प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृष्ठ59 तथा भूमिका पृष्ठ 9
2. मोतीचन्द्र, प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृष्ठ 56
3. रघुवंशम्, 15. 77
   मालविकाग्निमित्रम्, अंक 5, पृष्ठ 350

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वे श्रृंगार के सबसे सुंदर क्षणों में वे अपने प्रिय लाल रंग के ही वस्त्र पहनती थीं.

गुप्तकाल में मथुरा की बनी डोरिया को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था. ह्वेनसाँग के अनुसार उसके समय में मथुरा की डोरिया प्रसिद्ध थीं.[1] अजंता के भित्तिचित्रों में स्त्री पुरूष दोनों धारीदार कपड़े पहने हैं[2].

अब प्रश्न उठता है कि गुप्तकाल में सिले वस्त्र पहने जाते थे या नहीं. अधिकांश भारतीय सिले कपड़े नहीं पहनते थे. पुरूष धोती और दुपट्टे पहिनते थे और स्त्रियाँ साड़ी. हमारे देश की जलवायु के अनुकूल धोती, दुपट्टा, चादर एवं साड़ी ही उपयुक्त और स्वास्थ्यकर पहनावे हैं.[3] इसके बाद भी सिले कपड़ों का प्रयोग होता था. <u>अमरकोश</u> में सिले एवं बिना सिले कपड़ों के बारे में बहुत कम कहा गया है. कालिदास के ग्रंथों में सिले वस्त्रों का कोई प्रमाण नहीं मिलता. कँचुक या कुँचुकी का भी कोई उल्लेख नहीं मिलता. इसके विपरीत दुकूल, अंशुक, उत्तरीय, उष्णीश, स्तनांशुक, स्तनपट्ट इत्यादि नामों से व्यक्त होता है कि गुप्त काल में सिले वस्त्रों का प्रचलन नहीं था.

गुप्त कालीन वेशभूषा का मुख्य लक्ष्य था कि वस्त्रों से सर्वांग सौष्ठव पर प्रकाश अवश्य पड़ना चाहिए. मोतीचन्द्र का अनुमान है कि सिले कपड़ों से अँग ढक देने से उनकी गठन खूबी से नहीं दिखलाई जा सकती थी. बिना सिले कपड़े सादे होते थे

---

1. वाटर्स, <u>ह्वेनसाँग: ट्रेवल्स इन इंडिया</u>, भाग 1, 1904, लंदन पृष्ठ 148.
2. मोतीचन्द्र, <u>प्राचीन भारतीय वेशभूषा</u>, , पृष्ठ 155
3. मोतीचन्द्र, <u>प्राचीन भारतीय वेशभूषा</u>, पृष्ठ 167-68

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसलिए धोती, दुपट्टा और चादर ऐसे कलात्मक ढँग से पहने जाते थे कि जिससे पहनने वाले के सौंदर्य में अभिवृद्धि होती थी और कपड़े भी बड़े सुहावने लगते थे.[1]

गुप्तकालीन स्त्रियों की मूर्तियों में दो विशेषतायें देखने को मिलती हैं-----1. ऊपर वे चादर या ओढ़नी नहीं लेती थीं, 2. उनका वक्ष स्थल खुला हुआ है. नाभि भी दिखाई देती है. सारा संस्कृत साहित्य इन विशेषताओं का साक्षी है. कालिदास का साहित्य इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि अँग सौष्ठव न केवल उसका प्रधान उद्देश्य है, अपितु स्वयं नायिका के एक एक अँग का उभार, वर्ण, आकार, कठोरता, शिथिलता आदि गुण अच्छी तरह देखता है. स्तन, नितम्ब, जघन आदि का खुला चित्रण इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि जो भी वस्त्र उपयोग में लाए जाते थे, वे सौंदर्य वृद्धि के लिए तथा आकृति को ज्यों की त्यों सुरक्षित रखने को.

. <u>यवनी की वेशभूषा:</u> गुप्तकाल में स्त्रियाँ कम से कम दो या अधिक से अधिक तीन वस्त्र पहनती थीं. यवनी का भी यही वेश होता होगा. अन्य स्त्रियों से यवनी वेश कुछ भिन्नता लिए रहता था. शिकार के समय ये यवनियाँ जँगली फूलों की माला पहनती थीं. इनके हाथ में सदा धनुष बाण होता था.

. <u>जैन साध्वियों की वेशभूषा:</u> गुप्तकाल में जैन साध्वियों की वेशभूषा लंबी चौड़ी होती थी, उनकी वेशभूषा में इस बात पर अधिक जोर रहता था कि उससे उनका शरीर पूरी तरह से ढक जाए. जैन धर्म ग्रन्थ <u>बृहतकल्पसूत्रभाष्य</u> में उनके ग्यारह

---

1. मोतीचन्द्र, <u>प्राचीन भारतीय वेशभूषा</u>, पृष्ठ 157

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आकृति 1

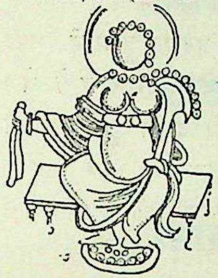

आ. 2

आ. 3

आ. 4

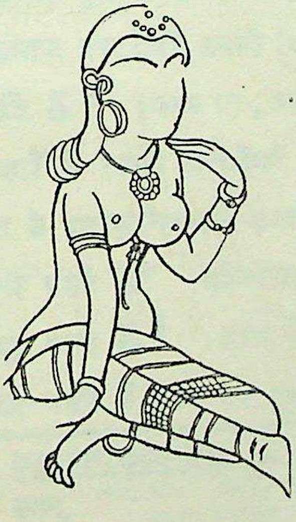

आ. 5

आकृति 6

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वस्त्रों की तालिका दी गई है : अवग्रह, पट्ट, अर्धोरूक, चलनिका, अभ्यंतर निवसनी, बर्हिर्निवसनी, कंचुक, पौपकक्षिकी, वैकक्षिकी, संघाटी और स्कंधकारिणी.[1]

गुप्तकाल में रानियों की वेशभूषा:

गुप्तकाल में ना रानियों की वेशभूषा के विषय में गुप्त सम्राटों की मुद्राओं एवं अजन्ता के भित्तिचित्रों से पर्याप्त जानकारी मिलती है. चन्द्रगुप्त प्रथम के राजा रानी प्रकार सिक्कों पुरोभाग में रानी कुमार देवी, साड़ी, ओढ़नी तथा शिरोवस्त्र पहने हैं. पृष्ठभाग पर देवी लक्ष्मी चोली तथा साड़ी पहने हैं. कन्धे चादर से ढके हैं.[2] (फलक 17, आकृति 1). समुद्रगुप्त के अश्वमेध प्रकार सिक्कों में रानी दत्तदेवी साड़ी तथा चोली पहने हैं.[3] समुद्र गुप्त के व्याघ्रनिहन्ता प्रकार में मकरवादिनी गंगा साड़ी एवं चोली पहने हैं.[4] वीणाधारी प्रकार में लक्ष्मी साड़ी, चोली तथा चादर पहने हैं.[5] काच के सिक्कों में लक्ष्मी साड़ी, चोली तथा चादर पहने हैं तथा एक मुद्रा पर शिरोवस्त्र के पास अंकित है.[6]

---

1. बृहत्कल्पसूत्रभाष्य, 4. 4082-83
2. एलन, कैटलॉग आफ क्वायन्स आफ दी गुप्त डायनेस्टी प्लेट 1. 1-9, 1975
   अल्तेकर, गुप्तकालीन मुद्रायें, 1972 पृष्ठ 24-25
3. अल्तेकर, गुप्तकालीन मुद्रायें, 1972 पृष्ठ 47
4. ब्रिटिश म्यूजियम कैटलॉग, फलक 2. 14-15
   जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, 1884, फलक 2. 10
   1894, फलक 6. 2
   जर्नल ऑफ रायल एशियाटिक सोसायटी, लंदन, 1889, फलक 1. 2
   अल्तेकर, गुप्तकालीन मुद्रायें, पृष्ठ 50, 1972
5. अल्तेकर, गुप्तकालीन मुद्रायें, पृष्ठ 52, 1972
6. अल्तेकर, गुप्तकालीन मुद्रायें, पृष्ठ 59-60, 1972

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चन्द्रगुप्त द्वितीय की स्वर्ण मुद्राओं में धनुर्धारी प्रकार (फलक 17, आकृति 2) में सिंहासनरूढ़ देवी लक्ष्मी वही पूर्ववत् साड़ी, चोली एवं चादर पहने हैं.[1] इसी प्रकार राजा रानी प्रकार सिक्कों में रानी साड़ी तथा चोली पहने हैं.[2] कुमारगुप्त प्रथम की स्वर्णमुद्राओं में गजारोही प्रकार तथा गजारूढ़ सिंह निहन्ता प्रकार में भी देवी लक्ष्मी साड़ी पहने हैं तथा चादर लिए हुए हैं.[3] इसी प्रकार अश्वमेध प्रकार में रानी साड़ी पहने हैं तथा चादर लिए हैं.[4] कुमारगुप्त प्रथम की स्वर्णमुद्राओं में अप्रतिघात प्रकार मुद्राओं तथा राजा रानी प्रकार सिक्कों में रानी साड़ी तथा चोली पहने हैं. इसमें साड़ी की चुनन स्पष्ट दिख रही है.[5]

अर्थात् उपरोक्त सिक्कों पर रानी अथवा देवी की वेशभूषा से स्पष्ट है कि रानी साड़ी तथा चोली पहनती थी. साथ में चादर भी लेती थी, जिसके दोनों छोर नीचे लटकते थे. कभी कभी शिरोवस्त्र भी पहनती थी.

कोसम से प्राप्त गुप्तकालीन शिव पार्वती (फलक 17, आकृति 3) की मूर्ति में एक जालीदार टोपी, जिसके दोनों ओर फूल्ले हैं, पहने दिखलाई गयी है.[6] देवगढ़ से प्राप्त नंद यशोदा

1. अल्तेकर, गुप्तकालीन मुद्रायें, 1972, पृष्ठ 63.
2. अल्तेकर, गुप्तकालीन मुद्रायें, 1972, पृष्ठ 98
3. अल्तेकर, गुप्तकालीन मुद्रायें, 1972, पृष्ठ 136-37
4. अल्तेकर, गुप्तकालीन मुद्रायें, 1972, पृष्ठ 141
5. अल्तेकर, गुप्तकालीन मुद्रायें, 1972, पृष्ठ 145 तथा 149
6. मोतीचन्द्र, प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृष्ठ 219

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आ. 7

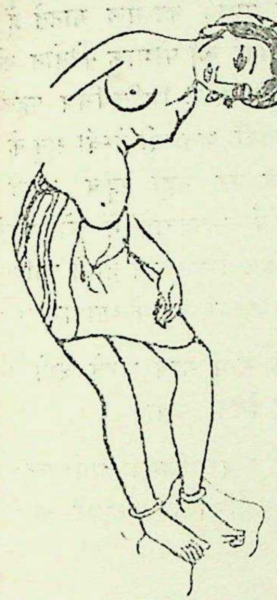

आ. 8

आ. 9

आ. 10

आ. 11

आ. 12

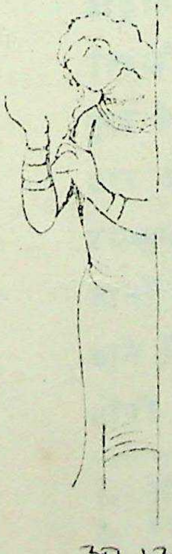

आ. 13

आ. 14

आ. 15

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की मूर्ति में यशोदा का पहनावा आजकल के बंजारों जैसा है. वह सिर को ढँकती हुई एक चादर, भरी बाँह का कुरता जिसकी बाईं ओर घुंडी है और लंहगा पहने दिखलाई गई है.[1] (फलक, 17, आकृति 4). अजन्ता के भित्तिचित्रों में रानियाँ एड़ी तक नीची साड़ी या धारीदार घघरी पहनती हैं.[2] (आकृति 5, फलक 17) इसी प्रकार दर्पण में अपना मुँह देखती हुई राजकुमारी तीन लड़ी करधनी और सुनहरे किनारों वाले कमरबंद से बँधी साड़ी पहने है.[3] (फलक 17, आकृति 6). उसकी एक सेविका पेरी से बँधी साड़ी पहने हुए है और उसके कमरबंद के छोर पीछे लटक रहे हैं और उसके कमरबंद के, छोर पीछे लटक रहे हैं. इसी चित्र में एक चामर ग्राहिणी की साड़ी की सिलवटें बड़ी सुंदरता से बतायी गई हैं. उसमें कमरबंद की मुध्दी पीछे बँधी है. एक दूसरी जगह एक रानी धारीदार घघरी और टोरी अथवा पगड़ी पहने है.[4] (फलक, 18, आकृति 7). कभी कभी अजंता के चित्रों में रानियाँ तथा कुलीन स्त्रियाँ सिले कपड़े भी पहने दिखलायी देती हैं. 1 नम्बर की गुफा के एक भित्तिचित्र में एक रानी महीन कपड़े की बनी बुँदकीदार चोली पहने है.[5] उसी गुफा के पद्मपाणि वाले चित्र में एक राजकुमारी झीनी मलमल की चोली और एक छोटी घघरी जिसके खानों में पक्षी और सीढ़ियाँ बनी हैं और जिसके एक मध्य के खाने में लहरिया बनी है, पहने हैं. रानी के सिर पर कामदार टोपी अथवा मुकुट है.[6] (फलक 18, आकृति 8). एक दूसरी जगह

---

1. अग्रवाल, वासुदेव शरण, <u>गुप्त आर्ट</u>, 1947, प्लेट 1.2
2. हेरिंगम, <u>अजन्ता फ्रेस्कोज</u>, प्लेट 3.7
3. हेरिंगम, <u>अजन्ता फ्रेस्कोज</u>, प्लेट 5.6
4. हेरिंगम, <u>अजंता फ्रेस्कोज</u>, प्लेट 27.29, गुफा 17
5. याजदानी, <u>अजंता</u>, भाग 1, प्लेट 17, पृष्ठ 21
6. हेरिंगम, <u>अजंता फ्रेस्कोज</u>, प्लेट 11, 13
   याजदानी, <u>अजंता</u>, भाग 1, प्लेट 24, किंतु चित्र में चोली नहीं दिखाई देती है.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर एक रानी हल्के रंग का कंचुक, जिसके किनारे पर जवाहिर बने हैं, पहने है.[1] (फलक 18, आकृति 9). 1 नम्बर एक की ही गुफा के एक भित्तिचित्र में एक चौकी पर बैठी रानी धारीदार घघरी स्तन पट्ट और चादर पहने है.[2] (फलक 18, आकृति 10) उसी गुफा के एक दूसरे चित्र में एक स्त्री धारीदार घघरी, जिसके ठीक बीच में फुल्लों से सजी एक गोट लगी है, पहने है.[3] (फलक 18, आकृति 11). गुफा नंबर 2 के एक भित्तिचित्र में एक स्त्री महीन कपड़े की चोली और किनारेदार चंडातक पहने है.[4] (फलक 18, आकृति 12).

दासियों की वेशभूषा:

गुप्तकाल में रानियों एवं उच्च कोटि की स्त्रियों की वेशभूषा एकदम सादी होती थी. वे सिर्फ गहने ही अधिक पहनती थीं, किंतु गुप्तकालीन दासियों की वेशभूषा काफी भड़कीली होती थी. साधारणतः दासियाँ साड़ी कमरबंद और कमरपेटी पहनती थीं.[5] किंतु कसीदे के काम की हुई घघरियाँ तथा कंचुक भी दासियाँ पहनती थीं. अजंता के चित्रों में दासियाँ प्रायः घुटनों तक पहुँचता पूरे बाँह का सफेद कँचुक पहने चित्रित हैं.[6] (फलक 18, आकृति 13). वे कभी कभी दुहरे जाकेट भी पहनती थीं.[7] 1 नंबर की गुफा के एक भित्तिचित्र में एक स्त्री कंचुक के ऊपर जाकेट पहने है जो बूँदरी से बना है और सामने से खुला है, पूरे

1. याजदानी, अजंता, भाग 1, प्लेट 6 बी.
2. हेरिंगम, अजन्ता फ्रेस्कोज, प्लेट 14, 16
3. हेरिंगम, अजन्ता फ्रेस्कोज, प्लेट 15, 17
4. याजदानी, अजन्ता, भाग 2, प्लेट 21, पृष्ठ 20
5. हेरिंगम, अजन्ता फ्रेस्कोज, प्लेट 5, 6 गुफा 17
6. याजदानी, अजन्ता, भाग 1, प्लेट 6
7. याजदानी, अजन्ता, भाग 1, प्लेट 14

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आ.16

आ.17

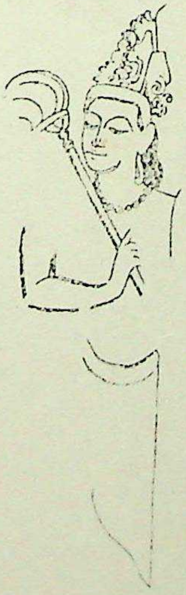

आ.18

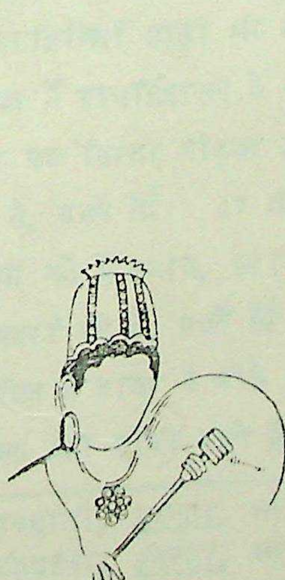

आ.19

आ.20

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बाँह का हरा कंचुक आगे से बंद है (फलक 18, आकृति 14). उसी गुफा के एक अन्य चित्र में एक दासी बुंदकीदार छोटे बाँह की चोली पहने है जिसका आगा घुटनों तक पहुँचता है और जिसके ऊपर एक चूंदरी का टुकड़ा पीठ पर बँधा है. इसका सिर रूमाल से ढका है.[1] (फलक 18, आकृति 15). उसी गुफा के एक चित्र में एक चामरग्राहिणी नीले गले का डोरीदार फाक की तरह कपड़ा पहने है.[2] (फलक 19, आकृति 16). उसी गुफा के एक दूसरे चित्र में एक चामरग्राहिणी हंस दुकूल से अँकित कपड़ा पहने हुए है.[3] (फलक, 19, आकृति 17). पद्मपाणि वाले चित्र में बोधिसत्व के पीछे खड़ी हुई दासी जो विदेशी नस्ल की मालूम पड़ती है, लम्बा कंचुक और विचित्र तरह की कुलाहनुमा टोपी जिसके चार कसीदेदार फटके ऊपर मुड़े हुए हैं, पहने है.[4] (फलक 19, आकृति 18). चामरग्राहिणियाँ साड़ी भी पहनती थीं. 1 नम्बर की गुफा के एक चित्र में राजसिंहासन के नीचे एक चामरग्राहिणी, साड़ी, जिसका एक हिस्सा मोड़कर उसने कंधे पर चादर की तरह डाल रक्खा है, पहने है.[5] 17 वीं गुफा के एक चित्र में एक चामर ग्राहिणी गले में रूमाल, धारीदार जाँघिया और दुपट्टा, जिसके छोर लहरा रहे हैं, पहने है.[6] अजन्ता के काशिराज की सभा वाले चित्र में राजा के पीछे खड़ी चामरग्राहिणी एक फूल से सुशोभित ऊँची टोपी पहने है[7] (फलक 19, आकृति 19). उसी

---

1. याजदानी, _अजन्ता_, भाग 1, प्लेट 17
2. याजदानी, _अजन्ता_, भाग 1, प्लेट 17
3. याजदानी, _अजन्ता_, भाग 1, प्लेट 18
4. याजदानी, _अजन्ता_, भाग 1, प्लेट 24, गुफा 1
5. हेरिंगम, _अजन्ता फ्रेस्कोज_, प्लेट 38
6. हेरिंगम, _अजन्ता फ्रेस्कोज_, प्लेट 9, 11
7. याजदानी, _अजन्ता_, भाग 1, प्लेट 27

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्र में दायीं ओर मँत्री के पीछे एक चामरग्राहिणी कुलाहनुमा टोपी और छाती ढँकती हुई एक पतली चादर पहने है (फलक, 19, आकृति 20).

मध्यवर्ग की स्त्रियों की वेशभूषा:

चामरग्राहिणीयों की यह वेशभूषा एक खास तरह की सेविकाओं तक ही सीमित नहीं थी अपितु हर प्रकार की राज सेविकाओं में यह वेशभूषा प्रचलित थी और गुप्तकाल में यही मध्यवर्ग की स्त्रियों की वेशभूषा थी।[1] राजमहल से संबंधित स्त्रियों की वेशभूषा निम्न प्रकार है. गुफा नंबर 2 में चंपेय जातक के एक चित्र की पृष्ठिका में खड़ी एक स्त्री पतले तथा फूलदार कपड़े का बना कंचुक पहने है. दुपट्टे पर के अलँकार का प्रतिकृति में तो पता नहीं चलता पर मूल चित्र में बिल्कुल स्पष्ट है.[2]

ईरानी नस्ल की दासियाँ: गुफा नंबर 1 के एक मस्ती के दृश्य में दाहिनी ओर खड़ी एक दासी अपने स्वामी को शराब पिला रही है. वह एक समूर के किननोरे वाली लाल टोपी, जिसकी चोटी में पर लगे हैं, पहने है. उसका पूरे बाँह का लँबा कंचुक लाल रंग का है और उसके गले, मोहरियों और कँधों पर कसीदे का काम है. लँबे और सफेद घाघरे में हल्के नीले रँग की चूंदनदार झालर लगी है[3] (फलक 20, आकृति 21). बायीं ओर की दासी का पहरावा कुछ थोड़े फर्क के साथ लगभग वैसा ही है. इसकी लाल टोपी के साथ एक पीठ पर लहराता

1. मोतीचन्द्र, प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृष्ठ 22।
2. याजदानी, अजंता, भाग 1, प्लेट 34 बी, पृष्ठ 41, गुफा नं. 2
3. याजदानी, अजन्ता, भाग 1, प्लेट 29 ए

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आ. 21

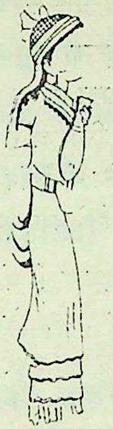
आ. 22

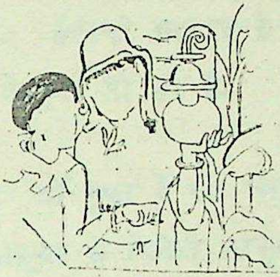
आ. 23-24

आ. 25

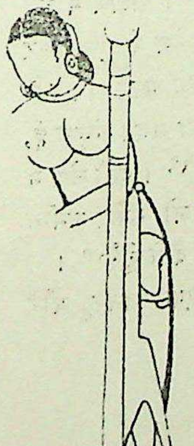
आ. 26

आ. 27

आ. 28 आ. 27

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रूमाल लगा है. जिसका एक सिरा कमर में खोंस दिया गया है. कंचुक के कंधों, मोहरियों और गले पर समूर लगा मालूम होता है. लंबे घाघरे की चुनी झालरें हल्के हरे और नीले रँग की हैं. (फलक 20, आकृति 22). ईरानी सरदार के साथ बैठी हुई स्त्री की वेशभूषा दासियों के वेशभूषा सी ही है.

17 वीं गुफा के एक भित्तिचित्र के मध्य में एक दासी जो अपनी वेशभूषा से विदेशी मालूम होती है, फुल्लों से अलँकृत कंचुक तथा गोल टोपी, जिसके छज्जे ऊपर मुड़े हैं और जिसके चोटी पर कुब्बा है, पहने है.[1] उसी गुफा के एक दूसरे चित्र में एक सेविका कंचुक और रूमाल, जिसके दोनों छोरों की गठरी गले पर लगी है पहने है.[2] (फलक 20, आकृति 23). उसी चित्र में एक दूसरी दासी दो बगल में लगे हुए तस्मों वाली टोपी पहने है (फलक 20, आकृति 24). 17 वीं गुफा के एक भित्तिचित्र में एक विदेशी दासी का ही रँग की एक आधे बाँह की जाकेट पहने है जो कमर तक चिपकी है और जिसका आगा और कोने खुले हुए हैं[3] (फलक 20, आकृति 25). जाकेट के कपड़ों पर चौफुलियों की नकाशी है. उसका लँहगा शायद धारीदार रेशमी कपड़े का है. उसकी खोद नुमा टोपी के किनारे घुंडीदार हैं.

2 री गुफा के एक भित्तिचित्र में एक स्त्री छोटे बाहों वाली नीले रेशमी कपड़े की बनी कसी चोली, जिसकी मोहरियों पर मोती की झालर है, पहने है.[4] दक्षिण भारत में अब भी चोली की मुहरियों पर सोने के दानों की लड़े लगाने की प्रथा है.

1. हेरिंगम, अजन्ता फ्रेस्कोज, प्लेट 28, 31
2. डे, मुकुल, अजंता एंड बाघ, पृष्ठ 140 के सामने लगी प्लेट.
3. हेरिंगम, अजन्ता फ्रेस्कोज, प्लेट 45 एवं 7
4. याजदानी, अजन्ता, भाग 2, प्लेट 7, पृष्ठ 4

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसी गुफा के एक दूसरे चित्र में दासी के पहनावे में तीन कपड़े यथा----एक कसी चोली जिसके ऊपर शरीर के अँगों के सुगमता से सँचालन के लिए बगलों में ऊपर से नीचे तक कटा हुआ सुंदर कंचुक है, तथा अँग सौष्ठव को दिखलाती एक साड़ी अथवा घघरी है।[1] [फलक 20, आकृति 26]. इसी गुफा में एक दूसरी जगह इसी तरह के एप्रन से मिलते जुलते वस्त्रों का चित्रण है जो सफेद जमीन पर काले सितारों वाले कपड़े से बना है. इसमें शरीर की बगलें दिखलायी देती हैं.[2]

16 वीं गुफा के एक चित्र में पंखा हाँकने वाली स्त्री एक स्तनपट्ट और घघरी पहने है.[3] [फलक 20, आकृति 27]. उसी दृश्य में मृत प्राय राजकुमारी के पास बैठी एक दासी आधे बाँह का जाकेट पहने है. इसी गुफा के एक चित्र में एक बैठी हुई दासी घुटनों तक पहुँचता हुआ आधे बाँह का कंचुक पहने है.[4] [फलक 20, आकृति 28]. दवा तैयार करती हुई एक दूसरी दासी छाती को ढँकता हुआ और शायद और नीचे की ओर जाता हुआ आधे बाँह का कंचुक पहने है, पीछे का निचला भाग अनावृत्त मालूम होता है [फलक 20, आकृति 29].

17 वीं गुफा के एक भित्तिचित्र में एक स्त्री पारदर्शी कपड़े की बनी घघरी और वैकक्ष्य पहने हुए उपवन में घूम रही है[5] [फलक 21, आकृति 30]. 17 वीं गुफा के ही एक भित्तिचित्र

---

1. याजदानी, अजन्ता, भाग 2, प्लेट 7, पृष्ठ, 4
2. याजदानी, अजन्ता, भाग 2, प्लेट 25
3. हेरिंगम, अजन्ता फ्रेस्कोज, प्लेट 35, 38
4. हेरिंगम, अजन्ता फ्रेस्कोज, प्लेट 35, 39

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आ. 30

आ. 31

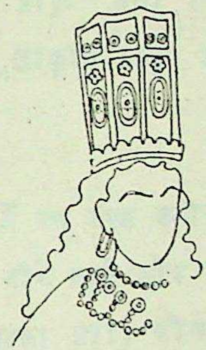

आ. 32

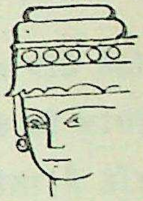

आ. 33

आ. 34

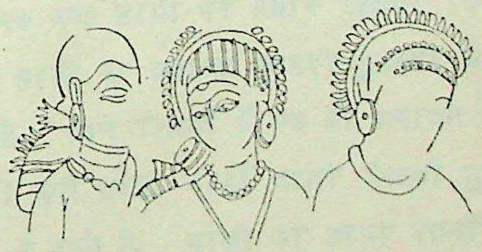

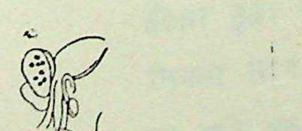

आ. 35, ए.

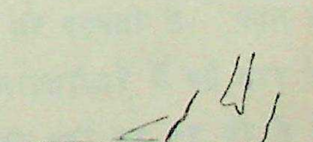

आ. 35, बी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में बुद्ध की सेवा रत एक स्त्री बिना कंधों और बाहों वाला धारीदार कंचुक और रत्न जटित छः पहली टोपी पहने है.[1] (फलक 21, आकृति 31). उसी चित्र में एक दूसरी स्त्री चौरबूटी टोपी (फलक 21, आकृति 32) और एक तीसरी स्त्री धारदार टोपी पहने है.

अजन्ता में एक जगह जमीन पर पीठ पीछे बैठी एक मध्य वर्ग की स्त्री एक नीचे काले और बिना बाँह की चोली पहने है जिसका ऊपरी हिस्सा हरा, पीला और नीला है और निचला हिस्सा धारीदार है.[2] (फलक 21, आकृति 33).

. हाथी पर सवार स्त्रियों की वेशभूषा: बाघ के भित्तिचित्र में एक जगह हाथी पर सवार स्त्रियाँ दिखलायी गई हैं. पृष्ठिका में हाथी का महावत सुनहरी सुनहरी धारियों वाली जाँघिया पहने है. तीन स्त्रियों में एक जो महावत के पीछे बैठी है, किमखाब की बनी छोटी बाहों वाली जिसकी मुहरियों पर हरी गोट लगी है पहने है. चोली का आगा स्तनों और पेट को ढँकता हुआ नीचे बढ़ता हुआ जाँघों पर समाप्त होता ह. इसका निचला भाग अर्धवृत्ताकार कटा है और दोनों छोर चाकदार है. एक स्त्री एक धारीदार घघरी भी पहनती है. एप्रन की तरह का उपरोक्त वस्त्र अजंता के भित्तिचित्रों में कई बार आ चुका है. तीसरी स्त्री का पहनावा पहली स्त्री का सा ही है केवल चोली का निचला भाग अर्ध वृत्ताकार न होकर सादा है. इसका कपड़ा

1. हेरिंगम, अजन्ता फ्रेस्कोज, प्लेट 42, 56
2. याजदानी, अजन्ता, भाग 1, प्लेट 11.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नीली चित्ती पड़ा हुआ पीला है.[1]

<u>अजँता के भित्तिचित्रों में स्त्रियों के शिरोवस्त्र एवँ मुकुट:</u>

अजँता के भित्तिचित्रों में प्रायः स्त्रियों का चित्रण नंगे सिर ही है, किंतु रानी एवँ अन्य उच्च श्रेणी की महिलायें कभी कभी मुकुट भी पहने हैं. कुछ सेविकायें टोपियाँ भी पहनती हैं. कभी कभी उनके स्थानिक शिरोवस्त्रों की भी झलक मिलती है. 17 वीं गुफा के एक भित्तिचित्र में एक स्त्री जिसके तन पर यों ही मामूली सा कपड़ा है, एक छपे अथवा कसीदा किए रूमाल से अपना सिर, ढँके है.[2] दूसरे नंबर की गुफा के एक चित्र में एक स्त्री धारीदार और कामदान टोपी पहने है. फीतों की तरह कँधों पर लटकती चिंदियाँ शायद टोपी की झालर की प्रतीक हैं[3] (फलक 21, आकृति 34). इस प्रकार का शिरोवस्त्र अजँता के भित्तिचित्रों में बहुत मिलता है.

<u>जंगली स्त्रियों की वेशभूषा:</u>

17 वीं गुफा के एक भित्तिचित्र में एक जंगली स्त्री पर्ण निर्मित घंघरी पहने दिखलायी गई है. इस घंघरी की बनावट बहुत सादी है, केवल पत्रों सहित टहनियाँ एक मनकों की तिलड़ी करधनी से आगे पीछे लटका दी गई है[4] (फलक 21, आकृति 34).

<u>ग्रामीण स्त्रियों की वेशभूषा:</u>

अजँता की चित्रकला का संबंध राजमहलों से है और इसमें

---

1. मार्शल, <u>दी बाघ केव्ज</u>, प्लेट जी
2. हेरिंगम, <u>अजन्ता फ्रेस्कोज</u>, प्लेट 35
3. याजदानी, <u>अजन्ता</u>, भाग 2, प्लेट 32 एवं 33
4. हेरिंगम, <u>अजन्ता फ्रेस्कोज</u>, प्लेट 27, 29

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आ : 36

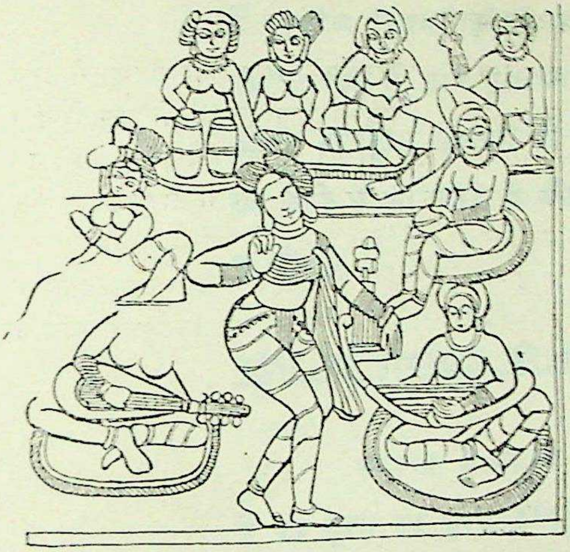

आ. 37

आ. 38

आ :39

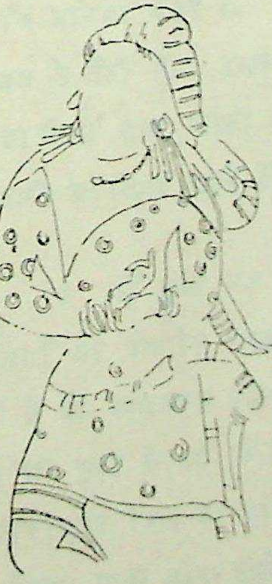

आ. 40

आ. 41

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ग्रामवासियों के चित्र कम ही आते हैं. अजंता के भित्तिचित्रों में ग्रामीण स्त्रियाँ छोटी साड़ी पहनती हैं. 2 री गुफा के एक भित्तिचित्र में अपने प्रसाधन में निरत ग्रामीण सकच्छ धारीदार छोटी साड़ियाँ पहनती हैं. उनके बाल या तो एक रूमाल से ढके होते हैं या फीते से बँधे होते हैं[1]. (फलक 21, आकृति 35, ए. बी.).

नर्तकी एवं नृत्यमंडली की वेशभूषा:

पवाया से प्राप्त एक प्राक् गुप्त या नाग युग के उतरंग में एक नृत्य का दृश्य अंकित है. इस अर्द्ध चित्र में आयी वेशभूषा का अत्यधिक महत्त्व है. इस दृश्य में आठ बजाने वाली मध्य में एक नर्तकी को घेर का बैठी हैं. यह नर्तकी घुटनों तक की धोती पीछे लाँग मारकर पहने है. उसकी छाती बायें कन्धे पर सकरमुद्री लगे वैकक्ष्य से ढँकी है. उसका केश वेश फेंकटदार है. पृष्ठिका में बजाने वालियाँ तथा नर्तकी तरह तरह की धोतियाँ और सामने बँधने वाली चोलियाँ पहने हैं.[2] (फलक 22, आकृति 36).

17 वीं गुफा एक भित्तिचित्र में मजीरा बजाती हुई एक परियों का गिरोह दिखलाया गया है. वे साड़ियाँ और सुंदरता से बँधे कमरबन्द पहनती हैं और उनके दुपट्टे पीछे फहकते हैं. 1 ली गुफा के एक भित्तिचित्र में एक गायक एक लम्बा नीला और धारीदार रेशम का बना कंचुक पहने है. धारियों के बीच में हम पेचक, वृषभ और हंसों की आलंकारिक आकृतियाँ देखते हैं[3]. (फलक 22, आकृति 37). ये अलंकार पड़ी पट्टियों में है

1. प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम की प्रतिकृति से.
2. मोतीचन्द्र, प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृष्ठ 288
3. हेरिंगम, अजन्ता फ्रेस्कोज, प्लेट 57

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिनके दोनों ओर वृत्तों से सजी पट्टियाँ हैं. उसी गिरोह में एक नर्तकी चूँदरी का बना कंचुक पहनती है.

पहली गुफा के महाजनक जातक वाले भित्तिचित्र में नर्तकी एक लम्बा, गहरा भूरे रंग का वृत्तों से अलंकृत पूरे बाँह का कंचुक पहने है.[1] (फलक 22, आकृति 38). इस कंचुक के ऊपर एक एप्रन जैसा वस्त्र है जिसके पक्ष अंग संचालन की सुविधा के लिए ऐसे कटे हैं कि उसके निचले कोने अलग से झूलते हैं[2]. उसका लम्बा घाघरा बैंगनी, हरी और पीली धारियों से सुसज्जित है जिनकी सफेद जमीन पर नग बने हैं. ढोल बजाने वाली की छाती एक धारीदार स्तनपट्ट से, जिसकी गठी पीछे बँधी है और छोर नीचे लटक रहे हैं, ढँकी है. उसकी जाँघिया अथवा घघरी के बीच में एक नग जवाहिर से सुसज्जित पट्टी लगी है (फलक 22, आकृति 39).

बाघ के भित्तिचित्र में गायिकाओं के दो समूह चित्रित हैं. बायीं ओर के गिरोह में एक नर्तकी को चारों ओर से घेरकर सात बजाने वालियाँ खड़ी हैं. नर्तकी एक पूरे बाँह का हरियाली लिए हुए घुटने तक पहुँचता पीले रंग का कंचुक जो वृत बिंदु अलंकार से सुसज्जित है, पहने है. कंचुक चाकदार है और उसके मुहरियों और चाकदार किनारों पर गोट लगी है. चौड़ा कोणाकार गला लगता है. पीछे से पोशाक की सुंदरता बढ़ाने के लिए लगा दिया गया है. पाजामा हरियाली लिए हुए पीली

1. इस वस्त्र की तुलना सारनाथ से मिले गुप्तयुग के उत्तरंग पर एक नर्तकी के वस्त्र से कर सकते हैं.
साहनी, कैटलॉग ऑफ दी म्यूजियम ऑफ आर्कियोलाजी एट सारनाथ, प्लेट 27.
2. याजदानी, अजन्ता, भाग 1, प्लेट 12-13

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आ.43.बी.

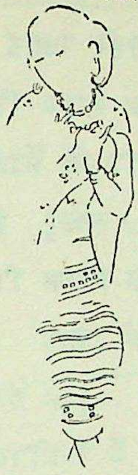

आ.43अ.

आ.42

'सतवरक' नामक पारसीक वस्त्र-धारिणी नर्तकी: अहिच्छत्रा से प्राप्त मृण्मूर्ति का निचला भाग

आ.44

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धारियों से सुसज्जित है और उसका कंचुक खूब बैठता है।[1] (फलक 22, आकृति 40)। उसका सिर सुनहली धारियों वाले एक रूमाल से ढँका है। टिपरी बजाने वाली, जो ढोल बजाने वाली के बगल में खड़ी है, के बायें कंधे पर एक नील और सुनहली धारियों वाला दोहरा रूमाल है (फलक 22, आकृति 41)। उसके बगल में खड़ी एक दूसरी टिपरी बजाने वाली हरी और नीली धारियों वाला घाघरा पहने है। उसका कंचुक का बढ़ाया गया गला खुला है (फलक 23, आकृति 42)। नर्तकी के दाहिनी ओर खड़ी तीन टिपरी बजाने वालियों में बीच वाली एक आस्मानी रँग की आधे बाँह की कंचुकी पहने है जो छाती को ढकती हुई घुटनों तक पहुँचती है। घघरी में हरी धारियाँ हैं और उनके बीच की सादी पट्टियों पर कटकुट है (फलक 23, आकृति 43 ए. बी.)।

बजाने वालियों और नर्तकी के दूसरे समूह में बैठी हुई नर्तकी पहले समूह की नर्तकी जैसा ही पहरावा पहने है। उसके पीछे खड़ी एक बजाने वाली फाख्तई रंग की चोली जो शायद रूपहले किंखाब की बनी है, पहने है। उसकी एप्रन की काट पहले गिरोह की एक गाने वाली के कंचुकी की काट जैसी है।

बाघ के एक और भित्तिचित्र में एक स्त्री गायिकाओं का गिरोह है उसमें सब की सब चोलियाँ पहने हैं। बीच वाली नायिका सफेद चित्ती वाली हरी चोली पहने है। उसके बायीं ओर वाली नर्तकी मुकुट पहने है और उसका जूड़ा एक सफेद रूमाल से ढँका है, उसके नीचे कंचुक पर एक एप्रन की शक्ल का वस्त्र है। नर्तकी की बगल वाली नायिका आसमानी रंग की आधे बाँह की

---

1. मार्शल, दी बाघ केव्ज, प्लेट डी.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

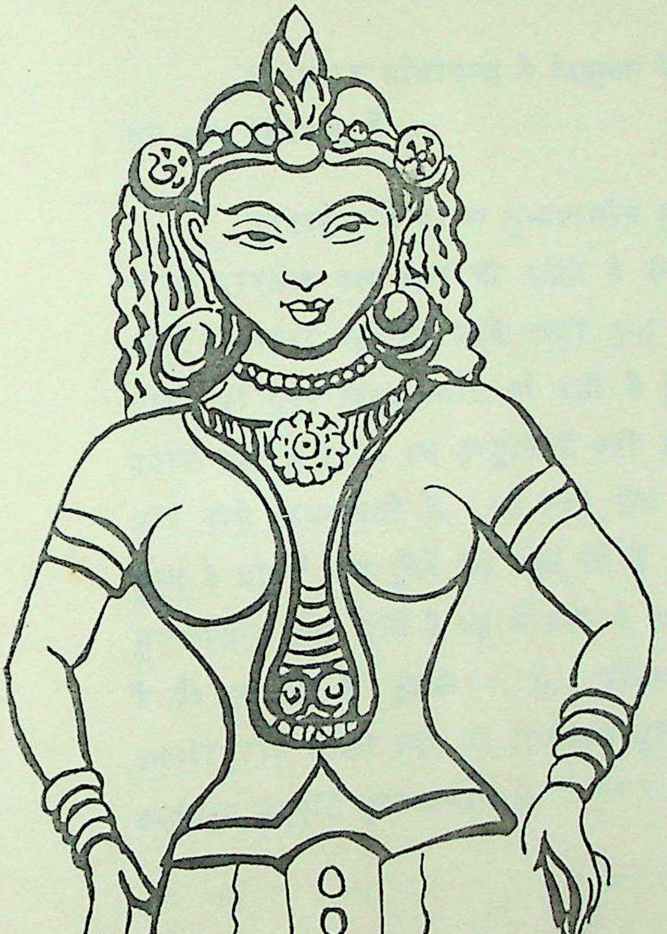

ऊपर चोली और नीचे घाघरा पहने स्त्री, अहिच्छत्रा की मृण्मूर्ति
का रेखाचित्र
(राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चोली पहने है.[1]

इस प्रकार मोतीचन्द्र ने वेशभूषा के विभिन्न प्रकारों का वर्णन किया है.[2]

अहिच्छत्रा से प्राप्त गुप्तकालीन मृण्मूर्ति "स्तवरक" नामक पारसीक वस्त्र धारिणी नर्तकी के निचले हिस्से का है, इसमें यह नर्तकी एड़ी तक नीचे साड़ी नुमा वस्त्र पहने है जिसमें साड़ी की चुनन स्पष्ट प्रतीत हो रही है (फलक 24, आ. 44) इसी प्रकार यहीं से प्राप्त एक मृण्मूर्ति में स्त्री ऊपर कसी हुई चोली और नीचे दामन पहने है. यह स्त्री सिर पर मुकुट लगाये है मुकुट के दोनों ओर फुँदने जैसे लटक रहे हैं (फलक 24). एक अन्य गुप्तकालीन स्त्री मूर्ति के धड़ में स्त्री के स्तन किसी भी वस्त्र से ढँके हुए नहीं हैं (फलक 25.1). अहिच्छत्रा से ही प्राप्त स्तनोत्तरीय सहित स्त्री की उर्ध्वकाय मूर्ति महत्वपूर्ण है. यह उर्ध्वकाय मृण्मूर्ति गुप्तकालीन है. (फलक 25.2)

---

1. मार्शल, दि बाघ केव्स, प्लेट सी.
2. मोतीचन्द्र, प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृष्ठ 219-230

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आभूषण:

गुप्तकाल में नारियाँ अपने शरीर को सुंदर एवं आकर्षक बनाने के लिए प्रचुर मात्रा में आभूषणों का प्रयोग करती थीं. स्त्रियाँ आभूषण प्रिय होती थीं. स्त्रियों में आभूषण प्रियता के अतिरिक्त आभूषण पहनना सामाजिक अनिवार्यथा भी थी. इस सामाजिक अनिवार्यता का सुंदर उदाहरण हमें कुमारगुप्त [1] तथा बंधुवर्मन के मंदसौर प्रस्तर अभिलेख से मिलता है. कौशेय निर्मित वस्त्र का महत्त्व बताते हुए इस अभिलेख में कहा गया है कि "तारूण्य तथा सौंदर्य से युक्त होने पर भी तथा सुवर्ण हारों, ताम्बूल एवं पुष्पों से प्रसाधन हुए होने पर भी कोई स्त्री कौशेय निर्मित वस्त्र युग्म धारण किए बिना अपने प्रिय से मिलने नहीं जाती थी. प्राचीन काल में स्त्रियाँ आभूषणों से प्रसाधित होकर ही पति से मिलने जाती थीं. बिना आभूषणों के पति के समक्ष जाना अशुभ माना जाता था. वात्स्यायन[2] ने पति से मिलने के लिए वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होना अनिवार्य बताया है. विश्ववर्मन के गंगधार प्रस्तर लेख से स्पष्ट होता है कि आभूषणों से रहित स्त्रियों के सुंदर मुखों की शोभा नष्ट हो जाती थी. कभी कभी पति भी स्वयं अपनी प्रिया पत्नी को आभूषण से सजाते थे.[3]

गुप्तकाल में विधवाओं की अवस्था में हमने देखा कि विधवाओं को आभूषणों से अलंकृत होना निषेध था अत: सौभाग्यवती

1. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3, संख्या 18.11 कुमारगुप्त तथा बंधुवर्मन का मंदसौर प्रस्तर अभिलेख, पृष्ठ 105
2. नायकस्य च न विमुक्ताभूषणं विजने संदर्शने तिष्ठेत.

—कामसूत्र
3. फ्लीट, भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग 3, संख्या 17.10 विश्ववर्मन का गंगधार प्रस्तर लेख, पृष्ठ 96

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्त्रियों को आभूषणों से अलँकृत होना अनिवार्य था.

गुप्त सम्राटों की मुद्राओं से भी हमें विभिन्न प्रकार के नारी आभूषणों के प्रचलन का प्रमाण मिलता है. चन्द्रगुप्त प्रथम तथा कुमार देवी की स्वर्ण मुद्रा के राजारानी प्रकार सिक्कों के राजा रानी को कुछ भेंट कर रहा है. विभिन्न मुद्राओं पर भेंट की वस्तु पृथक पृथक प्रकट होती है. एक स्थान पर यह अँगूठी मालूम होती है तथा दूसरे स्थान पर यही वस्तु कँकण अथवा कड़ा जैसा प्रतीत होता है.[1]

गुप्तकाल में स्त्रियाँ आभूषण पहनने की शौकीन थीं. अतः वे विभिन्न प्रकार के आभरण[2], भूषण[3] तथा मण्डन[4] से अपने शरीर को अलँकृत करती थीं. कालिदास के ग्रँथों <u>रघुवँशम्</u>, <u>कुमारसँभवम्</u>, <u>मेघदूतम्</u>, <u>ऋतुसँहार</u>, <u>अभिज्ञानशाकुन्तलम्</u>, <u>विक्रमोंवशीयम्</u> तथा <u>मालविकाग्निमित्रम्</u> में आभूषणों तथा अलँकरण के अनेक प्रकारों का वर्णन मिलता है.

---

1. अल्तेकर, <u>गुप्तकालीन मुद्रायें</u>, पृष्ठ 19
2. <u>ऋतुसँहार</u>, 2. 12,
   <u>कुमारसंभवम्</u>, 3. 53, 7. 21
   <u>रघुवँशम्</u>, 14. 54, 16. 41, 86.
   <u>उत्तरमेघ</u>, 13. 15
   <u>मालविकाग्निमित्रम्</u>, 5. 7
   <u>विक्रमोंवशीयम्</u>, अँक 3, पृष्ठ 198
3. <u>रघुवँशम्</u>, 18. 45, 19. 45
   <u>उत्तरमेघ</u>, 12
   <u>ऋतुसँहार</u>, 1. 12
4. <u>कुमारसँभवम्</u>, 1. 4, 7. 5
   <u>उत्तरमेघ</u>, 12
   <u>अभिज्ञानशाकुन्तलम्</u>, 6. 6

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुप्तकाल में आभूषण मुख्यत: 4 प्रकार के होते थे:

1. रत्नजटित आभूषण,[1]
2. स्वर्णाभूषण,[2]
3. मुक्ताभूषण,[3]
4. पुष्पाभरण,[4]

State Museum Library Lucknow 7226

गुप्तकाल में स्त्रियाँ निम्नलिखित प्रकार के आभूषणों से अलँकृत होती थीं. कालिदास ने इनका विस्तृत वर्णन किया है:

1. सिर के आभूषण: वराहमिहिर ने 5 प्रकार के सोने के पदटों में महिषी पदट का भी उल्लेख किया है.[5]

2. कानों के आभूषण: कर्णपूर[6], कुण्डल[7], कनककमल[8], अवतंस[9] इत्यादि का प्रयोग स्त्रियाँ कानों के आभूषणों के रूप में प्रयोग करती थीं.

3. कण्ठाभूषण: मुक्तावली[10], तारहार[11], हारशेखर[12], हारयष्टि[13], हार[14], स्तन लम्बिहार[15], निर्धौतहार[16]

---

1. ऋतुसँहार, 2.5, 2.20, 3.27, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 6.6
2. ऋतुसँहार, 3.19
3. उत्तरमेघ, 30, 38, 49, रघुवँशम्, 13.48, 1945; पूर्वमेघ, 34; कुमारसंभवम्, 7.89
4. ऋतुसँहार, 2.18, 25, 3.19, 4.2, 5.8; मालविकाग्निमित्रम्, अंक 3, पृष्ठ 305-6
5. बृहत्संहिता, 48.24; अग्रवाल, वासुदेवशरण, हर्षचरित, एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ 98
6. रघुवँशम्, 7.27, कुमारसंभवम्, 8.62; ऋतुसंहार, 2.25
7. ऋतुसंहार, 2.20, 3.19
8. उत्तरमेघदूतम्, 11
9. कुमारसम्भवम्, 6.91, 48, रघुवंशम्, 16.61, 13.49; विक्रमोर्वशीयम्, 5.15
10. रघुवंशम्, 13.48
11. रघुवंशम्, 5.52,
12. ऋतुसंहार, 1.6; कुमारसम्भवम्, 8.68
13. ऋतुसंहार, 1.8
14. ऋतुसंहार, 1.2, 28, 2.18, 3, 3, 20, 6.7
15. रघुवंशम्, 6.60, 16.43
16. रघुवंशम्, 5.70

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन्द्रनील मुक्तामयी[1], मुक्ताकलाप[2], निठक[3], रत्नानुविद्धप्रालम्ब[4], मुक्ताजाल[5] इत्यादि हारों के विभिन्न प्रकारों का स्त्रियाँ प्रयोग करती थीं. इनकी बनावट में थोड़ा थोड़ा अंतर होता था.

4. <u>कराभूषण:</u> अंगद[6], केयूर[7], वलय[8], अँगूठी[9], तथा कटक[10] ये पाँच प्रकार के कराभूषण स्त्रियाँ पहनती थीं. स्त्रियों के इन आभूषणों में घुँघरू आदि की कोई न कोई विशेषता रहती थी.

5. <u>कटि के आभूषण:</u> स्त्रियाँ कमर में मेखला[11], रशना[12], कनककिंकिणि[13] एवं कांची[14] ये ही आभूषण पहनती थीं.

---

1. <u>रघुवंशम्</u>, 13.54
2. <u>कुमारसंभवम्</u>, 1.42
3. <u>कुमारसंभवम्</u>, 2.49
4. <u>रघुवंशम्</u>, 6.14
5. <u>उत्तरमेघदूतम्</u>, 11
6. <u>रघुवंशम्</u>, 6.14, 53, 16.60
7. <u>रघुवंशम्</u>, 6.56, 7.50
8. <u>रघुवंशम्</u>, 6.68, 7.50 <u>कुमारसंभवम्</u>, 7.69, 16.56
   <u>पूर्वमेघ</u>, 65
9. <u>रघुवंशम्</u>, 6.18
   <u>अभिज्ञानशाकुन्तलम्</u>, अंक 6, पृष्ठ 98, 22, 60, 76, 97, 112
   <u>मालविकाग्निमित्रम्</u>, अंक 2, पृष्ठ 263
10. <u>मालविकाग्निमित्रम्</u>, अंक 2, पृष्ठ 286
11. <u>कुमारसंभवम्</u>, 1.38, 8.26, 83, 67, 89, 14, 7.61
    <u>रघुवंशम्</u>, 10.8, 15.1, 19.17, 25.40
12. <u>रघुवंशम्</u>, 7.10 <u>कुमारसंभवम्</u>, 5.10, 7.10
    <u>ऋतुसंहार</u>, 3.3 <u>मालविकाग्निमित्रम्</u>, अंग 3, पृष्ठ 311
    <u>विक्रमोर्वशीयम्</u>, 4.52
13. <u>रघुवंशम्</u>, 13.23
14. <u>ऋतुसंहार</u>, 2.20, 6.7, 3.26, 4.4

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

6. <u>पैरों के आभूषण:</u> नूपुर[1] स्त्रियाँ पैरों में पहनती थीं, नूपुर का अर्थ बिछुआ न होकर पायल था.

<u>पुष्पाभरण:</u>

स्वर्ण तथा रत्न जटित आभूषणों की तरह ही स्त्रियाँ ऋतुओं के अनुकूल पुष्पों के आभूषणों से शरीर को अलँकृत करती थीं. केशों को कुरबक, नवकदम्ब, नवकेशर, केतकी, मधूक, वकुल, मालती, चम्पा, जुही, रक्तकदम्ब, अशोक, नवल्लिका इत्यादि के फूलों से अलँकृत करती थीं. कानों में शिरीष, यवांकुर, नवकदम्ब, नील कमल, नवकर्णिकार, कमलनाल, आम्रमंजरी, अशोक तथा कुकुमद्रुम मंजरी के अवतंस पहनती थीं. वक्षस्थल पर फूलों अथवा कमल तंतुओं की माला अथवा हार पहनती थीं. मृणाल के कर वल्य पहनती थीं. फूलों की कांची पहनती थीं, जिसमें केसरदाय कांची विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है.

इन विभिन्न आभूषणों का प्रचलन हमें गुप्तकालीन मुद्राओं, मूर्तियों एवँ भित्तिचित्रों में मिलता है. चन्द्रगुप्त प्रथम के राजा रानी प्रकार स्वर्ण मुद्राओं में रानी कुमारदेवी कुण्डल, हार एवँ कँकण पहने है.[2] इसी प्रकार समुद्रगुप्त के अश्वमेध प्रकार की स्वर्णमुद्राओं में महिषी दत्तदेवी कुण्डल, हाल, भुजदण्ड तथा कंकण पहने हुए हैं. चन्द्रगुप्त द्वितीय के राजारानी प्रकार स्वर्ण मुद्राओं में रानी दोनों हाथों में दस्तबन्द, कर्णफूल (कुण्डल) सिरका आभूषण तथा हार पहने है. रानी पायल भी अधिक पहने हैं.[3]

---

1. <u>कुमारसंभवम्</u>, 1.34, <u>ऋतुसंहार</u>, 1.5
   <u>रघुवंशम्</u>, 8.63, <u>मालविकाग्निमित्रम्</u>, पृष्ठ 299, 302
2. अल्तेकर, <u>गुप्तकालीन मुद्रायें</u>, 1972, पृष्ठ 24-25
3. अल्तेकर, <u>गुप्तकालीन मुद्रायें</u>, 1972, पृष्ठ 98

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

-स्त्री-मूर्ति का धड़;
अहिच्छत्रा से; गुप्तकाल
(राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली)

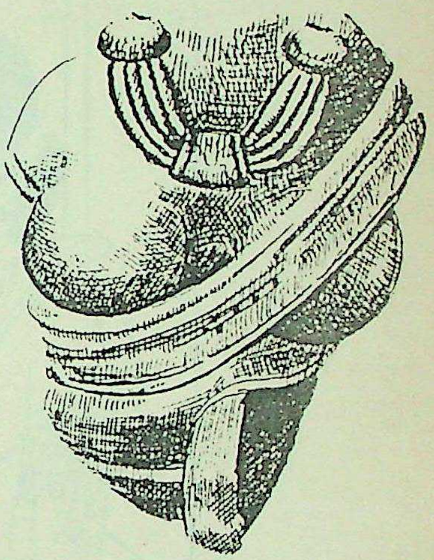

-स्तनोत्तरीय सहित स्त्री की उर्ध्वकाय
मूर्ति; अहिच्छत्रा से; गुप्तकाल
(राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राहुल-जननी, अजन्ता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुमारगुप्त प्रथम के वीणाधारी प्रकार की स्वर्णमुद्रा में रानी या देवी कुण्डल, हार तथा कंकण पहने हुए है[1] तथा राजा रानी प्रकार स्वर्ण मुद्रा में भी कर्णफूल, हार एवँ कंकण पहने है.[2]

इसी प्रकार समुद्रगुप्त, काच, चन्द्रगुप्त द्वितीय, कुमारगुप्त प्रथम इत्यादि की मुद्राओं में अँकित, देवी लक्ष्मी अथवा गँगा, कर्णफूल, हार, भुजबंद, कंकण, पायल एवँ करधनी पहने हुए हैं. एक स्थान पर देवी टोपी पहने हैं जिसके सिरे पर मोतीयों की कलगी है.[3]

मथुरा से कई प्रकार की स्त्री आकृतियाँ मिली है. एक में स्त्री कुण्डल, हार तथा कंकण पहने है इसी प्रकार अहिच्छत्रा से स्त्री की मृण्मूर्ति का धड़ प्राप्त हुआ है जिसमें स्त्री गले में विभिन्न प्रकार के हार पहने हैं (फलक 25). एक अन्य चोली दामन पहने स्त्री की मृण्मूर्ति में वह शिरोच्छादन, कुण्डल, हार तथा कंकण पहने हुए है. (फलक 24).

अजन्ता के भित्तिचित्रों से तत्कालीन वेशभूषा तथा रहन सहन का पता चलता है. अजन्ता के भित्ति चित्रों में 17 वीं गुफा में अँकित माता एवँ पुत्र का चित्र महत्वपूर्ण है. इसमें माता ने हाथों में कई कंकण पहने रखे हैं जो संभवत: वैधव्य का सूचक है. कानों में कर्णावतंस का अभाव दरिद्रता का सूचक है. दूसरा चित्र राजकीय जुलूस का है इस जुलूस में स्त्रियाँ भी सम्मिलित हैं. यह

1. अल्तेकर, गुप्तकालीन मुद्रायें, 1972, पृष्ठ 148
2. अल्तेकर, गुप्तकालीन मुद्रायें, 1972, पृष्ठ 149
3. अल्तेकर, गुप्तकालीन मुद्रायें, 1972, पृष्ठ 50, 59, 63, 102, 81, 136-37, 145, 148-49 इत्यादि.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्र विस्तृत अलंकरण विधान की दृष्टि से महत्वपूर्ण है. इसमें स्त्रियों के हाथ में सुंदर कंकण हैं, वे गले में हार पहने हैं, कानों में सुंदर कर्णावतंस भी पहने हैं. स्त्रियों के बालों में ललाट के ठीक ऊपर एक प्रकार की अलँकार सामग्री दिखती है. सँभवत: यह सफेद फूलों का हार है अथवा कोई चाँदी का हार.

तीसरा दृश्य हाथियों के जुलूस का है जिसमें हाथी पर सवार होकर पुरूष एवँ स्त्रियाँ जा रही हैं. प्रधान हाथी पर सँभवत: राजा सवार होगा, दूसरे हाथियों पर स्त्रियाँ बठी हुई हैं जिन्होंने हाथ, कान तथा गले में अनेक आभूषण पहन रखे हैं तथा ये वस्त्रों तथा आभूषणों से ठीक प्रकार अलँकृत हैं.

ग्वालिय राज्य में स्थित बाघ की गुफाओं से भी तत्कालीन वेशभूषा पर प्रकाश पड़ता है. बाघ की 4 थी एवँ 5 वीं गुफाओं के पहले दृश्य में चित्रित स्त्री के हाथ में दो कंकण हैं. छठे दृश्य में हाथियों का जुलूस है, इनमें हाथी पर सवार पहली एवँ तीसरी स्त्री चोली पहने हुए है तथा दूसरी वस्त्रहीन है. ये सभी स्त्रियाँ कर्णाभूषण, मोतियों की माला तथा कँकण से सुशोभित हैं. बाघ की गुफाओं में चित्रित नर्तकी का चित्र महत्वपूर्ण है. यह नर्तकी आभूषणों से अलँकृत है. पवाया से प्राप्त गुप्तकालीन उतरंग में नर्तकी एवँ वाद्य बजाने वाली स्त्री गले ए में हार एवँ हाथों में एक या एक से अधिक कंकण पहने हुए हैं.

कवि कालिदास ने ऋतु के अनुकूल स्त्रियों की वेशभूषा का विस्तृत वर्णन किया है. गुप्तकाल में वस्त्र कई प्रकार के प्रयोग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में लाये जाते थे. अतः ऋतु के अनुसार वस्त्र के भी विभिन्न प्रकार उपलब्ध होते थे. इतना ही नहीं स्त्रियाँ ऋतु के अनुकूल आभूषण भी धारण करती थीं. अब विभिन्न ऋतुओं के अनुसार विभिन्न प्रकार की वेशभूषा का विस्तृत वर्णन करेंगे:

<u>ग्रीष्मकालीन वेशभूषा:</u>

ग्रीष्मकाल में मोटे मोटे वस्त्रों को त्याग कर मनुष्य पतले वस्त्र धारण करते थे.[1] स्त्रियां रेशमी वस्त्र पहन कर, स्तनों पर चन्दन लगाकर, नाना प्रकार के आभूषण धारण कर तथा केशों को सुगँधित कर पतियों को सुख देती थीं.[2] ग्रीष्म ऋतु में इतने पतले वस्त्र पहने जाते थे जो साँस से हवा में उड़ जायें[3]. रत्नों से जड़ी ओढ़नी ओढ़ती थीं.[4] अतः गुप्तकालीन नागरिक विलासप्रिय थे. वे अपनी सामर्थ्यानुसार विलास में निमग्न रहते थे.

<u>वर्षाकालीन वेशभूषा:</u>

स्त्रियाँ इस ऋतु में महीन तथा श्वेत वस्त्र धारण कर, सुंदर मुक्तामाला पहन कर केशों को केसर, केतकी तथा कदम्ब इत्यादि के फूलों से सजाती थीं[5] तथा स्वर्णजटित कुण्डल एवं रशना इत्यादि आभूषणों से अलंकृत होकर[6] काले अगरुयुक्त चन्दन का अवलेप कर[7] तथा मदिरापान करके[8] शयनागार में पति के सम्मुख जाती थीं.

---

1. <u>ऋतुसंहार,</u> 1.7
2. <u>ऋतुसंहार,</u> 1.4, 6, 12
3. <u>रघुवंशम्,</u> 16.43
4. <u>रघुवंशम्,</u> 16.43
5. <u>ऋतुसंहार,</u> 2.18, 26, 21
6. <u>ऋतुसंहार,</u> 2.20
7. <u>ऋतुसंहार,</u> 2.22
8. <u>ऋतुसंहार,</u> 2.18

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शरद्कालीन वेशभूषा:

शरद ऋतु में स्त्रियाँ अपनी घनी, घुँघराली एवँ काली लटों में मालती के फूल गूँथ कर, कानों में नीलकमल पहनकर, चन्दन से शरीर को सुगँधित कर तथा मोतियों के हार एवँ रशना से प्रसाधित होकर पति को आकर्षित करती थीं।[1]

हेमन्त कालीन वेशभूषा:

घोर शीत के आगमन के कारण स्त्रियाँ इस ऋतु में हार, कँगन इत्यादि आभूषण पहनना छोड़ देती थीं. साथ ही चँदन से शरीर को सुगँधित भी नहीं करती थीं. नये रेशमी वस्त्र तथा महीन चोली भी, वे अब नहीं पहनती थीं, लेकिन मुख को पत्र रचना एवं केशों को काले अगरू से शोभित करती थीं.[2]

शिशिर कालीन वेशभूषा:

शिशिर ऋतु में एक से एक शौकीन स्त्रियाँ भी मोटे मोटे वस्त्र[3] तथा कूर्पासक[4] पहनती थीं. वे नितम्बों पर रेशमी वस्त्र डालती थीं[5] तथा मदिरा पान करती थीं[6] चन्दन का प्रयोग छोड़कर स्त्रियाँ[7] स्तनों पर गर्मी के लिए केसर का अवलेप करती थीं.[8]

---

1. ऋतुसँहार, 3.1, 3, 19, 20
2. रघुवंशम्, 19.41 ऋतुसँहार, 4.2.5
3. ऋतुसँहार, 5.2
4. ऋतुसँहार, 5.8
5. ऋतुसँहार, 5.8
6. ऋतुसँहार, 5.10
7. ऋतुसँहार, 5.4
8. ऋतुसँहार, 5.9

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वसंतकालीन वेशभूषा:

वसंत ऋतु के आगमन होते ही स्त्रियाँ पुनः पुष्पमाला एवँ चन्दन का प्रयोग प्रारँभ कर देती थीं.[1] लाल दुकूल,[2] कुंकुम के रँग में रँगी चोली[3], कान एवँ केशों में कर्णिकार और अशोक के पुष्प[4], कंगन, रशना इत्यादि[5] के अलँकरण से स्त्रियों के शरीर पुनः सुँदर हो जाते थे. वे मुख पर पत्र रचना, वक्षस्थल पर प्रियंगु, कालीयक, कस्तूरी एवँ केसर का अवलेप लगाती थीं, तथा कालागुरू से सुगँधित एवँ महावर से रँगे महीनवस्त्र पहनने से उनके सौंदर्य में वृद्धि होती थी.[6]

ऋतुओं के अनुसार सौंदर्य प्रसाधन के अतिरिक्त विवाह के अवसर पर वधू का विशेष रूप से श्रृँगार किया जाता था. कालिदास ने इसका विशेष रूप से विस्तृत वर्णन किया है. सर्वप्रथम वधू के स्नान के पश्चात् उसके शरीर पर लोध्र मला जाता था, इसके पश्चात् कालेयक लगाया जाता था. केशों को सुगँधित वस्तुओं के धुँए से सुगँधित किया जाता था. गले में मधूक का हार पहनाया जाता था. ललाट पर हरिताल का टीका, आँखों में अँजन मुख पर चन्दनादि से पत्र रचना, अँग राग, आलता तथा लाक्षारस ये सभी वधू की शोभा को द्विगुणित कर देते थे. विवाह मुहूर्त में वह रेशमी वस्त्र अथवा हंस चिन्हितदुकूल अवश्य पहनती थी. विवाह में ओढ़नी ओढ़ना अनिवार्य था.[7]

1. ऋतुसँहार, 6.3, 7
2. ऋतुसँहार, 6.5
3. ऋतुसँहार, 6.5
4. ऋतुसँहार, 6.6
5. ऋतुसँहार, 6.7
6. ऋतुसँहार, 6.14, 15
7. कुमारसँभवम्, 7, 9-23

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुप्तकालीन समाज में आमोद प्रमोद:

गुप्तकाल में मनुष्य के सामाजिक एवँ धार्मिक जीवन का अध्ययन करने के पश्चात् एक महत्वपूर्ण पक्ष बचता है उनका भौतिक जीवन. स्त्रियाँ अपने मनोरँजन के लिए कौन कौन से साधन अपनाती थीं, किस ढँग से अपना विनोद करती थीं, इसका विस्तृत अध्ययन आवश्यक है. मनोरँजन के मुख्य साधनों में----उत्सव, प्रियता, जलक्रीड़ा, मृगया, पक्षीपालन, मद्यपान, चित्रकला, सँगीत एवँ अभिनय का विस्तृत अध्ययन आवश्यक है.

• उत्सव:

सामाजिक जीवन में आनंद के लिए मनुष्य समय समय पर उत्सवों का आयोजन करता था. वैसे भी मनुष्यों को उत्सव प्रिय होते हैं.[1] अपने हृदय के आल्हाद एवँ उमँग को व्यक्त करने का एकमात्र साधन उत्सव ही है, किंतु भारतीय प्राकृतिक साैंदर्य को देखकर, विश्वात्मा के सौंदर्य की कल्पना से विभोर होकर उत्सव मनाते हैं. अत: हम कह सकते हैं कि उत्सव प्रकृति से अनुप्राणित हैं. मनुष्य को सच्चा आनँद प्रकृति के नित्यप्रति नवीन स्वरूप को देखकर ही प्राप्त होता है. अत: प्रकृति के परिवर्तन पर फूलों को फूलता देखकर ही प्राय: उत्सवों की आयोजना की जाती थी.[2] प्रकृति के आधार पर मनाेय जाने वाले 2 उत्सव विशेष महत्व के हैं:

1. <u>कौमुदी महोत्सव:</u> यह शरद की पूर्णिका को

---

1. <u>अभिज्ञानशाकुन्तलम्</u>, अँक 6, पृष्ठ 104
2. <u>अभिज्ञानशाकुन्तलम्</u>, अँक , 4.9

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मनाया जाता था. इसका उल्लेख मुद्राराक्षस में हुआ है.[1] वात्स्यायन ने कामसूत्र में इसके लिए कौमुदी जागार: शब्द का प्रयोग किया है. उनके अनुसार यह देशव्यापी {महिमामानी} क्रीड़ा थी.[2] कालिदास ने कौमुदी महोत्सव का कहीं वर्णन नहीं किया है.

2. वसन्तोत्सव: गुप्तकाल में वसन्तोत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया जाताथा. कवि कालिदास ने वसन्तोत्सव,[3] ऋतूत्सव[4], वसन्तावतार[5] इत्यादि शब्दों का प्रयोग इसी संदर्भ में किया है. वसन्तोत्सव कई दिन तक चलता था तथा इसके अन्तर्गत कई प्रकार के उत्सव एवँ क्रीड़ायें शामिल थीं जिनमें मुख्य निम्न प्रकार हैं:

. मदनमहोत्सव: वसन्तोत्सव के अवसर पर यह उत्सव मनाया जाता था. इसका उल्लेख अभिज्ञानशाकुन्तलम् में है.[6] इस उत्सव में कामदेव की आम्रमंजरियों से पूजा की जाती थी. कामसूत्र में जिसे सुवसन्तक उत्सव कहा गया है.[7] वह संभवत: मदनोत्सव ही है. इसे नृत्य गीत वाद्य प्रधान क्रीड़ा कहा गया है.

. अशोकदोहद: यह वसन्तोत्सव का एक अँग था. सुँदरी स्त्री के पैरताड़न से अशोक में फूल लग जाते हैं, इस मान्यता से यह उत्सव मनाया जाता था. सुँदर वस्त्राभूषणों से अलँकृत सुँदरी स्त्री नूपुर पहनकर तथा चरणों में अशोक के पत्तों का आलता लगा

---

1. मुद्राराक्षस, अँक 6.
2. कामसूत्र, 1.4.42
3. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अँक 6, पृष्ठ 103
4. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अँक 6, पृष्ठ 101, रघुवंशम्, 9.46
5. मालविकाग्निमित्रम्, अँक 3, पृष्ठ 293
6. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अँक 6, पृष्ठ 102
7. कामसूत्र, 1.4.42

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर बायें पैर से अशोक पर आघात करती थीं.[1] यही पदाघात दोहद कहलाता था. अतः अशोक के फूलने पर यह उत्सव धूमधाम से मनाया जाता था. सब एक साथ कुसुम समृद्धि देखते थे.

.<u>दोला:</u> यह भी वसंतोत्सव का एक अँग था. राजा एवँ रानी दोनों ही "दोलोत्सव" में भाग लेते थे.[2] उनके दोले प्रायः उनके परिजन ही हिलाते होंगे. रानियाँ झूला झूलने में पटु होती थीं. इस अवसर पर होली की तरह पिचकारियों में रँग भर कर लोगों पर {रंगोदक} डाला जाता था.[3]

.<u>नाटक:</u> मनोरँजन के लिए नाटक भी खेले जाते थे. वसंतोत्सव पर <u>मालविकाग्निमित्रम्</u>[4] नाटक सबके सामने पहली बाद खेला गया था.

सामान्य वर्ग की स्त्रियाँ वसंतोत्सव में विशेष रूप से राग रंग मनाती थीं. वे सिर पर चम्पे के फूलों का जूड़ा बनाकर, स्तनों पर मनोहर फूलों की माला पहनती थीं.[5] स्तनों पर केसर के रँग में रँगी चोली[6] तथा कुसुम्भ के फूलों से रँगी लाल साड़ी, कानों में कर्णिकार के फूल, चंचल, काली, घुँघराली अलकों में अशोक के फूल और नवमल्लिका की कलियाँ इत्यादि[7] वसंतकालीन श्रृँगार करती थीं. श्रृँगार कर वे अपने पतियों के पास जाती थीं तथा कामसुख को अनुभव करती एवँ कराती थीं.

1. <u>मालविकाग्निमित्रम्</u> का अँक 3 तथा 5 वाँ पूरा अँक.
2. <u>मालविकाग्निमित्रम्</u>, का अँक 3 पूरा इसी वर्णन से भरा है.
3. <u>रघुवंशम्</u>, 16.70
4. <u>मालविकाग्निमित्रम्</u>, अँक 1, पृष्ठ 26।
5. <u>ऋतुसंहार</u>, 6.3
6. <u>ऋतुसंहार</u>, 6.5
7. <u>ऋतुसंहार</u>, 666

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसके अतिरिक्त "पुत्र जन्मोत्सव" होता था. पुत्रजन्म के अवसर पर आमोद प्रमोद एवँ नृत्यगीत से सारे शहर में धूम मच जाती थी. वारवनिताएँ नृत्य करती थीं एवँ मंगल वाद्य बजते थे.[1] विवाहोत्सव के अवसर पर वर और कन्या की शोभा यात्रा निकलती थी जिसे स्त्रियाँ अपने घर के झरोखों से देखती थीं.[2] ऐसी ही शोभा यात्रा राज्याभिषेक के समय निकलती थी स्त्रियाँ झरोखे पर बैठ कर राजा को देखती थीं.[3] परिचारिकायें जय जय कार करती हुई चँवर हिलाती राजा के साथ ही चलती थीं.[4] राजा के स्वदेश आगमन पर भी इसी प्रकार की सवारी निकलती थी जिसको स्त्रियाँ झरोखों से देखती थीं तथा राजमहिषी को प्रणाम करती थीं.[5]

.पान भूमि रचना: यह भी एक प्रकार का उत्सव था, जिसमें स्त्रियाँ पति के साथ भाग लेती थीं. इसमें स्त्री पुरूष सभी साथ मिल जुलकर शराब पीते थे. रघुवँशम्[6] में अग्निमित्र के जूठे आसव को स्त्रियां बड़े प्रेम से पीती थीं तथा उन स्त्रियों के मुख के आसव (शराब) को अग्निमित्र पीता था. यह आजकल की काकटेल पार्टी जैसा ही उत्सव है. इसके पानशाला या मदिरालय में होने का उल्लेख मिलता है.

गुप्तकाल में युवती स्त्रियों की क्रीड़ायें:

युवती स्त्रियों के मनोरँजन एवँ क्रीड़ाओं की क्या

---

1. रघुवँशम्, 3.19
2. रघुवँशम्, 7.5
3. रघुवँशम्, 2.75
4. रघुवँशम्, 17.27
5. रघुवँशम्, 14.13
6. रघुवँशम्, 19.11-12

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यवस्था थी। इसका वर्णन महत्वपूर्ण है। वात्स्यायन ने "सहकारभंजिका" क्रीड़ा का उल्लेख किया है। कालिदास ने भी सहकारभंजिका क्रीड़ा का संकेत किया है।[1] युवती स्त्रियों द्वारा फूल तोड़ना[2], माला बनाना[3], पुष्पशय्या रचना[4], फूलों से स्वयं को अलंकृत करना, ये स्त्रियों के मात्र विनोद के ही साधन नहीं थे, अपितु उनकी परिष्कृत रूचि के भी परिचायक थे। "लीलागार"[5] शब्द से संकेत मिलता है कि निश्चित ही यह एक ऐसा स्थान होगा जहाँ विभिन्न प्रकार के खेल खेलने की सुविधा होगी। पेड़ों का विवाह करना भी युवती स्त्रियों की क्रीड़ा थी। वे किसी वृक्ष का किसी लता से विवाह करके अति प्रसन्न होती थीं। इन्दुमति ने आम और प्रियगुंलता का विवाह ठीक किया था।[6] इसी प्रकार अभिज्ञानशाकुन्तलम् में भी वन ज्योत्सना और सहकार के विवाह का वर्णन है।[7]

गुप्तकाल में कन्याओं की क्रीड़ायें क्या थीं इसका विस्तृत वर्णन अध्याय 2 में किया जा चुका है।

जल क्रीड़ा:

स्त्रियों के मनोरंजन का एक साधन जल क्रीड़ा या जल विहार भी था। ग्रीष्म ऋतु में गृहदीर्घिका[8], दीर्घिका[9] अथवा

---

1. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अँक 6, पृष्ठ 102
2. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अँक 4, पृष्ठ 57
3. मालविकाग्निमित्रम्, अँक 4, पृष्ठ 324
4. रघुवंशम्, 19.23, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अँक 3, पृष्ठ 43
5. रघुवंशम्, 8.95
6. रघुवंशम्, 6.61
7. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अँक 1, पृष्ठ 14
8. रघुवंशम्, 9.37
9. रघुवंशम्, 19.9

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नदी[1] में प्रायः जलक्रीड़ा से मनोरंजन किया जाता था. जल विहार से युवतियों के सुगंधित शरीर का स्पर्श पाकर जल भी महकने लगता था.[2] स्त्रियाँ अपने पतियों अथवा प्रेमियों के साथ मृदंग बजाने के समान थपकी दे देकर जल को ताड़ित करती थीं.[3] अथवा जल ताड़ना से मृदंग के समान ध्वनि निकलती थी. कभी एक दूसरे के मुख पर पानी डालती थीं[4] और कभी सोने की पिचकारियों से रंग छोड़ा करती थीं[5]. जलक्रीड़ा का एक रूप गूढ़ मोहन गृहों में सुरतोत्सव भी था.[6]

उद्यान यात्रा:

क्रीड़ा शैल[7], प्रमद वन[8] और उद्यान विनोद के प्रमुख केन्द्र थे. जहाँ विरहोद्दीप्तमन को बहलाने का प्रयत्न किया जाता था. उद्यान यात्रायें भी होती थीं. वात्स्यायन ने कामसूत्र में उद्यानयात्रा का वर्णन किया है. झूला झूलना भी स्त्रियों की प्रिय क्रीड़ा थी. वे अपनी प्रेमी प्रेमिकाओं के साथ झूला झूलती थीं.[9]

---

1. रघुवँशम्, 16.54
2. पूर्वमेध, 37
3. रघुवँशम्, 16.64, 16.13
4. रघुवँशम्, 16.66
5. रघुवँशम्, 16.70
6. रघुवँशम्, 19.9
7. उत्तरमेध, 17, 21, विक्रमोर्वशीयम्, पृष्ठ 188
8. विक्रमोर्वशीयम्, अँक 2, पृष्ठ 172,
   अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अँक 6, पृष्ठ 107
9. मालविकाग्निमित्रम्, अँक 3.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मृगया:

मृगया भी मनोरंजन का एक साधन था. स्त्रियों द्वारा मृगया का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण साहित्य में प्राप्त नहीं होता है. अभिज्ञानशाकुन्तलम्[1] में हाथ में धनुष लिए और गले में जंगली फूलों की माला पहने यवनी सेविकाओं का मृगया के समय राजा के साथ होने का वर्णन मिलता है. अहिच्छत्रा से प्राप्त एक धनुर्धारी स्त्री की मृण्मूर्ति में स्त्री धनुष लिए है. सम्भवत: यह मनोरंजन के लिए मृगया का संकेत हो. इसका विस्तृत विवरण तथा रेखाचित्र अध्याय 9 में किया गया है.

पशुओं की सवारी:

स्त्रियाँ पशुओं की सवारी भी करती थीं. बाघ की 4 एवं 5 वीं गुफा में घोड़ों एवं हाथियों पर सवार स्त्रियों के चित्र मिलते हैं.[2] इसी प्रकार अजंता की 17 वीं गुफा के तीसरे चित्र हाथियों का जुलूस का है. जिसमें हाथियों पर सुसज्जित तथा अलंकृत स्त्रियाँ सवार हैं.[3] अहिच्छत्रा से एक और मृण्मूर्ति प्राप्त होती है जिसमें मेषवाहिनी स्त्री है. निश्चित ही स्त्रियाँ मनोरंजन के लिए विभिन्न पशुओं की सवारी करती थीं. (मेष वाहिनी स्त्री का विस्तृत विवरण अध्याय 9 में है).

पक्षि पालन:

गुप्तकाल में शौकीन स्त्रियाँ अपने मनोरंजन के लिए

---

1. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अंक 2, पृष्ठ 27
2. मार्शल, दि बाघ केव्ज़, प्लेट 6
3. उपाध्याय, वासुदेव, गुप्त साम्राज्य का इतिहास, भाग 2, पृष्ठ 309

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनेक प्रकार के पक्षी पालती थीं. मृच्छकटिकम् में वसंतसेना के महल के सातवें प्रकोष्ठ में शुक, सारिका, कोयल, काक, तित्तिर, चातक, कबूतर, मोर और हँस इत्यादि पक्षियों के पालने का उल्लेख मिलता है.[1] कालिदास ने भी शुक, सारिका, मयूर इत्यादि का वर्णन किया है.[2] स्त्रियाँ इन क्रीड़ा पक्षियों से पूछकर——"क्या तुम अपने जिस पति की प्यारी हो, उसे कभी स्मरण करती हो".[3] या हाथों से तालियाँ बजा बजाकर मोर इत्यादि को नचाकर[4] विरहिणी स्त्रियाँ अपना मनोरंजन करती थीं. पहाड़पुर से प्राप्त हँस, मयूर, कोकिल इत्यादि के चित्रों से इन पालतू पक्षियों की पुष्टि होती है.[5]

<u>मद्यपान:</u>

स्त्रियाँ मनोरंजन के लिए मद्यपान भी करती थीं. कालिदास ने स्त्रियों द्वारा मद्यपान का अत्यधिक वर्णन किया है. तत्कालीन समाज में मदिरापान की प्रथा प्रचलित थी. कवि ने रतिप्रसंग में बार बार इसके महत्त्व एवं प्रभाव का वर्णन किया है. कवि के अनुसार मधु स्त्रियों के नयनों को विभ्रम शिक्षा देने में दक्ष है.[6] स्त्रियाँ अपने मुख को सुवासित करने के लिए मधुपान करती थीं.[7] इससे उनके मुख से ताजे मौलसिरी के फूल सी सुगँध आती थी.[8] कालिदास ने मदिरा के लिए मद्य[9]

---

1. <u>मृच्छकटिकम्</u>, अँक 4,
2. <u>रघुवंशम्</u>, 17.20, 5.74, <u>मालविकाग्निमित्रम्</u>, 2.12
3. <u>उत्तरमेघ</u>, 25
4. <u>उत्तरमेघ</u>, 29
5. उपाध्याय, वासुदेव, <u>गुप्त साम्राज्य का इतिहास</u>, भाग 2, पृष्ठ 233
6. <u>उत्तरमेघ</u>, 12
7. <u>ऋतुसंहार</u>, 4.12, 1.3, 5.10
8. <u>कुमारसम्भवम्</u>, 8.76
9. <u>ऋतुसंहार</u>, 5.10

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आसव[1], मधु[2], वारूणी[3], कादम्बरी[4], शीधु[5], मदिरा[6], इत्यादि शब्दों का प्रयोग किया है. निश्चित ही इनमें हलकी, तेज एवं रंग और प्रकार आदि का अन्तर रहा होगा. स्त्रियों द्वारा मद्यपान का वर्णन हमें कालिदास के साहित्य को छोड़कर कहीं भी प्राप्त नहीं होता. गुप्तकालीन अभिलेखों या सिक्कों पर भी नहीं. हाँ स्मृतियों में मद्यपान करने वाली स्त्री को दँड की व्यवस्था अवश्य है. मद्यपान पातकों में गिना गया है.

<u>चित्रकला:</u>

मनोरंजन के साधनों में संगीत एवं नृत्य के समान ही चित्रकला का भी प्रचार था. स्त्रियाँ पुरूषों के समान ही चित्र कला में निपुण होती थीं. विरही स्त्रियों द्वारा अपने विनोद के लिए चित्र बनाने का उल्लेख कालिदासने किया है.[7] मात्र विरहावस्था में ही नहीं चित्रकला एक शौक के रूप में भी प्रचलित थी, चित्रकला शब्द से ऐसा संकेत मिलता है.[8]

---

1. रघुवंशम्, 4.42, 19.12
2. रघुवंशम्, 8.68, 4.65
3. कुमारसंभवम्, 4.12
4. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अँक 6, पृष्ठ 101, 162
5. रघुवंशम्, 16.52, 19.46
6. रघुवंशम्, 8.68, 4.65
   विक्रमोर्वशीयम्, 2.13, 4.42
7. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अँक 6, पृष्ठ 114
   उत्तरमेघ, 25
   विक्रमोर्वशीयम्, अँक 2, पृष्ठ 178
8. मालविकाग्निमित्रम्, अँक 1, पृष्ठ 264

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

<u>सँगीत एवँ अभिनय:</u>

सँगीत का महत्त्व प्राचीनकाल से ही है. संगीत ललित कला का ही एक अंग है. वात्स्यायन ने <u>कामसूत्र</u> में प्रत्येक नागरिक के लिए संगीत का ज्ञान अनिवार्य बताया है. संगीत न केवल सांसारिक आमोद प्रमोद का साधन था अपितु यह ईश्वर की आराधना एवँ आध्यात्मिक विकास में भी अत्यंत सहायक था.

वात्स्यायन ने ललित कला के महत्त्व को समझाते हुए <u>कामसूत्र</u> में 66 कलाओं की सूची देते हुए उनकी शिक्षा नागरिकों के लिए अनिवार्य बताई है. इन 66 कलाओं में गायन, वादन, नर्तन, अभिनय का महत्वपूर्ण स्थान है. वात्स्यायन ने संगीत के मुख्य तीन अँग बताये हैं:

1. गीत,
2. वाद्य,
3. नृत्य.

गुप्तकालीन साहित्य में मनोरंजन एवँ आमोद प्रमोद के प्रसंग में संगीत के इन तीनों ही रूपों का उन्मुक्त वर्णन हुआ है. तत्कालीन साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन नागरिक का जीवन संगीत में डूबा हुआ था. संगीत परमसुख का प्रतीक होने के साथ ही लोक रंजन का प्रमुख साधन भी था. गुप्तकालीन स्त्री पुरुष सभी संगीत प्रिय थे एवं संगीत रस का आस्वादन लेते थे. गुप्तकालीन राजधरानों में संगीत की निरंतरता बनी हुई थी. इसकी निरंतरता में दिन या रात बाधक नहीं थे. सारा नगर ही संगीतमय होता था. इतना ही नहीं संगीत की शिक्षा हेतु नगर में संगीत शालायें

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आकृति 93. बाग : गायक-वृन्द

बागगुहा में अंकित
गान-नृत्य-दृश्य।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होती थीं.[1] संगीताचार्य होते थे. राजमहलों में भी इसकी व्यवस्था होती थी.

गुप्तकाल में गायन के स्वरूप को स्पष्ट करने वाला स्वतंत्र सिद्धाँत ग्रँथ हमें प्राप्त नहीं होता किंतु कालिदास के ग्रँथों से प्रमाणित होता है कि तब गायन ने एक व्यवस्थित सिद्धाँत का रूप ग्रहण कर लिया था. कालिदास के ग्रँथों से संकेत मिलता है कि गायन के साथ साथ वाद्य का भी प्रयोग किया जाता था तथा गीत के साथ ही नृत्य का भी योग था.[2] मालविकाग्निमित्रम् में हरिदत्त की आज्ञा से मालविका ने लोगों के समक्ष अपने गीत एवँ नृत्य का प्रदर्शन किया था.

बाघ की चौथी एवँ पाँचवी गुफा के चौथे दृश्य में स्त्री गायिकाओं के दो समूह चित्रित हैं. बाईं ओर के चित्र में सात स्त्रियाँ एक आठवीं स्त्री को घेरे हुए हैं. इन सात गायिकाओं में से एक मृदंग बजा रही है, तीन छोटी छोटी लकड़ियाँ बजा रही हैं तथा अन्य तीन झाल पीटती चित्रत हैं. दाहिनी ओर के दूसरे गायक समूह में गायिकायें एक नर्तक को घेरे हुए खड़ी हैं. इन स्त्रियों की संख्या छः है, जिनमें एक मृदंग, दो स्त्रियाँ झाल तथा तीन स्त्रियाँ एक जोड़ा लकड़ी बजा रही हैं. इस चित्र का दृश्य सब चित्रों से अधिक चित्ताकर्षक एवँ मनोरम है.[3]

चौथी एवँ पाँचवी गुफा के तीसरे दृश्य में दो चित्र

---

1. मालविकाग्निमित्रम्, अँक 1.
2. रघुवंशम्, 2.12
   मेघदूतम्, 1.60, 2.26
   मालविकाग्निमित्रम्, 2.8
3. मार्शल, दि बाघ केव्ज, प्लेट डी.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

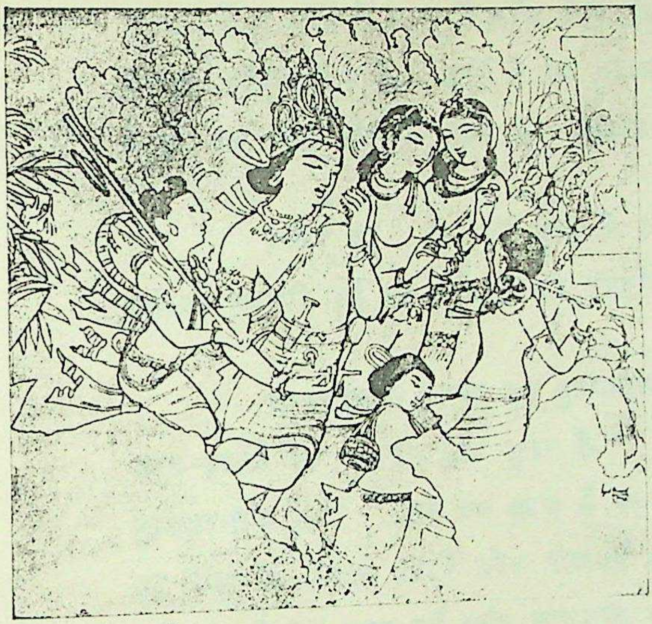

दिव्य गायक

गुप्त-काल, अजंता; १७वीं गुफा

वेस्सन्तर जातक

गुप्त-काल, अजंता; १७वीं गुफा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विभाग हैं. नीचे के भाग में पांच सिर दिखाई दे रहे हैं. जो सँभवत: नर्तकियों के हैं. इनमें से एक वीणा लिए हुए है. बाद्य से ही एक नर्तकी का भी चित्र है. (फलक).

अजँता की 17 वीं गुफा के एक भित्ति चित्र में मजीरा बजाती हुई एक परियों का गिरोह बताया गया है.[1]

सारनाथ से प्राप्त एक सुविशाल प्रस्तर खण्ड में क्षान्ति वाद जातक का कथानक खुदा हुआ है.[2] मार्शल के अनुसार यह गुप्तकालीन है.[3] इसके एक दृश्य में एक नृत्य करती हुई स्त्री का चित्र है, जिसके चारों ओर स्त्रियाँ खड़ी हैं, ये स्त्रियाँ बाँसुरी, भेरी, झाल एवँ मृदंग इत्यादि वाद्य बजा रही हैं. इस दृश्य से स्पष्ट है कि गुप्तकालीन समाज में नृत्य कितना लोकप्रिय था.

पवाया से प्राप्त गुप्तकालीन उतरंग में अंकित नृत्य दृश्य अतिमहत्वपूर्ण है. इसमें आठ वाद्य बजाने वाली बीच में एक नर्तकी को घेर कर बैठी हैं. ये आठ स्त्रियाँ वीणा, तबला इत्यादि विभिन्न प्रकार के वाद्य यँत्र लिए हुए हैं.

गुप्तकाल में पुत्रजन्म, विवाहोत्सव, राज्याभिषेक, इत्यादि महत्वपूर्ण अवसरों पर मनोरंजन के लिए नृत्य का आयोजन होता था. इन अवसरों पर वेश्यायें नृत्य करती थीं, तथा अपने

---

1. हेरिंगम, अजन्ता फ्रेस्कोज, प्लेट 57
2. सहानी, कैटलाग ऑफ म्यूजिम एट सारनाथ, पृष्ठ 234 नं. सी. (बी.)
3. आर्केलाजिकल सर्वे रिपोर्ट 1907-08, पृष्ठ 70-71

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भावपूर्ण नृत्य से राजा तथा अन्य व्यक्तियों को सम्मोहित करती थीं.[1] कालिदास ने रागानुरागी अग्निवर्ण का वर्णन करते हुए लिखा है कि वह वेश्याओं के नृत्य से आनँदित होता था तथा नृत्य उसके मनोरंजन का प्रधान साधन था.[2] मृच्छकटिकम् में वेश्या वसन्तसेना का मुख्य कार्य नाचना एवँ गाना था.

अत: प्राचीनकाल से ही नृत्यकला नारी प्रधान रही है. नृत्य की लोकप्रियता गुप्तकाल में इतनी अधिक थी कि लड़कियाँ घर के भीतर ही नृत्य की शिक्षा लेती थीं. परिवार के बाहर भी उसका व्यापक प्रचार था. मँदिरों, समाज एवँ राजदरबार सभी जगह नृत्य होते थे. धीरे धीरे नृत्य ने एक पेशे का रूप ग्रहण कर लिया था तथा लोगों के बीच नर्तकियों की सम्माननीय स्थिति थी. गुप्तकाल में नृत्य एकलनृत्य तथा समूह नृत्य दोनों प्रकार का होता था. इसके प्रमाण हमें देख चुके हैं.

गुप्तकाल में मनोरंजन के लिए अभिनय का भी महत्व था. नाटकों के प्रति लोगों में अभिरूचि थी. ये नाटक राज दरबारों में अभिनीत होते थे. वसंतोत्सव जैसे सार्वजनिक[3] तथा विवाहोत्सव जैसे पारिवारिक उत्सवों पर नाटकों का आयोजन होता था. इन नाटकों में स्त्री पुरूष दोनों समान रूप से भाग लेते थे एवँ अभिनय कला में प्रवीणता प्राप्त करते थे और स्वयं का तथा जनता का मनोरँजन करते थे.

गीत, नृत्य एवँ वाद्य यह एक त्रयी के समान है, जिनमें

---

1. रघुवँशम्, 5.65, 3.19
2. रघुवंशम्, 19.14-15
3. मालविकाग्निमित्रम्, अँक 2.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आपस में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है. जहाँ गीत होगा वहाँ वाद्य एवँ नृत्य की उपस्थिति अवश्यंभावी है. गुप्तकालीन समाज में नृत्यकला का अत्यधिक प्रचार था. अतः गुप्तकालीन संगीत से संबंधित सामग्री में हम गीत, नृत्य एवँ वाद्य तीनों का एक साथ समावेश पाते हैं.

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि स्त्रियाँ अपने तथा दूसरे के मनोरंजनार्थ समान रूप से नृत्य, गीत एवँ वाद्य कला का प्रदर्शन करती थीं. विभिन्न हर्षोल्लास के क्षणों को सजीवता से जीती थीं. आमोद प्रमोद के इन साधनों का अधिकता से उपयोग करती थीं तथा इन आमोद प्रमोद के साधनों का भरपूर उपयोग करने की स्त्रियों को व्यवस्था एवं पूर्ण स्वतंत्रता भी थी.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय : 11

सामाजिक सांस्कृतिक उन्नयन में
नारी का योगदान.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुप्तकाल में सामाजिक एवं सांस्कृतिक उन्नयन में नारी का योगदान महत्वपूर्ण है. सम्पूर्ण गुप्तकाल में नारियों को विद्या प्राप्ति की सुविधा थी. विद्याध्ययन के पश्चात् नारी ने अपने वैदुष्य एवं कृतित्व तथा नेतृत्व के माध्यम से सांस्कृतिक एवं सामाजिक उन्नयन में योगदान किया. शीला भट्टारिका तथा विज्जिका जैसी कवयित्री, लेखिका एवं नाटककार इसके प्रमाण हैं, इसका विस्तृत वर्णन अध्याय 9 में किया जा चुका है. गुप्तकाल में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नारियों के लिए विशेष उपलब्धि थी. उत्तराधिकार में सम्पत्ति मिलना, गृहस्वामिनी के रूप में वहदान पुण्य विषयक तथा दत्तक एवं अन्य प्रशासनिक अधिकारों की अधिकारी थी. इन विधिक स्वत्वों का विस्तृत वर्णन अध्याय 6 में किया जा चुका है.

गुप्तकालीन नारी इतनी जागरूक थी कि धार्मिक अनुष्ठानों तथा व्रतों एवं पर्वों में सहयोगी होती थी. वह धार्मिक दान एवं धार्मिक स्थापत्य के कार्य करती थी इन धार्मिक अधिकारों का विस्तृत वर्णन अध्याय 7 में किया गया है. शिक्षित नारियाँ अपने वैदुष्य से नेतृत्व की क्षमता रखती थीं. गुप्तकालीन प्रशासन में नारी की भूमिका राजमहिषी, महादेवी एवं परमभट्टारिका के रूप में महत्वपूर्ण है. प्रभावती गुप्ता एक सफल प्रशासिका थी. इसका विस्तृत वर्णन अध्याय 8 में किया जा चुका है. इस प्रकार गुप्तकाल में वैदुष्य, कृतित्व एवं नेतृत्व के माध्यम से सामाजिक, साँस्कृतिक उन्नयन में नारी का योगदान महत्वपूर्ण है.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय : 12

उपसंहार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतीय सँस्कृति के उन्मेषकाल में नारी की प्रतिष्ठा को पुरूष के समानान्तर ही स्वीकारा गया था. पूर्व वैदिक काल की सामाजिक, धार्मिक व्यवस्था में ऐसे संकेत प्राप्त होते हैं, कि इस कालखण्ड में महिलाओं की प्रतिष्ठित सामाजिक स्थिति थी. बौद्धिक एवँ अध्यात्मिक जीवन में उन्हें पुरूषों के समान ही स्थान प्राप्त था. दर्शन, काव्य तथा कर्मकाण्ड——तीनों ही क्षेत्रों में उनके व्यक्तित्व एवँ कृतित्व की स्पृहणीय भूमिका रही. ऋचाओं के दर्शन करने वाले द्रष्टाओं, अध्यात्मिक चिंतन करने वाले दार्शनिकों तथा कर्मकाण्ड के ज्ञाता ऋत्विजों जैसे प्रतिष्ठित पद

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी महिलाओं ने प्राप्त किए थे. वे धार्मिक कृत्यों अनुष्ठानों में पुरूषों के साथ सक्रिय सहभागी हुआ करती थीं.

उत्तर वैदिक युग में नारी का जीवन समुन्नत होते हुए भी पतनोन्मुख था. नारी के प्रति समान रूप से आदर एवँ अनादर के प्रमाण वैदिक साहित्य में प्राप्त होते हैं. इसके पश्चात् नारी की स्थिति में ह्रास होता प्रारँभ हो गया और गुप्तकाल आते आते तक नारी से उपनयन सँस्कार तथा अध्ययन के अधिकार छिन कर उसकी स्थिति शूद्र के समकक्ष हो गई. फिर भी नारी को पत्नी एवँ माता के रूप में समाज में स्थान प्राप्त था.

भारतीय सँस्कृति में वैदिक काल से ही पुत्र जन्म की कामना की जाती रही है किंतु गुप्तकाल में पुत्री की स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ. स्मृतिकार मनु ने ही पुत्री को हीन मानने वाली सँकीर्ण भावधारा का विरोध कर कहा कि पुत्री पुत्र के बराबर है. किंतु मनु की इस भावधारा से सामाजिक अथवा आध्यात्मिक मान्यताओं पर कोई असर नहीं हुआ. इतना ही नहीं, सम्पूर्ण गुप्तकाल में पुत्र प्राप्ति की कामना, पुत्री प्राप्ति के लिए किसी प्रकार व्रत, यज्ञ अथवा "पुत्रीवती" होने का आशीर्वाद देने का कहीं वर्णन नहीं मिलता.

गुप्तकालीन सम्राटों के अभिलेखों में पुत्री के महत्व को स्वीकारते हुए समुद्रगुप्त के लिए "लिच्छवि दौहित्र" कहा गया है. समुद्रगुप्त की माता कुमार देवी लिच्छवियों की पुत्री थी. चंद्रगुप्त प्रथम तथा कुमारदेवी के विवाह की इस ऐतिहासिक घटना ने, जिसके फलस्वरूप लिच्छवि राज्य गुप्तराज्य में मिला लिया गया, गुप्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कालीन मुद्रा को प्रभावित किया. "लिच्छवि दौहित्र" शब्द अधिकांश गुप्तकालीन नरेशों के अभिलेखों में वर्णित वंशावली में आया है. इसी प्रकार प्रवरसेन द्वितीय के अभिलेखों में भी प्रभावती गुप्ता को महाराजाधिराज श्री देव गुप्त की पुत्री कहा गया है. उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि गुप्त काल में पुत्री का महत्वपूर्ण स्थान था तथा वे अभिलेखों तथा मुद्राओं में महत्वपूर्ण स्थान पाती थीं. कालिदास ने कन्याओं के कर्तव्य उनकी क्रीड़ाओं, कन्या शिक्षा तथा कन्या के प्रति माता पिता के कर्तव्यों का विस्तृत वर्णन किया है. कन्या की पवित्रता एवं उसकी रक्षा के विषय में विधान स्मृतियों में है. निर्दोष कन्या को अकन्या कहने वाले व्यक्ति को राजा द्वारा आर्थिक दण्ड का विधान स्मृतियों ने दिया है. कुमारी कन्या से व्यभिचार करने वाले पुरूष को स्मृतियों में कड़े दण्ड की व्यवस्था की गई है. इस प्रकार गुप्तकाल में कन्या का महत्व था साथ ही सम्माननीय स्थिति थी. कन्या की शिक्षा सुरक्षा एवं पवित्रता की ओर पूरा ध्यान दिया जाता था. कन्या के चतुर्मुखी विकास के लिए यह आवश्यक भी था. कुमारी कन्या से व्यभिचार करने वाले को दण्डित करना इस बात का द्योतक था कि कन्या वास्तव में रक्षणीय थी, तथा पापकृत्य करने वाला दण्ड का भागी होता था.)

वैदिक युग में पत्नी को प्राप्त सम्मानित पद गुप्तकाल में भी था. वह पत्नी की "अर्द्धांगिनी", "सहधर्मचारिणी" तथा "धर्मपत्नी" थी. कालिदास ने इसका अनेक बार उल्लेख किया है. गुप्तकाल में पत्नी के रूप में नारी के "देवी", "महादेवी", "राज्ञी", "परमदेवी", "भट्टारिका", "परमभट्टारिका", "श्रीसम्पन्ना" इत्यादि उपाधियों से अभिलेखों में सम्मानित किया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गया. जो उनकी उच्च सामाजिक स्थिति का द्योतक है. यह तथ्य अध्ययन से पूर्णरूपेण स्पष्ट है.

गुप्तकालीन अभिलेखों के अध्ययन से स्त्रियों की सच्चरित्रता के संबंध में पता चलता है. पति के अनुकूल, श्रेयस्कर कार्य में तत्पर, सुँदर अच्छे आचरण वाली, आत्म संयमी, गुणशीला, पतिपरायणा, बुद्धिमान, भक्तिभावयुक्ता, अनुरक्ता पत्नियाँ ही इस सँसार में कीर्ति पाती हैं और परलोक में उत्तम गति. इस प्रकार का वर्णन अभिलेखों में मिलता है, इसके अतिरिक्त अच्छे कुल में उत्पन्न पत्नी द्वारा संतानोत्पत्ति भी सम्माननीय मानी जाती थी.

पत्नियाँ रानी के रूप में मात्र उपाधियाँ ही धारण नहीं करती थीं. अपितु राजा के साथ मुद्राओं पर भी स्थान पाती थीं. कुमारगुप्त प्रथम के तथा चन्द्रगुप्त द्वितीय के राजा रानी प्रकार सिक्के रानी के राजकीय महत्व को प्रकट करते हैं. इसी प्रकार अश्वमेध प्रकार सिक्कों में रानी का अँकन उनके धार्मिक महत्व एवँ अधिकार का परिचायक है. सम्पूर्ण सँस्कृत साहित्य एवँ स्मृति साहित्य में पत्नियों के कर्तव्यों का विस्तृत वर्णन है. इससेकह सकते हैं कि पत्नी का समर्पित जीवन ही अनुकरणीय माना जाता था.

ऋग्वैदिक काल से ही मातृत्व प्रत्येक हिन्दू स्त्री का आदर्श रहा है. गुप्तकालीन नारी का भी यही आदर्श था. माता के रूप में नारी गौरव की पराकाष्ठा पाती थी. गुप्तकाल में माता का यही सम्माननीय स्थान था. वैदिक काल से लेकर गुप्तकाल तक में माता पिता के समास में माता को प्रथम स्थान प्राप्त था. गुप्तकालीन सम्राटों के अभिलेख इसके प्रमाण हैं. इसके अतिरिक्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुप्तकालीन सम्राटों के अभिलेखों में वर्णित वंशावली में राजाओं की माताओं का सम्मान वर्णन है. केवल माता ही नहीं अपितु पितामही, प्रपितामही एवं एक और पितामही का उल्लेख अभिलेखों में है. माताओं के लिए "महादेवी" उपाधि प्रयुक्त की गई है.

माता के महत्त्व को स्पष्ट करने के लिए अभिलेख महत्त्वपूर्ण हैं. माता के प्रति पुत्रों के कर्तव्यों का वर्णन अभिलेखों में मिलता है. माता पिता के पुण्य में वृद्धि हेतु कई धार्मिक एवं लोकोपकारी कार्य करने के उल्लेख अभिलेखों में हैं. इनमें ध्वज स्तंभ की स्थापना, दान सूर्य मंदिर का निर्माण, प्रस्तर मंदिर का निर्माण, भावं का पुण्यदान तथा वराह प्रतिमा की स्थापना ये सभी धार्मिक एवं सार्वजनिक हित के कार्य, माता पिता की पुण्य वृद्धि हेतु अथवा उनको स्वर्ग प्राप्ति के लिए पुत्रों द्वारा किये जाते थे. मातायें अपने पुत्र के कल्याणार्थ एवं दीर्घायु जीवन की प्राप्ति के लिए व्रत करती थीं. ऐसा वर्णन रघुवंशम् में मिलता है.

माता की प्रतिष्ठा एवं अधिकारों के आधार पर पुत्र द्वारा माता की सुरक्षा एवं सेवा का अधिकार महत्त्वपूर्ण है. माता किन्हीं भी स्थितियों में त्याज्य नहीं थी, भले ही वह अपराधी क्यों न हो. माता का भरणपोषण न करने वाले पुत्र को दण्ड का विधान था. गुप्तकालीन अभिलेखों में माता का अनादर अथवा मातृघात किसी भी स्थिति में क्षम्य नहीं था. अभिलेखों में मातृघात को पाँच पापों में गिना गया है. अतः स्पष्ट है कि माता के प्रति कर्तव्यों का आचरण न करने में उदासीन लोग दण्ड के भागी होते थे.

गुप्तकालीन समाज में गणिकाओं का भी आदर था. वे एक प्रकार की सार्वजनिक नारियाँ होती थीं. गणिकायें 64 कलाओं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में प्रवीणता प्राप्त होती थी. तत्कालीन सँस्कृत साहित्य में अनेक गणिकाओं के उच्च चरित्र के प्रमाण प्राप्त होते हैं. वसंतसेना एक ऐसी ही गणिका थी. ये सार्वजनिक उत्सवों, पुत्र जन्मोत्सव, विवाहोत्सव इत्यादि अवसरों पर जनता के मनोरँजनार्थ वेश्याओं के नृत्य का आयोजन होता था. ये ऐश्वर्यसम्पन्ना गणिकायें, चरित्रवान भी होती थीं. समाज में गृहस्थी को त्याग कर संन्यासाश्रम को अपनाने वाली, गैरिक वस्त्रों को धारण किये तथा सिर मुड़ाये भिक्षुणियाँ भी होती थीं. ये भिक्षुणियाँ बिहारों के लिए प्रतिमा दान तथा बौद्ध बिहारों का निर्माण कराती थीं.

संस्कार का अर्थ शुद्धि की धार्मिक क्रियाओं तथा व्यक्ति के दैहिक, मानसिक और बौद्धिक परिष्कार के लिए किए जाने वाले अनुष्ठानों से है, जिससे वह समाज का पूर्ण विकसित सदस्य हो सके, मनु, याज्ञवल्क्य तथा कालिदास इत्यादि ने संस्कार के इसी अर्थ को लेते हुए उसकी महत्ता प्रतिपादित की है. गुप्तकाल में भी संस्कार का यही महत्व स्वीकार किया गया. गृह्यसूत्रों में स्त्रियों के जातकर्म से लेकर चूड़ाकर्म तक के सभी संस्कार लड़कों के ही समान करने का वर्णन है किंतु लड़कियों के संस्कार मंत्र रहित सम्पादित होने का विधान बताया है. स्मृतिकार मनु का भी यही विचार था. याज्ञवल्क्य ने भी इसी बात का समर्थन किया.

गुप्तकाल में प्रचलित नारी से संबंधित संस्कारों में हमें गर्भाधान, पुंसवन, अनवलोभन या गर्भरक्षण, सीमन्तोन्नयन, विष्णुबलि, सोष्यन्तीकर्म, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, वर्षवर्धन अब्दपूर्ति, चूड़ाकर्म, कर्णवेध, विद्यारम्भ, उपनयन, समावर्तन, विवाह, अन्त्येष्टि, अग्नि संस्कार, श्राद्ध, तर्पण, पिण्डदान इत्यादि का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वर्णन मिलता है. इन संस्कारों का वर्णन गुप्तकालीन स्मृतियों तथा कालिदास के ग्रंथों में मिलता है. अभिलेखों में इनकी क्रमानुसार कोई सूची प्राप्त नहीं होती.

(गुप्तकालीन पारिवारिक तथा सामाजिक परंचना के के अन्तर्गत वर्ण व्यवस्था, अस्पृश्यता, आश्रम व्यवस्था, संयुक्त परिवार एवँ अन्य सामाजिक प्रथायें महत्वपूर्ण हैं.) वैदिक काल के कर्मणा विभाजन ने धीरे धीरे जन्मना समाज अथवा जाति का रूप धारण कर लिया था. मनुस्मृति में हमें उस जन्मना वर्णव्यवस्था का कठोरतम रूप देखने को मिलता है. गुप्तकालीन स्मृतियों में भी इसी कठोरतम सामाजिक व्यवस्था की झलक मिलती है किंतु व्यावहारिक रूप में वर्ण व्यवस्था की कठोरता टूटने लगी थी. प्रमाण स्वरूप हमें (गुप्तकाल में चारों वर्णों में पारस्परिक वैवाहिक संबंध अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाह के रूप मिलते हैं. अनुलोम विवाह धर्मसम्मत था, किंतु प्रतिलोम विवाह धर्मशास्त्रीय मान्यता प्राप्त न होते हुए भी व्यावहारिक रूप से समाज में प्रचलित था. अनुलोम एवँ प्रतिलोम समाज के उच्च, मध्यम एवँ निम्न वर्ग तीनों में प्रचलित था. गुप्त राजकुल में इन विवाहों के कई प्रमाण हमें मिलते हैं. गुप्तकालीन अभिलेखों एवँ स्मृतियों में वर्णसंकर जातियों के कई नाम मिलते हैं.)

गुप्तकाल में अस्पृश्यता की भावना विद्यमान थी. इसका उद्गम जन्मजात के अतिरिक्त अन्य कई कारणों से भी होता था. दुष्कर्मों के फलस्वरूप धर्मसंबंधी घृणा कुछ विशेष घृणित व्यवसायों को अपनाना, रजस्वला स्त्री का स्पर्श, पुत्रोत्पत्ति पर सूतक एवँ शव स्पर्श तथा म्लेच्छ देशों का निवासी होना इत्यादि अस्पृश्यता के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उद्गम हैं. "अन्त्यज" एवं "चाण्डाल" अस्पृश्य कहलाते थे. इनके छाया स्पर्श से भी अपवित्र हो स्नान का प्रावधान था.

गुप्तकाल में आश्रम व्यवस्था का उद्देश्य था----मनुष्य समयानुसार व्यवस्थित ढंग से अपने जीवन की सभी आकांक्षायें पूरी करे. यह व्यवस्था निश्चित ही आदर्श थी जो समाज के व्यवस्थित रूप को उपस्थित करती थी किंतु इसके व्यावहारिक रूप अधिक महत्वपूर्ण थे. मनुष्य ब्रम्हचर्याश्रम का पालन करते थे. स्त्रियाँ भी ब्रम्हचर्य धारण करती थीं. ये (स्त्रियाँ ब्रम्हवादिनी तथा सद्योवधू---- 2 प्रकार की होती थीं. ब्रम्हवादिनी, आजीवन ब्रम्हचर्य व्रता का पालन करती थीं किंतु सद्योवधू विद्याप्राप्ति के पश्चात् गृहस्थाश्रम में प्रवेश करती थीं किंतु ब्रम्हवादिनी का उपनयन संस्कार होता था. गुप्तकाल में स्त्रियों का उपनयन संस्कार का अधिकार भी छिन गया.)

(गृहस्थाश्रम का महत्व त्रिवर्ग की प्राप्ति था. विवाह कर पितृ तर्पण के लिए पुत्र उत्पन्न करना तथा पत्नी के साथ धार्मिक कृत्य सम्पन्न करना इनमें पत्नी का महत्वपूर्ण स्थान है. स्त्रियाँ पति के साथ सफल गृहस्थ जीवन व्यतीत करती थीं तथा गृहस्थाश्रम के विभिन्न नियमों एवं उत्तरदायित्वों को पूरा करती थीं.) गृहस्थाश्रम में समस्त सुखों को भोगने के पश्चात् व्यक्ति वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश करता था. वानप्रस्थाश्रम में सांसारिक मोह एवं बंधनों एवं पारिवारिक बंधनों को त्याग कर स्त्री के साथ वन में जाकर तपस्या करना तथा मुनिवृत्ति को ग्रहण करना ही वानप्रस्थाश्रम की सार्थकता है. वानप्रस्थाश्रम में स्त्रियाँ पति के साथ संयमित जीवन अर्थात् वैरवानस के नियमों का पालन करती थीं. गुप्तकाल में पुरूषों की ही भाँति स्त्रियाँ भी गृहस्थाश्रम का परित्याग कर सन्यासाश्रम में प्रवेश करती

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थीं. इस प्रकार की बौद्ध भिक्षुणियाँ सिर मुड़ाये तथा गैरिक वस्त्र पहने, बौद्ध विहारों में रहती थीं. इस प्रकार अंतिम आश्रम संन्यासाश्रम में स्त्रियों का योगदान था.

गुप्तकालीन पारिवारिक संरचना में संयुक्त परिवार का अपना अलग महत्व है. गुप्तकाल में पहले के अनुरूप ही संयुक्त परिवार प्रथा प्रचलित थी. इस संयुक्त परिवारों में नारी की पुत्री, पत्नी, माता, पितामही, प्रपितामही इत्यादि के रूप में महत्वपूर्ण स्थान था. समुद्रगुप्त के अभिलेख में रानी दत्त देवी को बहुतेरे पुत्रों एवँ पौत्रों से युक्त घर में प्रसन्नतापूर्वक विचरण करते हुए कहा गया है. अन्य अभिलेखों में भी नारी के इन विभिन्न रूपों का वर्णन हमें मिलता है.

अध्ययन से स्पष्ट है कि गुप्तकालीन समाज में <u>पर्दाप्रथा</u> नहीं थी. रानियाँ अलंकृत हो राजसभा में जाती थीं तथा सार्वजनिक कार्यों में सम्मिलित होती थीं. प्रभावतीगुप्त द्वारा प्रशासन का संचालन करना इस बात का द्योतक है कि पर्दाप्रथा अस्तित्व में नहीं थी. इसके अतिरिक्त गुप्तकालीन मूर्तिकला, चित्रकला एवँ मुद्राओं पर कहीं भी पर्दा प्रथा के संकेत नहीं मिलते. गुप्तकालीन संस्कृत साहित्य में भी इस के प्रचलन का वर्णन नहीं मिलता.

गुप्तकालीन समाज <u>दासप्रथा</u> की प्रथा से अछूता नहीं था. स्मृतियों के आत्मदान या आत्म समर्पण को दासप्रथा की उत्पत्ति माना है. नारद ने 15 प्रकार के दासों का वर्णन किया है. यही नहीं दासता से मुक्ति का विधान भी प्रस्तुत किया है. अतः गुप्तकाल में दास प्रथा का प्रचलन पूर्णरूपेण था किंतु उनकी स्थिति

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अच्छी थी, वे मनुष्योचित सदव्यवहार के पात्र एवं स्वतंत्र होनेके अधिकारी थे.

गुप्तकाल में <u>सतीप्रथा</u> प्रचलित थी. गुप्तकालीन स्मृतियाँ इसके प्रचलन को प्रमाणित करती हैं. गुप्तकालीन साहित्य में भी इसके प्रचलन का वर्णन मिलता है. गुप्तकालीन अभिलेख, गोपराज के मरणोपरांत लिखित प्रस्तर स्तंभ लेख में उसकी मृत्यु के पश्चात् उसकी पत्नी द्वारा सती होने का उल्लेख है. केवल "सती", "सहमरण", "सहगमन", या "अन्वारोहण" ही नहीं "अनुमरण" के भी उल्लेख गुप्तकालीन साहित्य में मिलते हैं किंतु यह प्रथा स्वेच्छा पर निर्भर थी. इसके लिए कोई पौरोहितक या धार्मिक दबाव नहीं था.

गुप्तकालीन स्मृतियों में "<u>नियोग प्रथा</u>" के प्रचलन के प्रमाण मिलते हैं. निःसंतान पति की मृत्यु के पश्चात्, देवर या किसी अन्य सपिण्ड से पुत्रोत्पत्ति नियोग कहलाता है. नारद ने इस प्रथा का अनुमोदन किया है किंतु गुरु द्वारा बनाये गये नियमों के अनुसार ही नियोग होना चाहिए.

गुप्तकाल में <u>विवाह</u> नामक संस्था का इतना ही महत्व था जितना कि प्राचीन काल में. पति को धार्मिक कृत्यों के योग्य बनाने, तथा पुत्र प्राप्ति के लिए विवाह कर पत्नी लाना आवश्यक था. गुप्तकालीन धार्मिक एवं लौकिक साहित्य दोनों में विवाह के ये उद्देश्य एक से ही प्राप्त होते हैं.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विवाह के योग्य कन्या वही होती थी जो आगे चलकर पवित्र, पतिव्रता, सत्यरूपेण, उत्कृष्ट गुणों वाली, भक्ति भावयुक्ता, अनुरक्ता, बुद्धिमान तथा सुंदर पत्नी प्रमाणित हो. इन गुणों से युक्त कन्या ही विवाह के योग्य होती थी. इन गुणों का वर्णन हमें गुप्तकालीन अभिलेखों में मिलता है. इसके अतिरिक्त साहित्य में भी इनका विस्तृत वर्णन मिलता है. इसके अतिरिक्त कन्या अनन्यपूर्वा, अदत्ता, अक्षता, कुलवती, वर से यवीयसी, शीलसम्पन्ना, बुद्धिमती, स्वस्थ्य, शुभनामा एवँ सुलक्षण सम्पन्ना होना चाहिए. उच्च कुल या अच्छे कुल की कन्या को पत्नी बनाने का अभिलेखों में वर्णन मिलता है.

गुप्तकाल में कन्याओं की <u>विवाह की अवस्था</u> 15-16 वर्ष थी. अर्थात् कन्याओं के विवाह पूर्ण युवावस्था प्राप्त होने पर ही होते थे. विवाह संस्कार की विधि का विस्तृत वर्णन कालिदास ने किया है. प्राचीनकाल में प्रचलित विवाह के आठ प्रकार गुप्त काल में भी प्रचलित थे. किंतु प्रथम चार प्रकार के विवाह उत्तम समझे जाते थे. इनसे से "आर्ष विवाह" के प्रकार से सभी गुप्त सम्राटों के विवाह हुए थे. संभवतः "प्राजापत्य विवाह" का प्रचलन गुप्तकाल में विशेष रूप से रहा होगा. अभिलेखों में उपमान स्वरूप प्राप्त "दत्त शुल्क", "अवक्रय क्रीता" इत्यादि शब्दों से प्रतीत होता है कि राजकुल में "आसुर विवाह" प्रचलित था. "गांधर्व विवाह" का प्रचलन सर्वाधिक राजकुलों में ही प्रचलित था. इसके प्रचलन के संकेत साहित्य में भी मिलते हैं. इसके अतिरिक्त "कन्योपायनदान" भी राजकुल की एक विवाह की विशेष विधि थी.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसके अतिरिक्त गुप्तकाल में स्वयंवर विवाह पूर्णरूप से अस्तित्व में थे. गुप्तकालीन साहित्य के अतिरिक्त गुप्तकालीन अभिलेखों में भी हमें प्रचलन के संकेत मिलते हैं. इसका आयोजन मुख्य रूप से कन्या की इच्छा को ध्यान में रखकर किया जाता था. जिससे वे अच्छी इच्छा के अनुकूल पति का निर्वाचन कर सकें. इनके आयोजनों की विशालता को देखते हुए यह मात्र राज परिवारों तक ही सीमित थे. पौराणिक एवं स्मृति साहित्य के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि कन्याओं के विवाह बाल्यावस्था में ही होते थे किंतु लौकिक साहित्य में पता लगता है कि व्यावहारिक रूप से विवाह यौवनावस्था को प्राप्त होने पर ही होते थे. काणे के अनुसार स्मृतियों में वर्णित विवाह संबंधी नियम केवल ब्राम्हणों पर ही लागू होते थे.

गुप्तकाल में एक पत्नी को महत्त्वपूर्ण स्थिति प्राप्त होते हुए भी "बहुपत्नी प्रथा" का प्रचलन था. स्मृतियों में भी वर्ण के अनुसार क्रमशः तीन, दो तथा एक एक पत्नी रखने का अधिकार प्राप्त होने का उल्लेख है. लौकिक साहित्य में भी बहुपत्नी का अधिकता से वर्णन मिलता है. यह प्रथा मात्र धनिक वर्ग या राजपरिवार में ही नहीं अपितु साधारण वर्ग में भी प्रचलित थी. चन्द्रगुप्त द्वितीय की कुबेरनागा तथा ध्रुवदेवी नाम की दो पत्नियाँ थीं. गुप्तकाल में "बहुभर्तृकता" का सर्वथा अभाव था.

गुप्तकाल में अनमेल वृद्ध विवाहों के प्रचलन के संकेत मिलते हैं. विष्णुपुराण में विवाह की आयु का अनुपात 1:3 है,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जो निश्चित ही अनमेल है. अनमेल विवाह के संकेत हमें दुष्यन्त-शकुन्तला तथा मालविका-अग्निमित्र के विवाहों से मिलते हैं, समुद्रगुप्त की कन्योपपायन नीति के अनुसार अनमेल वृद्ध विवाह होने की अत्यधिक संभावना है.

अध्ययन से पता चलता है कि गुप्तकाल में पति की मृत्यु के पश्चात् स्त्रियाँ या तो सती हो जाती थीं या वैधव्य जीवन व्यतीत करती थीं. किंतु गुप्तकाल में विधवा के पुनर्विवाह अथवा अन्य स्त्रियों के पुनर्विवाह के प्रचलन के भी प्रमाण मिलते हैं. नारद ने ऐसी स्त्रियों का विस्तृत वर्णन किया है किंतु किन्हीं निश्चित परिस्थितियों में पुनर्विवाह की अनुमति स्मृतियों में दी गई है किंतु उन स्थितियों में भी वह अपने देवर से ही पुनर्विवाह कर सकती थी. विधवा विवाह का प्राचीनतम एवं ऐतिहासिक प्रमाण गुप्तकालीन है. गुप्त नरेश रामगुप्त की मृत्यु के पश्चात् उसकी विधवा से, छोटे भाई चन्द्रगुप्त द्वितीय तथा ध्रुवदेवी का यह विवाह विधवा विवाह अथवा पुनर्विवाह था. इस प्रकार विधवा विवाह के फलस्वरूप उत्पन्न पुत्र उत्तराधिकारी भी होते थे. इसका ऐतिहासिक प्रमाण ध्रुवदेवी के पुत्र का राजसिंहासन प्राप्त करना है. अतः विधवा विवाह सामाजिक प्रोत्साहन न प्राप्त होते हुए भी निकृष्ट नहीं समझा जाता था.

नारद ने प्रोषितभर्तृका पत्नी के लिए कुछ आवश्यक नियमों का विधान बताया है. वर्ण के अनुसार पत्नी क्रमशः आठ, छः तथा चार वर्षों तक प्रतीक्षा कर सकती थी. निःसंतान होने की स्थिति में प्रतीक्षा की अवधि क्रमशः आधी अर्थात् चार, तीन एवं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दो वर्ष हो जाती थी. स्मृतियों में प्रोषितभर्तृका के कर्तव्यों में सौंदर्य प्रसाधनों, मनोरंजन के साधनों, सार्वजनिक प्रदर्शनों, उत्सवों, माँस एवं मदिरा से दूर रहने का विधान किया गया है.

गुप्तकाल में अनुलोम एवं प्रतिलोम विवाह के प्रचलन के अनेक प्रमाण प्राप्त होते हैं. अनुलोम विवाह तो धर्मसम्मत था किंतु प्रतिलोम विवाह धर्मसम्पत न होते हुए भी निर्विघ्न सम्पादित होता था. उच्च वर्ग, राजकुल अथवा निम्न वर्ग सभी जगह.

गुप्तकाल में स्त्रियों के लिए विधिक स्वत्व भी प्राप्त थे. स्त्रीधन उनकी व्यक्तिगत सम्पत्ति थी जिस पर उनका पूरा अधिकार होता था. उसे वे अपनी इच्छानुसार व्यय भी कर सकती थीं. समुद्रगुप्त की रानी दत्तदेवी स्त्रीधन की स्वामिनी थी. गुप्तकाल का सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन था कात्यायन द्वारा स्त्रियों के साम्पत्तिक अधिकार को मान्यता प्रदान करना. स्त्रियाँ, विवाहित पत्नी, माता, विधवा के रूप में पैतृक संपत्ति की अधिकारिणी हो सकती थीं. इसके अतिरिक्त कन्या दाया-अधिकार की अधिकारी एवं अभ्रातृका कन्या के भी साम्पत्तिक अधिकार होते थे. स्त्री गृहस्वामिनी के रूप में दान पुण्य विषयक एवं धार्मिक स्थापत्य कराने की अधिकारी होती थी.

गुप्तकालीन नारी को धार्मिक अधिकार भी प्राप्त थे. कोई भी धार्मिक अनुष्ठान अथवा अग्निहोत्रादि यज्ञ पत्नी की अनुपस्थिति में सम्पादित नहीं हो सकता था. यज्ञाधिकार का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रमाणं समुद्रगुप्त तथा कुमारगुप्त प्रथम के अश्वमेध प्रकार सिक्कों पर रानी के अंकन से है. स्त्री पत्नी एवं माता के रूप में पति एवं पुत्र के कल्याणार्थ व्रत करती थी. पुत्र प्राप्ति के लिए भी व्रत करने का वर्णन मिलता है. पुण्य वृद्धि हेतु दान, मूर्ति प्रतिष्ठापन, प्रतिमा दान अथवा मठ का निर्माण करवाती थीं. यह धार्मिक दान पुत्री, गृहस्वामिनी, राजी, राजमाता, उपासिका, भिक्षुणी एवं बिहारस्वामिनी इत्यादि अनेक रूपों में होता था जो प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से धर्म के प्रचार प्रसार के लिए होता था.

गुप्तकालीन प्रशासनिक व्यवस्था में नारी का योगदान महत्वपूर्ण रहा है. रानियाँ निश्चित ही किसी न किसी रूप में प्रशासनिक व्यवस्था में भाग लेती थीं. (गुप्तकालीन राजाओं के राजा रानी प्रकार सिक्के इसके प्रमाण स्वरूप हैं. ध्रुवस्वामिनी की बसाढ़ (वैशाली) से प्राप्त मृण्मुहर इस बात का संकेत है कि ध्रुवस्वामिनी का प्रशासन में योगदान रहा होगा.)

(चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री तथा रूद्रसेन द्वितीय की विधवा पत्नी प्रभावती गुप्ता ने अपने अल्पवयस्क पुत्रों की ओर से प्रशासन किया था. अतः वह एक कुशल प्रशासिका थी.) माता के रूप में माता की आज्ञा का पालन भी किया जाता था. बालादित्य की माता द्वारा बंदी मिहिरकुल को मुक्त किया जाना इसका प्रमाण है कि राजमातायें सार्वजनिक हित के कार्य भी करवाती थीं.

/ राजा की पत्नी के रूप में रानी दत्तदेवी का स्वभोग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नगर "ऐरिकिण" बसाना तथा वहाँ एक प्रसिद्ध मंदिर का निर्माण करवाना, रानी कोणदेवी द्वारा अद्भुत सरोवर को खुदवाना इत्यादि प्रशासनिक अथवा सार्वजनिक हित के कार्य, उसकी राजकीय स्थिति के द्योतक हैं. गुप्तकालीन अभिलेखों में रानियों के लिए प्रयुक्त "देवी", "महादेवी", "परमदेवी", "राज्ञी", "भट्टारिका", "परमभट्टारिका" एवं "श्रीसम्पन्ना" इत्यादि सम्माननीय उपाधियाँ उनकी उच्च प्रशासनिक स्थिति को प्रमाणित करती हैं. राजमाताओं को "महादेवी" उपाधि प्रयुक्त की गई है. ये उपाधियाँ पारिभाषिक हैं, जो राजाओं के लिए प्रयुक्त उपाधियों का स्त्रीलिंग हैं.) कालिदास के साहित्य में भी ऐसी उपाधियों का वर्णन मिलता है.

वैदिक काल के अनुरूप (गुप्तकाल में स्त्रियाँ शिक्षा की अधिकारिणी थीं. प्राचीनकाल में प्रचलित उपनयन संस्कार की बात करते हुए मनु ने नारियों के लिए "उपनयन संस्कार" की व्यवस्था के साथ ही वैदिक मंत्रों के उच्चारण से उन्हें वंचित कर दिया तथा उनकी शिक्षा के विषय वैदिक साहित्य के स्थान पर लौकिक साहित्य बताये. फिर भी स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार था. वे अन्य प्रकार के विद्याभ्यास से वंचित नहीं रहती थीं. (वात्स्यायन ने गृहणी के लिए शिक्षा अनिवार्य बताई है उनके अनुसार गृहस्थी के सफल संचालन के लिए पत्र लेखन तथा आय व्यय का हिसाब रखने के लिए स्त्री का शिक्षित होना अनिवार्य था.) कामसूत्र, मृच्छकटिकम तथा कालिदास के साहित्य में कई पढ़ी स्त्रियों का उल्लेख मिलता है. शीला भट्टारिका तथा विज्जिका जैसी कवियित्री, लेखिका एवं नाटककार प्रमाणित करती हैं कि सांस्कृतिक उन्नयन में भी नारी का योगदान रहा है. (अमरकोष

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के "उपाध्याया", "उपाध्यायी" तथा "आचार्या" शब्द स्त्री शिक्षिकाओं का संकेत करते हैं।)

(साधारण शिक्षा के अतिरिक्त प्रशासनिक शिक्षा भी अनिवार्य रही होगी) तभी तो प्रभावती गुप्ता जैसी सफल प्रशासिका गुप्त में काल में हुई। (बसाढ़ से प्राप्त ध्रुवदेवी की मृण्मुहर एवँ गुप्तनरेशों के राजा रानी प्रकार सिक्के इस के प्रमाण हैं। इसके अतिरिक्त, संगीत तथा नृत्य, एवँ गायन, अभिनय की भी उन्हें शिक्षा दी जाती थी। गुप्तकालीन मूर्तियाँ एवँ भित्तिचित्र तथा कालिदास के ग्रंथों में इसके प्रमाण हैं।) वात्स्यायन की 64 कलाओं की शिक्षा नारी के चतुर्मुखी विकास की योजना है।

(गुप्तकालीन समाज में नारी के <u>आमोद प्रमोद एवँ सौंदर्य</u> प्रसाधन के पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं। गुप्तकालीन मूर्तियों, भित्ति चित्रों एवँ सिक्कों से तत्कालीन वेशभूषा पर प्रकाश पड़ता है। गुप्तकाल में स्त्रियाँ साड़ी, चादर, कंचुक, स्तनपट्ट, वैकक्ष्य एवँ कूर्पासक पहनती थीं। इसके अतिरिक्त कभी कभी घाघरा एवँ साड़ी भी पहनती थीं।) दासियाँ सिले कपड़ते पहनती थीं। ये वस्त्र विभिन्न रंगों एवं डिजायनों के होते थे। स्त्रियाँ कभी कभी जालीदार टोपी एवँ रानियाँ मुकुट पहनती थीं। (नर्तकियाँ धोती, वैकक्ष्य और चोली तथा लंबा कंचुक पहनती थीं।) विभिन्न नारियाँ विभिन्न प्रकार की वेशभूषा में हमें मिलती है अर्थात पद एवँ स्थिति के अनुसार भी वस्त्रावरण होते थे। वस्त्र भी कई प्रकार के होते थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(स्त्रियाँ रत्न जटित, सुवर्ण, मोती एवं फूलों के आभूषण पहनती थीं तथा आभूषण प्रिय थीं. वे सिर, कानों, गले, बाजू, कलाई, अँगुली कटि एवं पैरों में आभूषण धारण करती थीं जिनके विभिन्न नाम हमें अध्ययन में प्राप्त होते हैं.) वस्त्राभूषणों के अतिरिक्त नारियाँ कई प्रकार के सौंदर्य प्रसाधनों, लेपों अथवा पिष्टों से अपने शरीर को सुगंधित एवं प्रसाधित करती थीं. ये सौंदर्य प्रसाधन ऋतु के अनुकूल प्रयोग में लाये जाते थे. (प्रसाधन कला में गुप्तकालीन केश विन्यास की कला प्रशंसनीय है. गुप्त कालीन नारियों के केश विन्यास नाना प्रकार के थे. गुप्तकाल में कुन्तल केशों (घुँघराले) विशेष रूप से प्रचलित थे. सीमान्त अर्थात् केश वीथी (माँग) निकाल कर और बालों को अलग अलग ऊपर की ओर छत्राकार बनाती थीं. कभी कभी केशों को दोनों ओर मयूरपुच्छ के जैसा भी बनाती थीं. तत्कालीन साहित्य में केश विन्यास के विभिन्न प्रकारों का वर्णन मिलता है.) कभी कभी केशों की रचना मधुमक्खी के छत्ते की तरह भी करती थीं तथा कभी कभी सीमान्त को चुटुल अथवा भ्रमर सरीखे आभूषण से सजातीं थीं. अहिच्छत्रा से प्राप्त मृण्मूर्ति में केश विन्यास का सर्वोत्कृष्ट नमूना मिलता है.

स्त्रियों के आमोद प्रमोद के साधनों में विभिन्न प्रकार के उत्सव महत्वपूर्ण थे. इनमें कौमुदी महोत्सव तथा वसन्तोत्सव उल्लेखनीय हैं. कन्याओं की क्रीडाओं तथा युवतियों की क्रीड़ायें अलग अलग थीं. स्त्रियाँ विनोद के लिए जलक्रीडा, मृगया, मद्यपान, उद्यानक्रीड़ा, पशुओं की सवारी, पक्षी पालन इत्यादि साधनों को अपनाती हैं.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपरोक्त साधनों के अतिरिक्त स्त्रियों में मनोरंजन के लिए संगी त एवँ नृत्य का महत्वपूर्ण स्थान था. संगीत मात्र सांसारिक आमोद प्रमोद के लिए ही नहीं था अपितु वह ईश्वर की आराधना और आध्यात्मिक विकास में भी अत्यंत सहयोगी था. गीत, नृत्य एवँ वाद्य यह एक त्रयी के समान था जिसका आपस में अन्योन्याश्रित संबंधथा. अतः इन तीनों का मूर्तिकला एवँ चित्रकला में एक साथ समन्वय हम पाते हैं. स्त्रियाँ अपने मनोरंजन के लिए इन तीनों का समन्वित रूप ही अपनाती थीं. मूर्तिकला, चित्रकला एवँ साहित्य इसके प्रमाण हैं.

अध्ययन से स्पष्ट है कि (गुप्त काल में नारी की स्थिति उच्च एवं सम्माननीय थी.) कुछ स्मृतियों तथा साहित्य में स्त्रियों की आलोचना भी की गई है. किंतु कालिदास, बाण एवं भवभूति ने स्त्रियों की प्रशंसा में बहुत कुछ कहा है. (गुप्तकालीन प्रख्यात ज्योतिर्विद वराहमिहिर ने बृहत्संहिता में स्त्रियों के पक्ष का समर्थन करते हुए उनकी प्रशंसा की है. उनके अनुसार स्त्रियों पर धर्म एवँ अर्थ आश्रित है. उन्हीं से पुरुष लोग इन्द्रिय सुख एवँ संतान सुख प्राप्त करते हैं, वे घर की लक्ष्मी हैं, उनको सदैव सम्मान एवँ धन देना चाहिए. वराहमिहिर उन लोगों की भर्त्सना करते हैं जो वैराग्यमार्ग का अनुसरण कर स्त्रियों के दोषों की चर्चा करते हैं तथा उनके गुणों के विषय में मौन हो जाते हैं.) वराहमिहिर स्त्रियों के निंदकों से प्रश्न करते हैं : "सच बताओ, स्त्रियों के कौन से दोष हैं जो तुम लोगों में नहीं पाये जाते ? पुरुष लोग धृष्टता से स्त्रियों की भर्त्सना करते हैं, वास्तव में वे पुरुषों की अपेक्षा अधिक गुणों से सम्पन्न होती हैं". वराहमिहिर मनु के वचनों को अपने समर्थन में उद्धृत करते हुए कहते हैं : "अपनी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

माँ या अपनी पत्नी भी स्त्री ही है, पुरूषों की उत्पत्ति उन्हीं से होती है, अरे कृतघ्नी एवँ दुष्ट, तुम जब इस प्रकार उनकी भर्त्सना करते हो तो तुम्हें सुख क्योंकर मिलेगा ? शास्त्रों के अनुसार दोनों पति एवँ पत्नी पापी हैं यदि वे विवाह के प्रति सच्चे नहीं होते, पुरूष लोग शास्त्रों की बहुत कम परवाह करते हैं (किंतु स्त्रियाँ बहुत परवाह करती हैं), अतः स्त्रियाँ पुरूषों की अपेक्षा अति उच्च हैं". दुष्ट लोगों की धृष्टता कितनी बड़ी है, ओह ! वे पवित्र एवँ निरपराध स्त्रियों पर गालियों की बौछार करते हैं, यह तो वैसा ही है जैसा कि चोरों के साथ देखा जाता है, अर्थात् चोर स्वयं चोरी करते हैं और पुनः शोरगुल करते हैं, "ठहरो, ओ चोर ! ". अकेले में पुरूष स्त्री की चाटुकारी करते हैं, किंतु उसके मर जाने पर उनके पास किसी प्रकार के मीठे शब्द नहीं होते, किंतु स्त्रियाँ कृतज्ञता के वश में आकर अपने पति के शवों का आलिंगमन करके अग्नि में प्रवेश कर जाती हैं".

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ग्रं था व ली

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मूलग्रंथ

- अथर्ववेद : अजमेर, 1014 वि. सं.
- आपस्तम्ब धर्मसूत्र : उमेश चंद्र पांडेय, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1984
- आपस्तम्ब गृह्यसूत्र : विंटरनिट्ज, वियना, 1887.
- आश्वलायन गृह्यसूत्र : जीवानंद, कलकत्ता, 1893.
- अष्टाध्यायी (पाणिनी कृत) : निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1929.
- अर्थशास्त्र : एस. सहस्त्री, मैसूर, 1919.
- अमरकोष : एच. टी. कोलब्रुक (संपादक), निर्णय सागर प्रेस बम्बई, 1895.
- उत्तररामचरितम् : पी. बी. काले, बम्बई, 1929.
- ऐतरेय ब्राम्हण : भाग 1-3, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1984.
- काठक संहिता : एल. वान. स्क्रोयडर, 1900
- कालिदास ग्रंथावली : सीताराम चतुर्वेदी, अखिल भारतीय विक्रय परिषद, काशी सं. 2007 वि.
- कामसूत्र : द्वितीय संस्करण, दुर्गा प्रसाद (संपादक) निर्णय सागर मंत्रालय.
- गौतम धर्मसूत्र : आनंदाश्रम, पूना, 1910.
- गोभिल गृह्यसूत्र : बिब्लिओथिका संस्करण, कलकत्ता 1908.
- तैत्तिरीय संहिता : सातवलेकर (संपादक), स्वाध्याय मंडल पारडी 1957.
- जैमिनी ब्राम्हण : बेरा शर्मा (संपादक) तिरूपति, 1969.
- तैत्तिरीय ब्राम्हण : आनंद आश्रम प्रेस, पूना, 1900-1905
- धम्मपद : पी. टी. एस. (संपादक), लंदन, 1906-15
- नारद स्मृति : योली (संपादक), कलकत्ता, 1885
- पारस्कर गृह्यसूत्र : चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1984.
- पातंजल योग प्रदीप : श्री ओमानंद तीर्थ, गीताप्रेस, गोरखपुर, 2018
- प्रतिज्ञायौगन्धरायण : श्री रामचन्द्र शुक्ल, इलाहाबाद, 1956.
- पंचतंत्र : गुरु प्रसाद एवं सीताराम शास्त्री, बनारस, 2009 संवत.
- प्रतिभा नाटक : शिवराम महादेव परांजपे, पूना, 1930.
- बौधायन गृह्यसूत्र : मैसूर विश्वविद्यालय, मैसूर, 1950.
- बौधायन धर्मसूत्र : आनंदाश्रम प्रेस, पूना, 1905.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

- बृहत्संहिता : सुधाकर द्विवेदी (संपादक) बनारस, 1895.
- बृहस्पति संहिता : एस. एस. बी. ई., आक्सफोर्ड, 1889.
- भागवत पुराण : गीता प्रेस संस्करण, गोरखपुर, 2027 वि. सं.
- भगवती सूत्र : बम्बई, 1917-1933
- मैत्रायणी संहिता : श्रोयडर
- महाभारत : (खंड 1 से खंड 7 तक) रामनारायण दत्त शास्त्री एवं पांडे (अनुवादक), गीताप्रेस, गोरखपुर.
- मत्स्य पुराण : वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1907
- मनुस्मृति : गंगानाथ झा (संपादक), इलाहाबाद, 1932
- मृच्छकटिक : आर. डी. करमारकर (संपादक).
- याज्ञवल्क्य स्मृति : नारायण शास्त्री (संपादक), चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस.
- रामायण : निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1930.
- बृहदारण्यकोपनिषद : गीताप्रेस गोरखपुर, 2012 वि. सं.
- विष्णुधर्मसूत्र : पंचानन तर्क रत्न (संपादक) बंगवासी प्रेस, कलकत्ता, वि. सं. 1316.
- वशिष्ठ धर्मसूत्र : आनंदाश्रम प्रेस, पूना, 1905
- वायु पुराण : नारायण आप्टे (संपादक), पूना, 1905.
- विष्णु पुराण : पंचानन तर्करत्न (संपादक), बंगवासी प्रेस, कलकत्ता, 1331 वि. सं.
- विष्णु स्मृति : बड़ौदा, 1941.
- विष्णुधर्मोत्तरपुराण : प्रियवाला शाह (संपादक), गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज, बड़ौदा, 1958.
- वीरमित्रोदय संस्कार प्रकाश : मित्र मिश्र (संपादक), चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस, 1972.
- शतपथ ब्राह्मण : वेबर, लंदन, 1849.
- शिशुपाल वध : निर्णय सागर प्रेस, बम्बई 1927.
- षड्विंश ब्राह्मण : कलकत्ता 1881.
- संयुक्त निकाय : पी. टी. एस. (संपादक) लंदन, 1884-1904.
- स्वप्नवासवदत्तम् : अनंतराम शास्त्री एवं जगन्नाथ शास्त्री बनारस 1956.
- ऋग्वेद : आचार्य श्री राम शर्मा (संपादक), गायत्री प्रकाशन गायत्री तपोभूमि, मथुरा, 1960.
- ऋग्वेद संहिता : सातवलेकर कुलज (संपादक) औंध राजधानी, 1966, वि. सं.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समालोचनात्मक ग्रंथ

- अग्रवाल, वासुदेवशरण, 1964 हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन पटना : बिहार राष्ट्रभाषा परिषद.
- अग्रवाल, वासुदेवशरण, 1966 भारतीय कला वाराणसी : पृथिवी प्रकाशन.
- अल्तेकर, ए. एस. 1955 प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति वाराणसी.
- अल्तेकर, ए. एस. 1972 गुप्तकालीन मुद्रायें, द्वितीय संस्करण पटना, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद.
- उपाध्याय, वासुदेव 1997 गुप्त साम्राज्य का इतिहास -भाग 1 इलाहाबाद, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन) प्राईवेट लिमिटेड.
- उपाध्याय, वासुदेव 1969 गुप्त साम्राज्य का इतिहास भाग 2, तृतीय संस्करण, इलाहाबाद, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राईवेट लिमिटेड.
- उपाध्याय, वासुदेव 1974 गुप्त अभिलेख पटना, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, कदमकुआँ.
- उपाध्याय, वासुदेव 1961 प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन दिल्ली.
- उपाध्याय, बलदेव 1967 वैदिक साहित्य और संस्कृति वाराणसी.
- उपाध्याय, रामजी 1966 प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका. इलाहाबाद, लोक भारती प्रकाशन.
- काणे, पी. वी., अनुवादक, अर्जुन चौबे कश्यप 1980 धर्मशास्त्र का इतिहास - भाग 1 लखनऊ, उत्तरप्रदेश हिंदी संस्थान (हिन्दी समिति प्रभाग).

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

. काणे, पी. वी., 1982 धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 2
अनुवादक, अर्जुन चौबे कश्यप लखनऊ, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान (हिन्दी समिति प्रभाग).

. काणे, पी. बी., 1975 धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 3
अनुवादक, अर्जुन चौबे कश्यप लखनऊ, उत्तर प्रदेश शासन, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन, हिन्दी भवन.

. काणे, पी. वी., धर्मशास्त्र का इतिहास भाग 4
अनुवादक, अर्जुन चौबे कश्यप

. काणे, पी. वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग
अनुवादक, अर्जुन चौबे कश्यप

. कुजूर, स्कालास्तिका, 1982 वैदिक एवं धर्मशास्त्रीय साहित्य में नारी
वाराणसी, विश्वविद्यालय प्रकाशन.

. खरे, महेश्वरीदयाल, 1971 बाघ की गुफाएँ
भोपाल, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी.

. गोपाल, लल्लनजी, 1958 भारतीय संस्कृति
ब्रजनाथ सिंह यादव गोरखपुर, विश्वविद्यालय प्रकाशन.

. गुप्त, परमेश्वरी लाल, 1970 गुप्त साम्राज्य
वाराणसी, विश्वविद्यालय प्रकाशन.

. गैरोल, वाचस्पति, 1967 कामसूत्र परिशीलन
इलाहाबाद, संवर्तिका प्रकाशन.

. चित्राव, सिद्धेश्वर शास्त्री 1964 प्राचीन चरित्रकोश
पूना, भारतीय चरित्रकोश मंडल.

. चतुर्वेदी, सीताराम 2007 वि. सं. कालिदास ग्रंथावली -द्वितीय संस्करण
(सम्पादक) काशी, अखिल भारतीय विक्रम परिषद.

. जोशी, नीलकण्ठ पुरुषोतम 1965 मथुरा की मूर्तिकला
मथुरा, मथुरा संग्रहालय.

. ठाकुर, लक्ष्मीदत्त, 1965 प्रमुख स्मृतियों का अध्ययन
प्रथम संस्करण,
लखनऊ, हिन्दी समिति, सूचना विभाग.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

. पाण्डेय, विमलचन्द्र	1978 1979	प्राचीन भारत का इतिहास (250 ई. - 1200 ई.) मेरठ, केदारनाथ रामनाथ.
. पाण्डेय, राजबली,	1978	हिन्दू संस्कार वाराणसी, चौखम्बा विद्या भवन.
. पाण्डेय, उमेशचन्द्र,	2039 वि. सं.	याज्ञवल्क्यस्मृतिः तृतीय संस्करण वाराणसी, चौखम्बा संस्कृत संस्थान.
. पांथरी, भगवतीप्रसाद,	1974	भारत का स्वर्णयुग प्रथम संस्करण लखनऊ, उत्तरप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी.
. पोद्दार, हनुमान प्रसाद (सम्पादक)	1949	उपनिषद् अँक गोरखपुर, गीता प्रेस.
. पोद्दार, हनुमान प्रसाद (सम्पादक)	1948	नारी अँक गोरखपुर, गीता प्रेस.
. पोद्दार, हनुमान प्रसाद (सम्पादक)	1934	शक्ति अँक (कल्याण) गोरखपुर, गीता प्रेस.
. फ्लीट, जानफेथफुल, अनुवादक, गिरिजाशंकर प्रसाद मिश्र.	1974	भारतीय अभिलेख संग्रह, प्रारंभिक गुप्त शासकों के अभिलेख, खंड 3 जयपुर, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी.
. भवालकर, वनमाला	1965	महाभारत में नारी सागर, अभिनव साहित्य प्रकाशन.
. मजूमदार, रमेशचन्द्र, अनन्तसदाशिव अल्तेकर	1968	वाकाटक गुप्त युग दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास.
. मजूमदार, रमेशचन्द्र अनन्तसदाशिव अल्तेकर	1968	भारतीय जन का इतिहास वाकाटक गुप्त युग दिल्ली, मोतीलाल बनारसी दास.
. मजूमदार, रमेशचन्द्र, हेमचंद्र राय चौधरी कालिकिंकर दत्त.	1970	भारत का वृहद् इतिहास, प्रथम भाग कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, लन्दन, मैकमिलन एंड कंपनी लिमिटेड.
. मजूमदार, रमेशचन्द्र, (संपादक)	1984	श्रेण्य युग दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

- मुकर्जी, राधाकमल, 1977 भारतीय कला का विकास
  इलाहाबाद, सरस्वती प्रेस.

- मुकर्जी, राधाकुमुद, 1966 गुप्त साम्राज्य
  इलाहाबाद, किताब महल.

- मोतीचन्द्र, 2007 वि. सं. प्राचीन भारतीय वेशभूषा
  इलाहाबाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस.

- मिराशी, वी. वी., 1956 कालिदास

- राय, उदयनारायण, 1971 गुप्त सम्राट और उनका काल
  इलाहाबाद, लोकभारती प्रकाशन.

- राय, सिद्धेश्वरीनारायण, 1968 पौराणिक धर्म एवँ समाज
  इलाहाबाद,

- राय, विजय बहादुर, 1966 उत्तर वैदिक समाज एवँ संस्कृति
  वाराणसी, भारतीय विद्या प्रकाशन.

- लुणिया, बी. एन. 1977 प्राचीन भारतीय संस्कृति,
  चतुर्थ संस्करण,
  आगरा, पुस्तक प्रकाशन.

- लखनपाल, चन्द्रावली, 1957 स्त्रियों की स्थिति
  नई दिल्ली, न्यू इण्डिया प्रेस.

- वाजपेयी, कृष्णदत्त, (लेखक एवं संपादक) 1956 अहिच्छत्रा
  लखनऊ, शिक्षा विभाग, उत्तरप्रदेश.

- वर्मा, गायत्री, 1973 कवि कालिदास के ग्रंथों पर आधारित तत्कालीन भारतीय संस्कृति
  वाराणसी, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, पिशाचमोचन.

- शास्त्री, अजयमित्र, 1980 अजंता
  नई दिल्ली, दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड.

- शर्मा, गजानन, 1970 प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी
  इलाहाबाद.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

. शर्मा, श्रीराम (संपादक)	1966	20 स्मृतियाँ (द्वितीय खंड) पाराशर स्मृति बरेली, संस्कृति संस्थान.
. सिंह, श्री भगवान,	1982	गुप्तकालीन हिंदू देव प्रतिमायें नई दिल्ली, रामानन्द विद्या भवन.
. सिन्हा, कृष्णा,	1959	गुप्तकालीन नाटकों में नारी पात्र सागर, सागर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के अंतर्गत अप्रकाशित शोध प्रबंध.
.Aiyanger, S. Krishnaswami	1928	Studies in Gupta History Madras.
.Allan, John	1975	Catalogues of Coin of the Gupta Dynasties New Delhi.
.Altekar, A.S.	1954	Catalogue of the Gupta Gold Coins in the ________ Bombay.
.Altekar, A.S.	1957	Coinage of the Gupta Empire Varanasi.
.Altekar, A.S.	1955	Education in Ancient India Varanasi.
.Altekar, A.S.	1959	The Position of Women in Hindu Civilization, II Edi. Delhi, Motilal Banarsidass.
.Able, U.M.	1954	Social and Religious Life in the Grihya Sutras Bombay.
.Badar, Clarisse,	1964	Women in Ancient India Varanasi, Chowkhamba Sanskrit Series.
.Bader, Clarisse, Martin, E.R. (Translator)	1964	Women in Ancient India Varanasi, Chowkhamba Sanskrit Series.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

.Banerjee, R.D.	1933	The Age of the Imperial Guptas. Banaras.
.Chakaldar, H.C.,		Social Life in Ancient India
.Chakraborti, Haripada	1978	India as Reflected in the Inscriptions of the Gupta Period, First Edition. New Delhi, Munshiram Manohar Lal Publishers, Pvt. Ltd.
.Chattopadhyay, Sudhakar.	1965	Social Life in Ancient India Calcutta.
.Dandekar, R.N.	1941	A History of the Gupta's Pune.
.Das, R.M.	1962	Women in Manu and his Seven Commentators. Vanarasi.
.Das, Santosh Kumar	1930	Education System of the Ancient Hindus. Calcutta, Mitra Press.
.Das, Sudhendu Kumar	1934	Sakti or Divine Power Calcutta, Calcutta University.
.Desai, M.	1958	Gupta Temple of Deogarh Bombay.
.Durkheim, Emile,	1964	The Elementary Forms of the Religious Life. London, George Allen & Unwin Ltd.
.Giles, H.A.	1923	The Travels of Fa-hien And Record of Buddhistic Kingdoms London, Coulledge & Paul, 1956.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

.Griswald,H.D.	1913	Religion of the RgVeda London.
.Heringham,	1915	Ajanta Oxford University.
.Horner,	1930	Women under Primitive Buddhism. London.
.Indra,Prof.	1955	The Status of Women in Ancient India. Banaras,Motilal Banarasidas.
.Keith,A.B.	1967	The Vada of the Black yajus School-Taittiriya-Sanhita 2 vols. Delhi, Motilal Banarasidas.
.Kramrisch,stella	1980	The Hindu Temple vol.I & II Delhi, Motilal Banarsidass.
.Maity,S.K.	1957	Economic Life of Northern India in the Gupta Period. Calcutta.
.Majumdar,R.C.	1954	The Classical Age Bombay.
.Majumdar & A.S. Altekar	1954	The Vakaka Gupta Age . Varanasi.
.Mookerjee,R.K.	1948	The Gupta Empire Bombay.
.Madan,A.P.	1971	Women's property in Indian Law. Hoshiarpur.
.Macdonesll,A.A.	1958	Vedic Index of Names and subjects, 2 vols. Delhi,Motilal Banarasidas.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

.Marshall & other	1927	Bagh Caves London.
.Mitter,	1913	Justice, Position of Women in Hindu Law . Calcutta.
.Meyer,	1930	Sexual Life in Ancient India Eng. Trans. London.
.M.Bloomfield,	1908	The Religion of the Ved New York.
.Prabhu,P.N.	1961	Hindu Social Organization Bombay.
.Saletore,R.N.	1943	Life in the Gupta Age Bombay.
.Shastri,S.Rao	1954	Women in the Vedic Age Bombay,Bhartiya Vidya Bhavan.
.Smith,V.A.	1910	A History of Fine Arts in India and Ceylon. Oxford.
.Upadhyaya,	1933	Women in Rigveda Lucknow.
.Watters,T.	1973	On Yuan Chwang's Travels in India. Ed.T.W.Rhys Davids and S.W.Durhell,2vols. New Delhi.
.Westermarck,	1906	Origin and Development of Moral Ideas, Vol. I
.Winternitz,	1920	Die Frau Leipzing.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

.Westermark,	1912	Origin and Development of the moral Ideas. vol. I
.Yazdani,	1930	Ajanta
	1933	Parts I & II London.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Reports, Journals and Catalogues, etc.

- Archological Survey of Western India
- Archological Survey of India
- Corpus Inscriptionum Inticarum, Part III, Inscriptions of the Early Gupta Kings and their Successors, J.F.Fleet, Calcutta, 1888.
- Epigraphia Carnatica (EC)
  Epigraphia Indica (EI), different Volumes, Calcutta & Delhi, 1892.
- Historical Inscriptions of Southern India, Bewell and S. Aiyangar, Madras, 1932.
- Indian Epigraphical Glossary, Sarkar, Dinesh Chandra Baranasi, 1966.
- Indian Antiquary, Bombay.
- Indian Culture, Calcutta.
- Indian Historical Quarterly, Calcutta.
- Journal of Indian History, Trivendrum.
- Journal of Oriental Research Institute, Baroda.
- Journal of the Royal Asiatic Society, London.
- Journal of the Royal Asiatic Society of Bengal, Calcutta.
- Journal of Bihar & Urrissa Research Society.
- Journal of Numismatics Society of India.
- Selected Inscriptions, Sarkar Dinesh Chandra, Calcutta 1942.
- Selected Inscriptions bearing on Indian History and Civilization, 1965.
- South Indian Inscriptions, Hultzsch S. Vol. III.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

State Museum Library, Lucknow
7226

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh